इग्नू
जन–जन का
विश्वविद्यालय

इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
मानविकी विद्यापीठ

BHDE-142
राष्ट्रीय काव्यधारा

इग्नू
जन-जन का
विश्वविद्यालय

इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
मानविकी विद्यापीठ

BHDE - 142
राष्ट्रीय काव्यधारा

खंड-1	
राष्ट्रीय काव्यधारा	**7**
खंड-2	
राष्ट्रीय काव्यधारा	**193**
खंड-3	
राष्ट्रीय काव्यधारा	**327**

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

पाठ्यक्रम विशेषज्ञ समिति

प्रो. शिवनारायण सिंह प्रोफेसर, स्नातकोत्तर हिंदी विभाग श्री अरविन्द महिला कॉलेज, पटना	**संकाय सदस्य** प्रो. सत्यकाम प्रो. स्मिता चतुर्वेदी प्रो. जितेन्द्र कुमार श्रीवास्तव (पाठ्यक्रम संयोजक) प्रो. नरेन्द्र मिश्र डॉ रीता सिन्हा डॉ. राजवंती डॉ. हर्षिता
प्रो. दुर्गा प्रसाद गुप्त प्रोफेसर, हिंदी विभाग जामिया मिल्लिया, इस्लामिया, जामिया नगर	
प्रो. गोबिंद प्रसाद प्रोफेसर, भारतीय भाषा केंद्र, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय नई दिल्ली	
प्रो. संजीव दुबे प्रोफेसर, हिंदी विभाग, केन्द्रीय विश्वविद्यालय गुजरात गांधी नगर	

पाठ्यक्रम संयोजक

प्रो. जितेन्द्र कुमार श्रीवास्तव, हिन्दी संकाय
मानविकी विद्यापीठ, इग्नू, नई दिल्ली

खंड संयोजन, संशोधन एवं संपादन

प्रो. जितेन्द्र कुमार श्रीवास्तव, हिन्दी संकाय
मानविकी विद्यापीठ, इग्नू, नई दिल्ली

पाठ्यक्रम निर्माण समिति

पाठ	इकाई सं.
प्रो. परमानंद श्रीवास्तव अवकाश प्राप्त, गोरखपुर विश्वविद्यालय गोरखपुर	1, 4, 9,11
प्रो. विश्वनाथ शुक्ल अलीगढ़ प्रो. शत्रुघ्न कुमार मानविकी विद्यापीठ, इग्नू	2, 3
प्रो. लल्लनराय पूर्व प्रोफसर एवं अध्यक्ष हिंदी विभाग, हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय शिमला	5
प्रो. जवरीमल्ल पारख अवकाश प्राप्त, इग्नू, नई दिल्ली	6, 7
प्रो. पूरन चन्द टंडन दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली	8
डॉ. भावना सरोहा परामर्शदाता (हिंदी) मानविकी विद्यापीठ, इग्नू	10, 13
प्रो. लल्लनराय अवकाश प्राप्त, हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय शिमला	12
श्री कपिल देव गोरखपुर, उ.प्र.	14, 15, 16, 17, 18, 19, 20 और 21

संपादन सहयोग
डॉ. भावना सरोहा,
परामर्शदाता, हिंदी
मानविकी विद्यापीठ, इग्नू

अकादमिक सहयोग
सुश्री विनीता सिंह

सचिवालयिक सहयोग
सुश्री गीता नेगी
निजी सहायक
मानविकी विद्यापीठ, इग्नू

सामग्री निर्माण

श्री तिलक राज
सहायक कुलसचिव
एम.पी.डी.डी. इग्नू, नई दिल्ली

दिसम्बर, 2021

© इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, 2021

ISBN :

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस कार्य का कोई भी अंश इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति के बिना मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रमों के विषय में और अधिक जानकारी विश्वविद्यालय के कार्यालय, मैदान गढ़ी, नई दिल्ली–110 068 से प्राप्त की जा सकती है।

इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय की ओर से कुलसचिव, एम.पी.डी.डी. द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित।

लेजर टाइप सेटिंग : आकाशदीप प्रिंटर्स, 20–अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली–110002

मुद्रक : आकाशदीप प्रिंटर्स, 20–अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली–110002

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

पाठ्यक्रम परिचय

भारतीय स्वाधीनता आंदोलन का साहित्य से गहन संबंध रहा है। विभिन्न साहित्यकारों, पत्रकारों और सम्पादकों ने अपनी लेखनी के माध्यम से स्वतंत्रता की आकांक्षा को स्वर दिया। साहित्य प्रारंभ से ही स्वतंत्रता की बलिवेदी पर अपना सर्वस्व निछावर करने वाले क्रांतिवीरों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर चलता रहा है। उनकी प्रेरणा के लिए अपनी लेखनी चलाता रहा हैं, उनके अभियानों का जयघोष करता रहा है तथा उनकी कीर्ति और समर्पण के विजयगान उद्घोषित करता रहा है। ब्रिटिश उपनिवेश का विरोध पराधीनता से मुक्ति, राष्ट्रीय–सांस्कृतिक चेतना का विस्तार और राष्ट्र जागरण तत्कालीन साहित्य की केन्द्रीय चिंता के रूप में स्थापित हो जाता है। हिंदी के सभी प्रमुख साहित्यकारों ने अपनी रचनात्मकता के माध्यम से राष्ट्र जागरण के इस अभियान में अपना योगदान दिया। स्वाधीनता के पश्चात भी राष्ट्रीय चेतना के प्रसार और राष्ट्रीयता की भावना के जागरण हेतु यह काव्यधारा सत्त प्रवाहित हो रही है।

'BHDE -142 राष्ट्रीय काव्यधारा' के पाठ्यक्रम में बी.ए. (ऑनर्स) हिंदी एवं बी.ए. कार्यक्रम (BAG)–सी.बी.सी.एस. के विद्यार्थियों का हार्दिक स्वागत है। इस पाठ्यक्रम के अंतर्गत विद्यार्थी आधुनिक युग के उदय, राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन के विकास और राष्ट्रीय–सांस्कृतिक चेतना से सम्बद्ध साहित्य के प्रसार का विस्तार से अध्ययन करेंगे। राष्ट्रीय–सांस्कृतिक चेतना से सम्पन्न कविता की हिंदी में एक समृद्ध विरासत मौजूद है। इस पाठ्यक्रम में विद्यार्थी मैथिलीशरण गुप्त, माखनलाल चतुर्वेदी, सुभद्रा कुमारी चौहान, बालकृष्ण शर्मा नवीन, रामधारी सिंह दिनकर, श्यामनारायण पाण्डेय जैसे प्रखर राष्ट्रवादी कवियों के व्यक्तित्व–कृतित्व के अध्ययन के साथ ही इनकी चयनित कविताओं के वाचन एवं विश्लेषण का भी अध्ययन करेंगे।

अध्ययन हेतु निर्धारित छह क्रेडिट का यह पाठ्यक्रम तीन खंडों और इक्कीस इकाईयों में विभाजित है –

खण्ड–1

इकाई –1 आधुनिक युग की भूमिका
इकाई –2 आधुनिक युगीन परिस्थितियाँ
इकाई –3 आधुनिक युग का वैचारिक आधार
इकाई –4 राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन का विकास
इकाई –5 नवजागरण और राष्ट्रीय चेतना का विकास
इकाई –6 भारतीय साहित्य में नवजागरण एवं राष्ट्रीय चेतना की अभिव्यक्ति

खण्ड–2

इकाई–7 राष्ट्रीयता के विकास में आधुनिक भारतीय साहित्य का योगदान
इकाई–8 मैथिलीशरण गुप्त
इकाई–9 माखनलाल चतुर्वेदी
इकाई–10 सुभद्रा कुमारी चौहान
इकाई–11 बालकृष्ण शर्मा नवीन
इकाई–12 रामधारी सिंह दिनकर
इकाई–13 श्यामनारायण पाण्डेय

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

खण्ड–3

इकाई–14 काव्य वाचन एवं विश्लेषण : भारतवर्ष की श्रेष्ठता, हमारा उद्भव, हमारे पूर्वज, आर्य स्त्रियाँ

इकाई–15 काव्य वाचन एवं विश्लेषण : हमारी सभ्यता

इकाई–16 काव्य वाचन एवं विश्लेषण : पुष्प की अभिलाषा, बंदी और कोयल

इकाई–17 काव्य वाचन एवं विश्लेषण : प्यारे भारत देश, अमर राष्ट्र, दीप से दीप जले

इकाई–18 काव्य वाचन एवं विश्लेषण : झांसी की रानी

इकाई–19 काव्य वाचन एवं विश्लेषण : हिमालय, समर शेष है, कलम आज उनकी जय बोल

इकाई–20 काव्य वाचन एवं विश्लेषण : हल्दी घाटी द्वादस सर्ग

इकाई–21 काव्य वाचन एवं विश्लेषण : विप्लव गायन

हमें पूर्ण विश्वास है कि यह पाठ्यक्रम विद्यार्थियों में राष्ट्रीय सांस्कृतिक काव्यधारा के अध्ययन–विश्लेषण की क्षमता के विकास के साथ ही राष्ट्रीयता के प्रति अनुराग और राष्ट्रप्रेम के भाव को संपोषित करने में समर्थ होगा।

शुभकामनाओं के साथ, वन्दे मातरम्।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इग्नू
जन-जन का
विश्वविद्यालय

इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
मानविकी विद्यापीठ

BHDE - 142

राष्ट्रीय काव्यधारा

खंड-1

राष्ट्रीय काव्यधारा

इकाई 1
आधुनिक युग की भूमिका **11**

इकाई 2
आधुनिक युगीन परिस्थितियाँ **26**

इकाई 3
आधुनिक युग का वैचारिक आधार **55**

इकाई 4
राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन का विकास **85**

इकाई 5
नवजागरण और राष्ट्रीय चेतना का विकास **106**

इकाई 6
भारतीय साहित्य में नवजागरण एवं राष्ट्रीय चेतना की अभिव्यक्ति **132**

इकाई 7
राष्ट्रीयता के विकास में आधुनिक भारतीय साहित्य का योगदान **161**

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

खंड 1 का परिचय

राष्ट्रीय काव्यधारा पाठ्यक्रम का यह पहला खंड है। इस खंड में कुल सात इकाइयाँ हैं। इन सात इकाइयों को 'राष्ट्रीय काव्यधारा' पाठ्यक्रम की आधार भूमि स्पष्ट करने के उद्देश्य से दिया जा रहा है। इन इकाइयों के अध्ययन से आधुनिकता के उदय, भारत में प्रसार, भारतीय समाज पर उसके प्रभाव, राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन के उदय और राष्ट्रीयता की चेतना के प्रसार के कारणों और परिणामों पर विद्यार्थियों की समझ निर्मित होगी।

इस खंड की पहली इकाई 'आधुनिक युग की भूमिका' है। इस इकाई के माध्यम से विद्यार्थी आधुनिकता की मूल संवेदना, उसके राजनीतिक, साहित्यिक तथा सांस्कृतिक संदर्भ, स्वाधीनता की चेतना और नवजागरण में आधुनिकता के योगदान का अध्ययन करेंगे। खंड की दूसरी इकाई 'आधुनिक युगीन परिस्थितियों' के अध्ययन पर केन्द्रित है। जिन राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक धार्मिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों के बीच आधुनिकता की चेतना का प्रस्फुटन हुआ, उनका विश्लेषण इसमें प्रस्तुत किया गया है। 'आधुनिक युग का वैचारिक आधार' इस खंड की तीसरी इकाई है। इस इकाई में आधुनिकता के उदय की पृष्ठभूमि में हो रहे सामाजिक, सांस्कृतिक, वैचारिक बदलाओं के अध्ययन के साथ ही विभिन्न विचारधाराओं, विभिन्न संगठनों और जीवन दृष्टियों के उदय और विकास को भी समझ सकेंगे।

खंड की शेष चार इकाइयाँ (इकाई 4,5,6 एवं 7) स्वाधीनता की चेतना के उदय, राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन के विकास, नवजागरण और राष्ट्रीय चेतना के संबंध तथा भारतीय साहित्य में राष्ट्रीयता की अभिव्यक्ति पर आधारित हैं।

हमें आशा है कि यह खंड 'राष्ट्रीय काव्यधारा' पाठ्यक्रम के अध्ययन की पूर्वपीठिका के रूप में आपके लिए उपयोगी सिद्ध होगा।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 1 आधुनिक युग की भूमिका

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 आधुनिक युग का महत्व

1.2.1 आधुनिक युग का सीमांकन

1.2.2 आधुनिक युग की विशिष्टता

1.2.3 आधुनिक साहित्य की मूल संवेदना

1.3 आधुनिक युग : राजनीतिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक संदर्भ

1.3.1 आधुनिक युग : राजनीतिक संदर्भ

1.3.2 आधुनिक युग : सांस्कृतिक संदर्भ

1.3.3 आधुनिक युग : साहित्यिक संदर्भ

1.4 आधुनिक युग की मूल संवेदना

1.4.1 राष्ट्रीय स्वाधीन चेतना

1.4.2 नवजागरण

1.5 मूल्यांकन

1.5.1 आधुनिक युग का अवदान

1.5.2 आधुनिक युग के संदर्भ में भारतीय साहित्य की पहचान

1.6 सारांश

1.7 उपयोगी पुस्तकें

1.8 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

1.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- आधुनिक युग का महत्व बता सकेंगे/सकेंगी;
- आधुनिक युग का आरंभ कहाँ से माना जाए, यह स्पष्ट कर सकेंगी/सकेंगे;
- आधुनिक युग किस अर्थ में अलग और विशिष्ट है, बता सकेंगे/सकेंगी;
- भारतीय साहित्य के विकास में आधुनिक युग की भूमिका का परिचय दे सकेंगी/सकेंगे;
- आधुनिक युग का राजनीतिक–सांस्कृतिक–साहित्यिक संदर्भ क्यों महत्वपूर्ण है, इसकी व्याख्या कर सकेंगी/सकेंगे;
- राष्ट्रीय स्वाधीनता और नवजागरण की आधुनिक युग की संवेदना के निर्माण में क्या भूमिका रही है, इसे समझा सकेंगी/सकेंगे; और
- आधुनिक युग का मुख्य अवदान क्या है और उसके मुख्य लक्षण क्या हैं, इसे स्पष्ट कर सकेंगी/सकेंगे।

1.1 प्रस्तावना

'राष्ट्रीय काव्यधारा के खंड–01 की यह पहली इकाई है–'आधुनिक युग की भूमिका। आधुनिक युग का आरंभ उन्नीसवीं शताब्दी के नवजागरण के साथ हुआ। राष्ट्रीयता को एक नया अर्थ इसी समय मिला। राजनीतिक स्वाधीनता के लिए संघर्ष–सामाजिक न्याय और समता के लिए संघर्ष से जुड़ा हुआ था। आधुनिक युग को व्यापकता और पूर्णता मिली–बीसवीं शताब्दी के लम्बे ऐतिहासिक संघर्ष के साथ–जब उपनिवेशवाद और साम्राज्यवाद के विरोध की गति तेज हुई। समाजवाद उज्ज्वल भविष्य का प्रतीक बना। साथ ही उसे नयी चुनौतियाँ भी मिलीं। आधुनिक युग का राजनीतिक संदर्भ जितना महत्वपूर्ण है, उतना ही सांस्कृतिक–साहित्यिक संदर्भ भी।

इस इकाई में हम आधुनिक युग के सीमांकन पर विचार करेंगे क्योंकि आधुनिक युग का आरंभ सभी देशों और भाषाओं के साहित्य में एक ही निश्चित समय पर नहीं हुआ। यूरोप के आधुनिक युग से हमारा आधुनिक युग भिन्न है। भारतीय साहित्य के संदर्भ में आधुनिक युग की पहचान ही बनी नवजागरण और स्वाधीनता–संघर्ष के साथ। आपके लिए आवश्यक है कि आप आधुनिक युग की मूल प्रकृति या संवेदना को तथा उसकी पहचान बनाने वाले प्रमुख तत्वों को ठीक से जानें। इस इकाई को पढ़ते हुए आप देख सकेंगे कि आधुनिक युग क्यों पहले के युगों से भिन्न है। यह तो सही है कि प्रायः सर्वत्र आधुनिक युग का उदय स्वतंत्रता की माँग के साथ हुआ। आधुनिक युग के पहले साहित्य में एक तरह की, एक ढर्रे पर बंधी हुई भावधारा दिखाई देती है। शास्त्रीयता के इस रूझान के विरुद्ध अक्सर आधुनिक युग अधिक स्वच्छन्द दिखाई देता है। इस स्वच्छन्दता के प्रेरक तत्व या ऐतिहासिक कारण भिन्न हो सकते हैं। भारतीय साहित्य में आधुनिक युग आया तो उसके पीछे मुक्ति की व्यापक आकांक्षा प्रबल थी। स्वाधीनता–संघर्ष की चेतना के लिए सामाजिक–सांस्कृतिक सुधार के आंदोलन प्रोत्साहन दे रहे थे। स्त्री–पुरुष समानता के लिए संघर्ष इसी स्वाधीनता संघर्ष का हिस्सा था। इसलिए आधुनिक युग के भारतीय साहित्य में प्रकृति के प्रति, मानव संबंधों के प्रति, जीवन के प्रति नया रूख दिखाई देता है तो वह केवल साहित्यिक अभिव्यक्ति के रूप में महत्वपूर्ण नहीं है, उस राजनीतिक–सामाजिक संदर्भ के कारण भी महत्वपूर्ण है, जिससे कटकर साहित्य सृजन असंभव हो जाता है। आधुनिक युग के विकास की प्रक्रिया में गद्य के उदय पर भी ध्यान देना चाहिए जो प्रेस की स्थापना के बगैर असंभव था। यह तो स्पष्ट ही है कि गद्य के आने के साथ नयी साहित्यिक शैलियां ही नहीं चल पड़ी, वैज्ञानिक विचार चेतना का व्यापक प्रसार भी संभव हुआ। आधुनिक युग की कल्पना इस आलोचनात्मक वैचारिक दृष्टि के अभाव में नहीं की जा सकती। इस युग में पहले के युगों की तुलना में बौद्धिकता के लिए एक नया आकर्षण था। अब साहित्य विशेष वर्ग तक सीमित न रहा। पाठक–समाज का निरंतर विस्तार हुआ। इस प्रकार इस इकाई को पढ़ते हुए आप आधुनिक युग के उदय के पीछे ऐतिहासिक–सामाजिक कारणों को समझने के लिए उत्सुक होंगे।

1.2 आधुनिक युग का महत्व

आधुनिक युग के महत्व को समझने से पूर्व हमारे लिए यह जानना जरूरी है कि भारत में आधुनिक युग की शुरुआत कब से हुई और क्यों हुई? यह भी जानना आवश्यक है कि इस युग की विशिष्टता क्या है। आइए, इस पर विचार करें।

1.2.1 आधुनिक युग का सीमांकन

यूरोप के संदर्भ में आधुनिक युग का आरंभ पंद्रहवीं–सत्रहवीं शताब्दी से माना जाता है। पर यह धारणा दुनिया के हर क्षेत्र या देश पर लागू नहीं की जा सकती। यूरोप के आधुनिक युग से हमारा आधुनिक युग भिन्न है। यूरोप की आधुनिक चेतना ने औद्योगिक पूंजीवाद से महाजनी पूंजीवाद तक की यात्रा करते हुए अपना स्वरूप विकसित किया। भारत के संदर्भ में आधुनिक युग के अब तक के जटिल विकास में सामंतवाद के अवशेष बचे रह गये हैं। पंद्रहवीं–सत्रहवीं शताब्दी के बीच पश्चिमी यूरोप के कुछ देशों में आधुनिक युग के उदय की संभावना उभरने लगी थी। नवजागरण, सुधार के प्रयत्न, आधुनिक विज्ञान का उदय, सामंतवाद का विघटन, उपनिवेशीकरण, औद्योगिक क्रांति–प्रायः जहाँ भी, जिस रूप में भी आधुनिक युग का उदय हुआ, उसके कुछ प्रमुख लक्षण यही थे। 1789 में फ्रांस की राज्य क्रांति के साथ स्वतंत्रता, समानता, नागरिक अधिकार–जैसी धारणाएँ विकसित हुईं जो आगे भी आधुनिकता की चेतना के उपादानों के रूप में जानी गयीं। भारतीय साहित्य में आधुनिक युग की पहचान राष्ट्रीय स्वाधीनता संघर्ष और नवजागरण की चेतना के साथ संभव हुई। 19वीं शताब्दी के आरंभ में जब अंग्रेजों के भारत में पैर जमने लगे और आधुनिक शिक्षा का प्रचलन आरंभ हुआ, उसके साथ–साथ यहाँ के शिक्षित वर्ग में एक नयी चेतना का उदय भी हुआ जो राष्ट्रीय भावना, समाज सुधार और सामंतवाद विरोधी चेतना के रूप में उभरकर सामने आई। बीसवीं शती तक आते–आते इसके प्रति–उपनिवेशीकरण तथा साम्राज्यवाद विरोध की चेतना आ जुड़ी।

1.2.2 आधुनिक युग की विशिष्टता

इस पाठ्यक्रम के संदर्भ में हमारा संबंध उन्नीसवीं शताब्दी से बीसवीं शताब्दी के मध्य तक के विकास के क्रम से है। इस अवधि में आधुनिक युग की विकास अवस्थाओं का अध्ययन रोचक और उपयोगी हो सकता है। उन्नीसवीं शताब्दी के नवजागरण के दौरान राष्ट्रीयता की अपनी अवधारणा विकसित करने का प्रयास दिखाई देता है। यह भारतीयता की अपनी पहचान निश्चित करने वाला दौर था। कुछ आगे मैथिलीशरण गुप्त के यह सवाल पूछने तक–'हम कौन थे क्या हो गये हैं/और क्या होंगे अभी?'। आधुनिक युग की यह आरंभिक उलझन बनी हुई थी कि हमारी अतीतोन्मुखता, वर्तमान की चिन्ता और भविष्य की कल्पना के बीच ठीक–ठाक क्या रिश्ता बने। एक ओर अतीत पर जोर देते हुए वैदिक युग की वापसी की बात की जा रही थी, तो दूसरी ओर अतीत को पूरी तरह से छोड़कर पश्चिम के अनुगमन को आदर्श बताया जा रहा था। उन्नीसवीं शती के अंत तक आते–आते हम अतीत और वर्तमान के बीच एक सही वस्तुपरक और संतुलित दृष्टिकोण विकसित कर सके जो विवेकानंद, ज्योतिबा फूले, रवींद्रनाथ के माध्यम से सामने आया। फिर भी भविष्य का हमारा मार्ग क्या हो, यह द्वंद्व बना ही रहा। इसका मंथन 20वीं शती के आरंभ से ही शुरू हुआ और 1917 की सोवियत क्रांति ने एक तरह से यह स्पष्ट कर दिया कि हमारा रास्ता क्या होना चाहिए। सन् 1920 के आसपास कांग्रेस में समाजवादी मंच की स्थापना, कम्युनिस्ट पार्टी का गठन तथा अन्य कई बातें इसी सच्चाई की द्योतक थी। साहित्य में प्रेमचंद, निराला, नजरूल, जोश महीलाबादी, श्री श्री, आदि ने इस दृष्टिकोण को अभिव्यक्त किया। प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना भी इसी दृष्टिकोण के बढ़ते प्रभाव का परिणाम थी।

बीसवीं शताब्दी का आरंभिक इतिहास दो–दो महायुद्धों का इतिहास है जिसका मनुष्य की संवेदना, संबंध भावना और मूल्य भावना पर व्यापक असर पड़ा। भारत का स्वाधीनता संघर्ष, नवजागरण, सुधार के प्रयत्न, बौद्धिक दृष्टि का विकास, विश्व दृष्टि या विश्वभावना का विकास इस युग की विशिष्टता देने वाले प्रमुख तत्व हैं। क्लासिक या शास्त्रीय युग की

तुलना में यह युग साधारण या सामान्य की प्रतिष्ठा का युग है। आधुनिक युग के विकास के क्रम में समाजवाद के विभिन्न रूपों का विकास, समाजवादी आंदोलन का विकास, साधारण जन की प्रतिष्ठा में यथार्थवाद जैसी विचारधाराओं के उदय और विकास में सहायक रहा है। इस युग में हम देख सकते हैं कि किस तरह यूरोप के सम्राज्यवाद विरोधी आंदोलन ने आधुनिक राष्ट्रवाद और लोकतंत्र की जड़ें मजबूत की। 1920–30 के दशक में नीग्रो जाति की प्रतिष्ठा के पक्ष में जो आंदोलन चला, उसके पीछे महात्मा गांधी का संघर्ष याद किया जा सकता है।

आधुनिक युग के विकास के क्रम में यह तथ्य भी महत्वपूर्ण है कि किस तरह यूरोप का वर्चस्व या प्रभाव क्षीण हुआ। दूसरे विश्व युद्ध के बाद के वर्षों में एशिया, अफ्रीका, लैटिन अमरीका के अनेक देशों को स्वतंत्रता मिली। कितने ही राजनैतिक परिवर्तन के साथ विश्व साहित्य जैसी पहचान भी बनाता है। आधुनिक भारतीय साहित्य अनेक सामाजिक परिवर्तनों की चेतना के साथ विश्व साहित्य की परिकल्पना से अछूता नहीं है। आधुनिक युग के अनुरूप चेतना का निर्माण जिन परिस्थितियों ने किया उनमें यातायात और संचार साधनों के विकास की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण रही है।

1.2.3 आधुनिक साहित्य की मूल संवेदना

आधुनिक साहित्य जिन शर्तों के साथ आधुनिक हुआ वे आधुनिक युग की विशेष ऐतिहासिक आवश्यकता का परिणाम थीं। जैसे इतिहास–दृष्टि, परम्परा का बोध, समग्र जीवन दृष्टि और वैज्ञानिक विवेक। आधुनिक साहित्य जिस नवजागरण और स्वाधीनता संघर्ष के बीच लिखा गया उसका एक व्यापक अखिल भारतीय संदर्भ था। हिंदी में आधुनिक युग के प्रवर्तक भारतेंदु हरिश्चंद्र यदि साहित्य की विषयवस्तु में युगान्तकारी परिवर्तन कर सके तो इसलिए कि उन्हें अपने युग की समस्याओं का आभास था। साधारण जन से उनका गहरा तादात्म्य था। साधारण लोगों पर वे लिख सकते थे। गांधी जी से पहले ही वे स्वदेशी आंदोलन का सूत्रपात कर चुके थे। स्पष्ट है कि भारत में आधुनिक साहित्य के उदय के पीछे सांस्कृतिक पुनर्जागरण का व्यापक ऐतिहासिक प्रयत्न है। राष्ट्रीय स्वाधीनता संघर्ष के अगले चरण में उपनिवेशवाद–विरोध का सजग प्रयत्न भी दिखाई देता है। यह प्रयत्न विश्व भर में चल रहे उपनिवेशवाद विरोध की ही एक कड़ी है। भारत में आधुनिक साहित्य की चेतना का निर्माण करने वाले लेखकों में महत्वपूर्ण रवींद्रनाथ ठाकुर ने स्वीकार किया था कि आधुनिक युग ने हमारे साहित्य को एक ओर राष्ट्रीय चेतना से, दूसरी ओर एक प्रकार की विश्व दृष्टि से सम्पन्न किया।

बंकिम चंद्र का 'आनंद मठ', मैथिलीशरण गुप्त की 'भारत भारती' और हाली का 'मुसद्दस' आधुनिक युग की महत्वपूर्ण कृतियाँ हैं जो राष्ट्रीय चेतना का पक्ष लेती है और साम्राज्यवाद का विरोध करती है। जवाहरलाल नेहरू की 'विश्व इतिहास की झलक' और 'भारत की खोज' महत्वपूर्ण कृतियाँ हैं जो आधुनिक युग की समस्याओं और चुनौतियों के प्रति हमें संवेदनशील बनाती हैं। एक जरूरी तथ्य यह है कि स्वाधीनता संघर्ष के दौर में प्रायः सभी भारतीय भाषाओं में महत्वपूर्ण रोमांटिक कविता लिखी गयी। साथ ही राष्ट्रीय भावधारा के भीतर एक नयी स्वच्छन्द चेतना का विकास देखा गया। ऐसा कवियों में उर्दू के मुहम्मद इकबाल, हिंदी के निराला, बंगला के नजरूल इस्लाम, मराठी के केशवसुत, मलयालम के. जी. शंकर कुरूप, तमिल के सुब्रह्मण्य भारती के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। आधुनिक भारतीय उपन्यास के इतिहास में ऐसी अनेक महत्वपूर्ण रचनाएं आती हैं जो राष्ट्रीय अस्मिता जैसे सवाल से टकराती हैं। जैसे रवीन्द्रनाथ का उपन्यास 'गोरा'। शरतचंद्र के उपन्यास जहाँ सामंतवाद के दबावों के विरुद्ध हैं और भीतर–बाहर के विद्रोह को वाणी देते हैं वहीं

स्त्री की पीड़ा या करुणा को भी आधुनिक युग के संदर्भ में मूर्त करते हैं। प्रेमचंद (रंगभूमि, गोदान), ताराशंकर वंद्योपाध्याय (गणदेवता), विभूति भूषण, वंद्योपाध्याय (पथेर पांचाली), मानिक वंद्योपाध्याय (पदमानदीर माझी), तक्षी शिवशंकर पिल्ले (चेम्मीन), पन्नालाल पटेल (ममेला जीव), यू.आर.अनंत मूर्ति (संस्कार), फणीश्वरनाथ रेणु (मैला आंचल) की कृतियों में आधुनिक युग की संवेदना व्यक्त हुई जिसे समझने के लिए नवजागरण तथा स्वाधीनता जैसी ऐतिहासिक परिस्थितियों की याद जरूरी है।

बोध प्रश्न–1

नीचे दिये गये प्रश्नों का सही उत्तर दीजिए और अपने उत्तर इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से मिलाइए।

1. भारत में आधुनिक युग का आरंभ कब से माना जाता है :

   क) पंद्रहवीं शताब्दी से

   ख) बारहवीं शताब्दी से

   ग) बीसवीं शताब्दी से

   घ) उन्नीसवीं शताब्दी से

2. आधुनिक युग को विशिष्ट पहचान देने वाले तीन प्रमुख तत्वों का उल्लेख कीजिए :

   क) ....

   ख) ....

   ग) ....

3. आधुनिक साहित्य की मूल संवेदना को ध्यान में रखते हुए इन प्रश्नों का संक्षिप्त उत्तर कोष्ठकों में लिखिए :

   क) आधुनिक साहित्य किन प्रमुख शर्तों या लक्षणों के साथ आधुनिक हुआ।

   ....

   ....

   ख) राष्ट्रीय अस्मिता जैसे प्रश्न से टकराने वाले किसी महत्वपूर्ण उपन्यास का नाम लिखिए।

   ....

अभ्यास

1) भारत में आधुनिक युग की विशिष्टता क्या है? लगभग पाँच पंक्तियों में बताइए।

....

....

....

....

1.3 आधुनिक युगः राजनीतिक–सांस्कृतिक–साहित्यिक संदर्भ

आधुनिक युग ने हमारे राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और साहित्यिक जीवन में जबर्दस्त परिवर्तन ला दिया था। ये परिवर्तन इन क्षेत्रों में कैसे घटित हुए, उसका संक्षिप्त लेखा–जोखा हम यहाँ पेश कर रहे हैं।

1.3.1 आधुनिक युग : राजनीतिक संदर्भ

औद्योगिक क्रांति ने जहाँ यूरोप में पूंजीवादी लोकतंत्र की नींव डाली और उसे मजबूत किया वहीं अपने उद्योगों की जरूरतों के चलते और नये बाजार की खोज में यूरोप के कई देशों ने एशिया, अफ्रीका और लेटिन अमरीका के देशों को अपना उपनिवेश बना लिया। लेकिन पूंजीवाद के साथ स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व के जो नये आदर्श स्थापित हुए उसकी हवा आधुनिक शिक्षा के साथ–साथ इन देशों में भी पहुंची। इसने इन देशों में भी राष्ट्रवाद की भावना को मजबूत किया। बाद में मार्क्सवादी विचारों के प्रभाव ने भी लोकतंत्र, सामाजिक न्याय, समानता के आदर्श को राजनीतिक व्यवस्था के लिए आवश्यक बना दिया।

उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक से पहले विश्वयुद्ध (1914) तक यूरोप का प्रभुत्व बना हुआ था। वह धीरे–धीरे कम होता गया। संयुक्त राज्य अमरीका, जापान मुख्य शक्ति के रूप में उभर रहे थे। युद्ध खत्म होते–होते रूसी क्रांति (1917) हो चुकी थी। उधर साम्राज्यवादी ताकतों के बीच संघर्ष तेज हो रहा था। अनुभव किया जा रहा था कि पूंजीवादी व्यवस्था का अंत मनुष्य के हित में है। रंगभेद, के चलते काले लोगों के दमन की प्रक्रिया शुरू हुई। दुनिया के कई राज्यों में स्त्रियाँ मताधिकार से वंचित थीं। अमरीकी संविधान के अंतर्गत महिलाओं ने यह अधिकार बीसवीं शताब्दी के दूसरे दशक के अंत तक प्राप्त किया। भारत में स्वाधीनता आंदोलन के उदय के साथ एशिया के दूसरे भागों में भी राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन की लहर उठी। दोनों विश्वयुद्धों के बीच संयुक्त राज्य अमरीका, रूस, जापान प्रमुख शक्ति के केंद्र थे। रूसी क्रांति के पहले वे परस्पर सहयोगी थे। रूस के अलग होने पर शांति प्रस्तावों की पहल में संयुक्त राज्य अमरीका की महत्वपूर्ण भूमिका थी। 1934 में सोवियत संघ ने राष्ट्र संघ की सदस्यता स्वीकार की। उपनिवेशवाद और साम्राज्यवाद का विरोध आधुनिक युग के इस खास दौर का चरित्र था। चीन की क्रांति (1911) में सुन यान सेन की महत्वपूर्ण भूमिका थी जिसका प्रभाव अगले दशकों तक बना रहा। जर्मनी में फासीवाद की विजय हुई। सैनिक शक्ति के चरम विस्तार का परिणाम था दूसरा विश्वयुद्ध। दुनिया के सारे फासिस्ट विरोधी संगठन सोवियत संघ के साथ थे। भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन की आंतरिक क्षमता और एकजुटता प्रकट करने के लिए जवाहरलाल नेहरू स्पेन गये। उल्लेखनीय है कि दुनिया के अनेक लेखकों, कलाकारों, विचारकों ने स्पेन के गृहयुद्ध में हिस्सा लिया। दूसरा विश्वयुद्ध (1939–1945) सबसे अधिक विनाशकारी था। बाद के शीतयुद्ध का परिणाम था–अमरीका का महाशक्तियों के रूप में उदय और आपसी संघर्ष। अमरीका का वियतनाम से लम्बा युद्ध एक ऐसी घटना है जिसने लेखकों–कलाकारों को विशेष रूप से विचलित किया।

भारत में आधुनिक युग की राजनीतिक भूमिका को समझने के लिए महात्मा गांधी और जवाहरलाल नेहरू के राजनीतिक संघर्ष को याद करना जरूरी है। अहिंसा, सत्याग्रह जैसे गांधी जी के राजनीतिक कार्यक्रमों के पीछे महत्वपूर्ण विचार थे जिनके प्रभाव एक लम्बे समय तक दिखाई देते हैं। आधुनिक भारत के निर्माता जवाहरलाल नेहरू ने अपने राजनीतिक संघर्ष के दौर में जिन मूल्यों को युगीन सार्थकता की दृष्टि से प्रतिष्ठित किया, वे हैं–धर्मनिरपेक्षता और लोकतंत्र। नेहरू की इतिहास दृष्टि और वैज्ञानिक चेतना ने भारत में

आधुनिक युग की विशेष पहचान बनायी। गुटनिरपेक्षता जैसी उनकी नीतियाँ विश्व के आधुनिक राजनीतिक परिप्रेक्ष्य में महत्वपूर्ण तथा विचारणीय मानी जाती है। अनेक छोटे देशों के मुक्ति आंदोलन में नेहरू युग की महत्वपूर्ण भूमिका रही है।

1.3.2 आधुनिक युग : सांस्कृतिक संदर्भ

उन्नीसवीं शताब्दी के भारतीय नवजागरण को यूरोप के जिन विचारकों से प्रेरणा मिली उनमें रूसो, कान्ट, जान स्टुअर्ट मिल, हर्बर्ट स्पेंसर आदि महत्वपूर्ण हैं। इस जागरण में वैज्ञानिक दृष्टि के लिए विशेष आकर्षण था। यह नवजागरण उपनिवेशवादी, दौर की ही उपज था इसलिए उसकी अपनी सीमाएँ थीं। स्वाधीनता संघर्ष ने इस मानसिकता में आगे चलकर गुणात्मक परिवर्तन उपस्थित किया। यह एतिहासिक सच्चाई है कि दुनिया में नवजागरण का काल अलग–अलग संदर्भो के साथ आता है। वह एक ही समय तक ही नियम से नहीं आता। भारत में नवजागरण का आरंभ 19वीं शताब्दी में हुआ जब यूरोपीय वैज्ञानिक–संस्कृति और भारतीय धार्मिक–संस्कृति में टकराहट हुई। भारतीय नवजागरण के केंद्र में एक समग्र मनुष्य की कल्पना थी जिसका आरंभ राजाराममोहन राय (1772–1833) के विचारों में तथा परिणति महात्मा गांधी (1869–1948) के जीवन–दर्शन में दिखाई देती है। राजाराममोहन राय ने 1828 में ब्रह्म समाज की स्थापना की। उसी प्रेरणा से महाराष्ट्र में प्रार्थना समाज स्थापित हुआ। राममोहन राय ने सती प्रथा का विरोध किया और उस पर प्रतिबंध लगवाने में सफल हुए। उन्होंने हिंदु–मुस्लिम एकता के लिए भी देश की जनता को शिक्षित किया। वे बहु–विवाह जैसी सामाजिक विकृति के विरुद्ध थे और अतंर्जातीय विवाह को प्रोत्साहन दे रहे थे। स्त्री शिक्षा के प्रचार–प्रसार के लिए उनके प्रयत्नों का ऐतिहासिक महत्व है। आगे चलकर देवेन्द्र नाथ ठाकुर और केशवचंद्र सेन ने ब्रह्म समाज का नेतृत्व किया। ईश्वरचंद्र विद्यासागर के प्रयत्नों से विधवा विवाह का प्रचलन आरंभ हुआ और स्त्री–शिक्षा के लिए स्कूल, कॉलेज खोले गये। स्वामी दयानंद (1824–1883) ने आर्य समाज की स्थापना (10 अप्रैल, 1875) करके नवजागरण की प्रक्रिया तेज की। वे भी जातीय संकीर्णता के विरुद्ध थे और स्त्री शिक्षा के पक्ष में थे। एक अर्थ में प्रेमदर्शन को रामकृष्ण परमहंस (1836–1886) ने सामाजिक नवजागरण का मूल मंत्र बनाया। वे सभी धर्मों की मूलभूत एकता के लिए अपने विचारों से नयी जमीन बना रहे थे। विवेकानंद (1863–1902) ने रामकृष्ण के संदेश को यूरोप–अमरीका तक फैलाया। वे वेदांत दर्शन और हिंदू धर्म की नयी व्याख्या के लिए तथा भारत की एक नयी खोज के लिए प्रसिद्ध हुए। 1873 में एनीबेंसेट भारत आयीं। उन्होंने थियोसोफिकल सोसायटी के लिए कार्य करते हुए जातिवाद जैसी संकीर्णताओं के विरुद्ध वातावरण बनाया। सर सैयद अहमद ने मुस्लिम स्त्रियों की शिक्षा के लिए महत्वपूर्ण कार्य किया। मुस्लिम समुदाय के बीच नई जागृति लाने में उनका विशेष योगदान है। फोर्ट विलियम कालेज की स्थापना (कलकत्ता/1800) से नवजागरण की विचारधारा को प्रसार के लिए अवसर मिला था। जब 1885 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना हुई तब तक नवजागरण की चेतना स्वाधीनता संघर्ष की चेतना के साथ घुलमिल चुकी थी। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना का जितना राजनीतिक महत्व है उतना ही सांस्कृतिक महत्व है।

आधुनिक युग की एक बड़ी सांस्कृतिक चिंता थी–देश, प्रेम, राष्ट्रीय अस्मिता और विश्वभावना या विश्वदृष्टि में सामंजस्य। एक ओर परम्परा के ग्रहण या रक्षा की नैतिक जिम्मेदारी थी तो दूसरी ओर नवीनता के साथ उसके उपयुक्त सामंजस्य के विवेक का भी प्रश्न था। सत्रहवीं–अठारहवीं सदी में अंग्रेज व्यापारियों ने जो विश्व बाजार बनाया था वह मानवीय स्वाभिमान के लिए चुनौती बना। हिंदी लेखक महावीर प्रसाद द्विवेदी ने 1908 की 'सरस्वती'

में इसके लिए चिंता प्रकट की है। अनुमान किया जा सकता है कि भारतीय लेखक आधुनिक युग में मनुष्य मात्र की चिंता के लिए अधिक उद्विग्न थे। रवीन्द्रनाथ और प्रेमचंद का साहित्य इसी गहरी विकलता का उदाहरण है। दुनिया में मनुष्य के साथ कहाँ क्या घट रहा है यह जानने के लिए बेचैन भारत की अपनी सामाजिक संरचना को देखें तो यहाँ सामंतवाद की रूढ़ियाँ प्रबल थीं। वे बार–बार नये रूपों में प्रकट होती थीं। वर्ण–व्यवस्था कट्टर थी। वह भी नये–नये रूपों में चुनौती की तरह प्रकट होती थी। विज्ञान की स्वीकृति के लिए बहुत लंबा संघर्ष जरूरी था। महावीर प्रसाद द्विवेदी, चंद्रधरशर्मा गुलेरी और प्रेमचंद का संघर्ष इसी दृष्टि से महत्वपूर्ण है। महाराष्ट्र में निम्न वर्ण में जन्म लेकर ज्योतिबा फुले (1827–1890) ने नवजागरण की प्रक्रिया न सिर्फ तेज की, बल्कि नवजागरण की एक दूसरी धारा के प्रवर्तन से प्रभुत्वशाली वर्ग को चुनौती दी। 1848 में उन्होंने निम्न जाति के लड़कों के लिए स्कूल खोला। 1851 में लड़कियों के लिए स्कूल खोला। ब्राह्मणेतरों को संगठित कर उन्होंने जो आंदोलन उन्नीसवीं शताब्दी में चलाया, उसी की अगली कड़ी बीसवीं शताब्दी में भीमराव अम्बेडकर कहे जा सकते हैं जिनके योगदान को कभी भुलाया नहीं जा सकता।

स्वेदशी भाषाओं की प्रतिष्ठा के लिए विकसित नयी जागरूकता को भी बृहत्तर नवजागरण का जरूरी हिस्सा समझना चाहिए। गद्य का विकास कमोबेश सभी भारतीय भाषाओं के साहित्य में एक साथ हुआ। मुद्रण कला का विकास, पत्र–पत्रिकाओं का प्रकाशन, पाठक वर्ग का उदय, पूर्व–पश्चिम की संस्कृति का संबंध और संघर्ष, मुक्ति संघर्ष की चेतना, दलितों–उपेक्षितों का उत्थान, सामाजिक न्याय समता के लिए निरंतर संघर्ष, सौन्दर्याभिरुचि में बुनियादी बदलाव, विश्वभावना का विकास–ये तमाम संदर्भ मिलकर आधुनिक युग की मानसिकता का निर्माण करते हैं। भारतीय भाषाओं का आधुनिक साहित्य इसका उदाहरण है कि जिस यूरोप के संपर्क में हमारे यहाँ आधुनिक चेतना का विकास हुआ उसी ने नये अवरोध भी पैदा किये। पर इतिहास में आगे देखना जरूरी होता है, पीछे लौटना नहीं। अतः यूरोप के सकारात्मक अवदान को ग्रहण करते हुए ही हमें अपनी भारतीयता और अपनी आधुनिकता में संगति बिठानी है। आधुनिक भारतीय साहित्य आज विश्व साहित्य का जरूरी अंग है–यह स्थिति प्राप्त करने में भारतीय नवजागरण और स्वाधीनता आंदोलन की महत्वपूर्ण भूमिका रही है।

1.3.3 आधुनिक युग : साहित्यिक संदर्भ

उन्नीसवीं शताब्दी के अंत और बीसवीं शताब्दी के आरंभ तक यूरोप ही विश्व साहित्य का केंद्र था। साम्राज्य विस्तार और उपनिवेश निर्माण के क्रम में वह अफ्रीका, एशिया और अमरीका के साहित्य के संपर्क में आया। दूसरी ओर पूरे विश्व में आधुनिक युग की महत्वपूर्ण पहचान बनी उपनिवेशवाद विरोध और साम्राज्यवाद विरोध की चेतना। आधुनिक युग की यह महत्वपूर्ण पहचान बनाने में प्रेस की भूमिका महत्वपूर्ण रही है जिसके चलते गद्य आया और कितने ही नये रूपों और शैलियों को विकास का अवसर मिला। प्रेस की स्थापना प्रेस का उदय उन्नीसवीं शताब्दी के सांस्कृतिक जगत की बड़ी घटना है। प्रेस को ही साहित्य में आधुनिकता का वाहक कहा गया है जिसके प्रचार के सहायक हैं यातायात और संचार के विकसित साधन। प्रेस ने साहित्य को प्रजातांत्रिक रूप दिया। अब साहित्य के केंद्र में देवता या राजा–रानी न रहे। उनका स्थान साधारण जनता ने ले लिया। यूरोपीय संपर्क में जो नया युग शुरू हुआ उसमें अंग्रेजी शासकों, ईसाई मिशनरियों की अपनी भूमिका थी। सामाजिक सुधार के कार्यक्रमों में भी उन्होंने हिस्सा लिया। 1832 में श्रीरामपुर के मिशनरियों ने भारत की लगभग चालीस भाषाओं में अपने धर्मग्रंथ छापे। उनमें बघेली, छत्तीसगढ़ी, कन्नौजी, भोजपुरी जैसी बोलियाँ भी थीं। प्रेस आया तो गद्य आया और उसके विभिन्न रूप

आये। जैसे उपन्यास, कहानी, जीवनी, आत्मकथा आदि। पत्र–पत्रिकाओं का प्रसार बढ़ा। शिक्षित जनता के उदय और नवजागरण में उनकी हिस्सेदारी के कारण साहित्य की संवेदना में गुणात्मक अंतर आया। गद्य को अगर निराला ने जीवन संग्राम की भाषा कहा है तो उसके व्यापक अर्थ है। विदेशी भाषा के विरुद्ध अपनी भाषा की रक्षा और विकास के संदर्भ में गद्य के उदय की महत्वपूर्ण भूमिका थी।

आधुनिक युग का साहित्य : आंदोलन और शैलियाँ

आधुनिक युग की संवेदना के निर्माण में यूरोपीय उपन्यास की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। उन्नीसवीं शताब्दी में गद्य की नयी विधा के रूप में विकसित उपन्यास ने आधुनिक समाज के यथार्थ चित्रण के लिए बड़ी लोकप्रियता अर्जित की। तोल्सतोय के 'पुनर्जीवन' (1899) जैसे उपन्यास आधुनिक समाज की आलोचना करते हुए नयी चेतना या नये मनुष्य के जन्म की संभावना की ओर संकेत करते हैं। कविता में स्वच्छन्दतावाद ने एक नयी संबंध भावना को जन्म दिया। रवीन्द्रनाथ ठाकुर (1861–1941) की कृति 'गीतांजलि' (1913) को नोबेल पुरस्कार मिला। वे एशिया में राष्ट्रीय पुनर्जागरण की अभिव्यक्ति के लिए पहले प्रतिनिधि तथा अग्रणी लेखक के रूप में प्रसिद्ध हुए। उनमें प्राचीन भारतीय परम्परा और नयी यूरोपीय चेतना का सार्थक सामंजस्य है। अनेक विधाओं में उपलब्ध उनका साहित्य आधुनिक युग की सच्ची संवेदना विकसित करने में सबसे अधिक सहायक सिद्ध हुआ। बंकिम, शरत चंद्र, फकीर मोहन, सेनापति, तकषी शिवशंकर पिल्ले, रवीन्द्रनाथ, प्रेमचंद आदि के उपन्यासों ने भारतीय समाज के बदलते रूपों को सार्थक झलक दी। स्वच्छन्दतावाद, प्रतीकवाद, बिम्बवाद, यथार्थवाद वे अनेक आंदोलन हैं जिन्होंने आधुनिक युग की संवेदना विकसित करने के लिए नयी शैलियों का आश्रय लिया। परम्परा और आधुनिकता के द्वंद्व को समझने में 'द वेस्ट लैंड' (1922) के लेखक टी.एस. इलियट का साहित्य एक हद तक सहायक है। हिंदी कवि जयशंकर प्रसाद 'कामायनी' (1936) लिखकर आधुनिक मनुष्य के संकट की ही पहचान करा रहे थे। लैटिन अमरीकी कवियों, कथाकारों ने यूरोपीय आधुनिकता के समानांतर ठेठ देसी आधुनिकता को महत्व दिया जो आंचलिकता के रंग में रची–बसी है।

राष्ट्रीय अस्मिता और विश्वभावना के गहरे संबंधों को लेकर आधुनिक युग में रूसी लेखक प्रायः चिन्तित रहे हैं। अफ्रीका का आधुनिक साहित्य उपनिवेशवाद विरोधी है और गहरे अर्थ में राष्ट्रवादी है। व्यापक अर्थ में आधुनिक भारतीय साहित्य नवजागरण और स्वतंत्रता की चेतना से अनुप्राणित रहा है। मुक्ति संघर्ष की प्रक्रिया में लगे हुए अनेक देशों की मूल भावधारा इसी नवजागरण और स्वाधीनता संघर्ष से स्फूर्ति प्राप्त करती है।

बोध प्रश्न–2

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दें।

1. आधुनिक युग की चेतना का निर्माण करने वाले तीन प्रमुख तत्वों का उल्लेख कीजिए :

   क) ....

   ख) ....

   ग) ....

2. वर्ष 1800 किसलिए महत्वपूर्ण है (अ) का चिह्न लगाकर बताइए।

   क) प्रेस की स्थापना के लिए ( )

ख) गीतांजलि के प्रकाशन के लिए ( )

ग) भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना के लिए ( )

घ) फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना के लिए ( )

3. निम्नलिखित कृतियों के लेखकों के नाम लिखिए :

क) द वेस्ट लैंड ....

ख) पुनर्जीवन ....

ग) रंगभूमि ....

घ) कामायनी ....

4. महाराष्ट्र में निचले वर्ण में जन्म लेकर दलितों और स्त्रियों की शिक्षा के लिए आंदोलन चलाने वाले विचारक और कर्मयोद्धा का नाम लिखिए।

....

....

....

अभ्यास

2. राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलनों को किन विचारकों और विचारधाराओं ने प्रभावित किया। उत्तर पाँच पंक्तियों में लिखिए।

....

....

....

4. प्रेस के उदय ने साहित्य पर क्या प्रभाव डाला ?

....

....

....

1.4 आधुनिक युग की मूल संवेदना

आधुनिक युग की अब तक की पृष्ठभूमि को समझने के बाद आइए हम इसकी मूल संवेदना को समझें। चूंकि उस दौर में भारत पर विदेशी शासन था इसलिए राष्ट्रीयता और स्वाधीनता की भावना का उदय स्वाभाविक था। इसी प्रकार इस सोच ने कि हम गुलाम क्यों बनें, हमारे यहाँ समाज सुधार के आंदोलनों की शुरुआत का कारण बना। एक ओर हमने अतीत की गलत रूढ़ियों और परंपराओं से मुक्ति प्राप्त करने का प्रयत्न किया तो दूसरी ओर हमने अपनी परंपरा के श्रेष्ठ मूल्यों की रक्षा का दायित्व भी ग्रहण किया, यही नवजागरण की भावना थी।

1.4.1 राष्ट्रीय स्वाधीन चेतना

परदेशी वस्तु और 'परदेशी भाषा' के विरुद्ध भारतेन्दु ने जिस स्वाधीन चेतना की मांग की थी वह उत्तरोत्तर विकसित होती गयी। हाली का 'मुसद्दस' और भारतेंदु के नाटक देश में उठती नयी जातीय राष्ट्रीयता की भावना को व्यक्त कर रहे थे। प्रसाद के नाटकों में यह स्वाधीन चेतना मौजूद है। इसे निराला, प्रेमचंद भी अपने साहित्य में महत्वपूर्ण अभिव्यक्ति दे रहे थे। रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने आधुनिक होने के प्रयत्न में इस चेतना को अनिवार्य सहयोगी माना था। विश्व परिप्रेक्ष्य में माना जाता है कि सामंतवाद की समाप्ति और पूंजीवाद के उदय के साथ ही राष्ट्र जैसी अवधारणा का उदय हुआ। पूंजीवाद के विकास के साथ ही राष्ट्रीय आंदोलन का विकास हुआ। इसी तरह भारत में आधुनिक युग के आगमन नवजागरण और राष्ट्रीय आंदोलन का श्रेय उपनिवेशवाद को दिया जाता है। फिर भी भारतीय संदर्भ में राष्ट्रीय स्वाधीनता की चेतना के उभार के पीछे निजी कारण हो सकते हैं। आधुनिक भारतीय साहित्य में भी जहाँ–तहाँ मातृभूमि की कल्पना जिस रूप में मौजूद है, उसे देखते हुए ऐसे निजी कारणों की ओर ध्यान जाना स्वाभाविक है। यह राष्ट्रीय स्वाधीन चेतना आधुनिक युग की मूल संवेदना है पर उसकी भी कई धाराएँ हैं। वे आधुनिकता जैसे मूल्य बोध के लिए कभी–कभी उलझन भी पैदा करती हैं। साधनों (हिंसा, अहिंसा) की दृष्टि से ही नहीं, अधिक बुनियादी रूप में भी कई बार 'हिंदू चेतना' जैसे विचार राष्ट्रीयता की और संकीर्ण सीमित अवधारणा लेकर चलते हैं जो अंततः दूसरे धर्मावलंबियों में राष्ट्रविरोधी प्रतिक्रिया के रूप में उभरता है इससे संघर्ष करते हुए हमने आधुनिक युग की चुनौतियों के अनुरूप राष्ट्रीयता की व्यापक धारणा विकसित की है–जिसके अपने मूल्य हैं–लोकतंत्र, धर्मनिरपेक्षता आदि।

1.4.2 नवजागरण

उन्नीसवीं सदी के नवजागरण में हिंदुत्व के आग्रह के सभी रूप एक से न थे। कहीं दृष्टि अधिक उदार थी और परम्परा के सार्थक ग्रहण को महत्व देती थी (ब्रह्म समाज, विवेकांनद)। कहीं वैदिक हिन्दुत्व के पोषण पर अतिरिक्त बल था (आर्य समाज)। उन्नीसवीं शताब्दी में भारतीय नवजागरण के अग्रदूत राजाराम मोहन राय अपने समय की सांस्कृतिक चेतना को नवजागरण कह देते थे जबकि बंकिम चंद्र पंद्रहवीं शताब्दी के भक्ति आंदोलन को सच्चे अर्थों में नवजागरण मानते थे। हिंदी आलोचक डा. रामविलास शर्मा ने भक्तिकालीन आंदोलन को लोकजागरण कहा और उन्नीसवीं शताब्दी के जागरण को नवजागरण कहा। अधिक महत्वपूर्ण संदर्भ यह कि उन्होंने अलग से हिंदी नवजागरण की विशिष्टता खोजने और स्पष्ट करने की कोशिश की। हिंदी नवजागरण की विशिष्टता बताने के लिए उन्होंने सन् अठारह सौ सतावन की राज्य–क्रांति को उसका बीज माना। विचार के लिए यह एक संदर्भ हो सकता है पर यह एक सच्चाई है कि भारतेंदु तथा उनके सहयोगियों ने बंगाल के नवजागरण से ही प्रेरणा ली थी। आधुनिक युग की बहुत सी विशेषताएँ, नयी संबंध भावना, नयी सौंदर्य दृष्टि आदि बंगाल के नवजागरण की ही देन है।

बोध प्रश्न–3

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दें।

1. नयी जातीय राष्ट्रीयता के प्रतिनिधि किन्हीं दो लेखकों के नाम बताइये।

   क) ....

   ....

ख) ....

....

2. उन्नीसवीं सदी के नवजागरण में हिन्दुत्व के आग्रह मुख्यतः दो प्रकार के थे। उनमें मुख्य अंतर बताइये।

....

....

....

1.5 मूल्यांकन

विश्व इतिहास में आधुनिक युग की शुरुआत मानव सभ्यता के नये चरण की शुरुआत थी। ज्ञात इतिहास में पहली बार मनुष्य ने अपने सोच के केंद्र में स्वयं मनुष्य को रखा—न धर्म को, न भाग्य को, न राजा को, न पुरोहित को। धर्म, जाति, लिंग, नस्ल, भाषा, क्षेत्र के आधार पर मनुष्य—मनुष्य के बीच किसी तरह का भेदभाव करने को बुरा माना गया। मनुष्य के बीच समानता को एक आदर्श के रूप में प्रतिष्ठित किया गया और लोकतंत्र के द्वारा एक ऐसी राजनीतिक प्रणाली को विकसित किया गया जिसमें सभी की बराबर की भागीदारी हो। आधुनिक युग के इसी अवदान के मूल्यांकन पर यहाँ विचार कर रहे हैं।

1.5.1 आधुनिक युग का अवदान

हिंदुस्तान की कहानी लिखते हुए जवाहरलाल नेहरू ने अनुभव किया था कि हम मानव जाति के एक महायुग में रह रहे हैं और इस सौभाग्य की हमको कीमत देनी होगी। हर महायुग में संघर्ष और अस्थिरता की भरमार होती है, पुरानी व्यवस्था को छोड़कर नई के लिए कोशिश होती है। उन्नीसवीं शताब्दी से बीसवीं शताब्दी के इस अंतिम दशक तक आधुनिक युग समस्याओं और चुनौतियों से घिरा रहा है। इस अर्थ में भी यह एक महान युग है। आधुनिक युग वस्तुतः इसलिए महान् है क्योंकि पहली बार इसमें मनुष्य को सभ्यता के केंद्र में रखा गया और उसके बीच समानता पर बल दिया गया। सामंतवाद के संकट और पूंजीवाद के विकास के साथ ही उपनिवेशवाद विरोधी चेतना का विस्तार हुआ और राष्ट्रीय स्वाधीनता जैसी चेतना ने रूप और आकार ग्रहण किया। पुनर्जागरण या नवजागरण के युग का एक महत्वपूर्ण अवदान है—मध्ययुगीन मानसिकता से मुक्ति, अनेक सामाजिक रूढ़ियों से मुक्ति। उसका दूसरा पहलू है नयी प्रगतिशील विचारधारा, नयी संबंध भावना का उदय। दलित और शोषित का मुक्ति के लिए संघर्ष, स्त्री की मुक्ति के लिए संघर्ष, सामाजिक न्याय और समानता के लिए संघर्ष, लोकतंत्र धर्मनिरपेक्षता और समाजवाद के पक्ष में संघर्ष आधुनिक युग को महत्वपूर्ण बनाते हैं। इस नवजागरण और स्वाधीन चेतना के सम्यक विकास के पीछे यूरोपीय शिक्षा की भूमिका रही है, प्रेस एवं पत्रकारिता का विकास है, शिक्षात्मक समितियों—संस्थाओं का उदय है, राष्ट्रीय और क्षेत्रीय भाषाओं का प्रचार—प्रसार है।

1.5.2 आधुनिक युग के संदर्भ में भारतीय साहित्य की पहचान

आधुनिक युग के संदर्भ में भारतीय साहित्य की एक अपनी नयी पहचान बनी। नवजागरण के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में हम देख चुके हैं कि राजा राममोहन राय, माइकेल मधुसूदन दत्त,

बंकिम चंद्र चट्टोपाध्याय राष्ट्रीयता के साथ अंतर्राष्ट्रीयता या विश्व भावना के विकास के लिए सचेष्ट थे। स्वच्छंदतावाद और यथार्थवाद जैसी विचारधाराओं के पीछे नवजागरण और स्वाधीन चेतना के लिए चलाया गया लंबा संघर्ष था। 1936 के प्रगतिशील लेखक आंदोलन में रवीन्द्रनाथ, शरत चंद्र, वल्लतोल, हसरत मोहानी, जवाहरलाल नेहरू की हिस्सेदारी थी। आधुनिकता के उदय और विकास में केवल इंग्लैंड–अमरीका की भूमिका महत्वपूर्ण नहीं रही है। अफ्रीकी, एशियाई लातीनी अमरीकी साहित्य ने आधुनिकता की चेतना को नया अर्थ दिया। जहाँ तक एशियाई देशों के साहित्य का सवाल है उसकी अंतर्वस्तु प्रायः स्वदेशी ही रही। एशियाई देशों का आधुनिक साहित्य मुक्ति की चेतना से संपन्न है। आधुनिक भारतीय साहित्य एक साथ अपनी आधुनिकता और भारतीयता, आंचलिकता और लोकोन्मुखता तथा विश्वजनीनता के लिए महत्वपूर्ण है। एक और आधुनिक युग ने भारतीय साहित्य को विश्व चेतना से संपन्न किया, दूसरी ओर उसे अपनी जड़ों को खोज के प्रति उत्सुक बनाया।

बोध प्रश्न–4

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दें।

1. आधुनिक युग किस अर्थ में महान युग है?

   ....

   ....

   ....

2. राजा राममोहन राय, बंकिम चंद्र आदि राष्ट्रीयता के साथ किस विशेष संदर्भ पर बल दे रहे थे?

   ....

   ....

   ....

अभ्यास

4) राष्ट्रीयता स्वाधीनता की चेतना का आशय स्पष्ट कीजिए।

   ....

   ....

   ....

5) आधुनिक युग का प्रमुख अवदान बताइए।

   ....

   ....

   ....

1.6 सारांश

- 'आधुनिक युग की भूमिका' नाम की इकाई में आपने आधुनिक युग का आरंभ कब से हुआ इसका अध्ययन किया है। यूरोप में वैसे तो पंद्रहवीं शताब्दी के पुनर्जागरण से नये

जीवन मूल्य उभरने लगे थे परंतु आधुनिक युग की शुरुआत फ्रांस की राज्य क्रांति और औद्योगिक क्रांति से ही हुई जिसने स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व के नये मूल्य दिये।

- भारत में जब 1757 में प्लासी युद्ध के बाद अंग्रेजों के राज की स्थापना हुई, तब यहाँ सामंती व्यवस्था का ही वर्चस्व था। अंग्रेजों ने 19वीं शती के आरंभ में पश्चिमी ढंग की शिक्षा पद्धति आरंभ की और राज्य व्यवस्था में भी कई नये बदलाव किये। इनके संपर्क में आने से भारतीयों में भी नये विचारों का उदय हुआ। कल कारखानों की स्थापना, प्रेस की स्थापना आदि ने भारतीय जीवन में व्यापक परिवर्तन किये। एक नये मध्यवर्ग का उदय हुआ जिसने आधुनिक चेतना को अपने देशवासियों में प्रचारित करने का जिम्मा लिया।

- उन्नीसवीं शताब्दी में आरंभ हुए इस नवयुग की प्रमुख विशेषता है, समाज सुधार, अतीत का पुनर्मूल्यांकन, स्वाधीन चेतना, राष्ट्रीय भावना और समानता विवेकशीलता और लौकिकता के नये मूल्य।

- इन्हीं आधुनिक भावनाओं और विचारों की अभिव्यक्ति उस युग के साहित्य के माध्यम से भी हुई। बंकिम चंद्र, गालिब, हाली, रवीन्द्रनाथ ठाकुर, प्रेमचंद, निराला, वल्लातोल, सुब्रह्मण्य भारती, कुमारन आशान आदि रचनाकारों ने आधुनिक भावबोध को अपनी रचनाओं के माध्यम से अभिव्यक्ति प्रदान की और इस प्रक्रिया में उन्होंने सामंतवाद विरोध और साम्राज्यवाद विरोध की भावना को पुष्ट किया।

- आधुनिक युग पर पश्चिम के पूंजीवादी व्यवस्था, 1917 की सोवियत क्रांति और प्रथम एवं द्वितीय विश्वयुद्धों का प्रभाव पड़ा। इसी दौर में भारत अपनी राष्ट्रीय मुक्ति के लिए भी प्रयत्नशील रहा और विभिन्न मंजिलों से गुजरते हुए 15 अगस्त 1947 को देश ने स्वतंत्रता हासिल की।

- इस युग में ही समाज सुधारकों और विचारकों ने नये भारत के निर्माण की मुहिम चलाई। सामंती सामाजिक और धार्मिक रूढ़िवाद के विरुद्ध समाज सुधार आंदोलन चलाया गया।

- प्रेस की स्थापना ने भारतीय भाषाओं के साहित्य के नये युग का सूत्रपात किया। स्वच्छंदतावाद और प्रगतिवाद ने साहित्य में नयी चेतना को अभिव्यक्ति प्रदान की।

- आधुनिक युग की मूल संवेदना राष्ट्रीय स्वाधीन चेतना और नवजागरण की भावना है जिनका अध्ययन आप आगे की इकाइयों में विस्तार से करेंगे।

आशा है इस इकाई को पढ़ने के बाद उपर्युक्त को अपने शब्दों में व्यक्त कर सकेंगे।

1.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

रामविलास शर्मा : भारतेन्दु हरिश्चंद्र, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली

रामविलास शर्मा : महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिंदी नवजागरण, राजमल प्रकाशन, नई दिल्ली

पूरनचंद्र जोशी : परिवर्तन और विकास के सांस्कृतिक आयाम, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली

के. दामोदरन : भारतीय चिंतन परंपरा, पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली।

1.8 बोध प्रश्नों / अभ्यासों के उत्तर

बोध प्रश्न –1

1) घ)

2) क) स्वाधीन चेतना ख) नवजागरण ग) विश्व दृष्टि

3) क) इतिहास–दृष्टि, परम्परा का बोध, वैज्ञानिक विवेक ख) गोरा

बोध प्रश्न–2

1) क) उपनिवेशवाद विरोध

   ख) साम्राज्यवाद विरोध

   ग) सामंतवाद विरोध

2) घ

3) क) टी.एस.इलियट

   ख) तोल्सतोय

   ग) प्रेमचंद

   घ) जयशंकर प्रसाद

4) ज्योतिबा राव फुले

बोध प्रश्न –3

1) क) हाली ख) भारतेंदु

2) एक में अतीत के पुनरुत्थान पर बल था जबकि दूसरे में नये युग के अनुरूप परिवर्तन पर बल था।

बोध प्रश्न –4

1) देखिए उपभाग 1.5.1

2) राष्ट्रीयता के साथ विश्व भावना पर भी बल दे रहे थे। .

अभ्यास

1) देखिए उपभाग 1.2.2

2) राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन को फ्रांस की राज्य क्रांति, मार्क्सवाद तथा 1917 की सोवियत क्रांति ने प्रभावित किया। बाल्तेयर, रूसो, मार्क्स, लेनिन ताल्स्ताय आदि विचारकों ने भी अपना प्रभाव डाला।

3) देखिए 1.3.3 उपभाग।

4) देखिए उपभाग 1.4.1

5) देखिए उपभाग 1.5.1

इकाई 2 आधुनिक युगीन परिस्थितियाँ

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 आधुनिक युग : स्वरूप एवं स्थिति

2.3 नामकरण एवं सीमांकन

2.4 आधुनिक युग की परिस्थितियाँ

2.4.1 राजनीतिक परिस्थिति

2.4.2 आर्थिक परिस्थिति

2.4.3 सामाजिक परिस्थिति

2.4.4 धार्मिक परिस्थिति

2.4.5 सांस्कृतिक परिस्थिति

2.5 साहित्य, संगीत एवं अन्य कलाएँ

2.6 राष्ट्रीय चेतना का विकास

2.7 सारांश

2.8 शब्दावली

2.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

2.10 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

2.0 उद्देश्य

इस खंड की यह दूसरी इकाई है, जिसमें 'आधुनिक युगीन परिस्थितियों' का विवेचन प्रस्तुत किया गया है। आधुनिक युग की निर्विवाद महत्ता को निर्मित एवं स्थापित करने वाली युगीन परिस्थितियों से सम्बद्ध इस इकाई के अध्ययन से आप :

- आधुनिक युग के स्वरूप एवं स्थिति को स्पष्ट कर सकेंगी/सकेंगे;
- नामकरण एवं सीमांकन का निर्धारण कर सकेंगी/सकेंगे;
- आधुनिक युग की विभिन्न परिस्थितियों का विश्लेषण करते हुए राजनीतिक एवं आर्थिक परिवेश की व्याख्या कर सकेंगी/सकेंगे;
- सामाजिक परिस्थितियों की समीक्षा करते हुए कृषक, श्रमिक, जमींदार, पूंजीपति तथा मध्यवर्गीय समाज का स्वरूप बता सकेंगी/सकेंगे;
- धार्मिक दृष्टि से हो रहे परिवर्तनों के परिप्रेक्ष्य में युगीन पृष्ठभूमि को बता सकेंगे/सकेंगी;
- पूरे राष्ट्र में व्याप्त हो रही आधुनिक सांस्कृतिक चेतना को समझा सकेंगी/सकेंगे;
- आधुनिक युग के प्रादुर्भाव एवं आधुनिकता के स्वरूप को बता सकेंगी/सकेंगे; और

- आधुनिक हिंदी साहित्य की प्रमुख विशेषताएं बताते हुए साहित्य के सोपानों का परिचय करा सकेंगी / सकेंगे।

2.1 प्रस्तावना

इस इकाई में आप सबसे पहले उन परिस्थितियों की विशेष रूप से जानकारी प्राप्त करेंगे। जिनमें आधुनिक हिंदी साहित्य का सर्जन हुआ है। आप जानते ही हैं कि किसी देश के इतिहास का उसके साहित्य पर बड़ा गहरा प्रभाव पड़ता है। जब तक हम उस राष्ट्र के इतिहास की विभिन्न परिस्थितियों, प्रवृत्तियों और परिवर्तन की गति को भली भांति समझ लेते, तब तक उस देश या राष्ट्र के साहित्य के स्वरूप को भी ठीक–ठीक समझ नहीं सकते क्योंकि साहित्य उस राष्ट्र की सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक आदि परिस्थितियों से प्रभावित होता है। वह उन परिस्थितियों से अपना वर्ण्य–विषय, रूप, विद्या, आकार, परिमाण आदि ग्रहण करता है।

हिंदी साहित्य के एक हज़ार वर्षों से भी अधिक लम्बे इतिहास में आधुनिक हिंदी साहित्य (प्रारंभ 19वीं शताब्दी का मध्य) अपने पूर्ववर्ती हिंदी साहित्य से वर्ण्य विषय, रूप, विधा आदि में भिन्न है। उसमें परिवर्तन की गति भी पूर्ववर्ती साहित्य की गति की अपेक्षा बहुत अधिक रही है। इन भिन्नताओं और शीघ्र परिवर्तनों का कारण आधुनिक काल की भिन्न–भिन्न परिस्थितियाँ हैं, जो इस देश के पाश्चात्य जगत से संपर्क में आने और भौतिक विज्ञान के प्रसार के कारण उत्पन्न हुई। साहित्य एक निरंतर गतिशील भावधारा और विचारधारा है, जो प्राचीन परम्पराओं से जुड़ी होकर भी नए युग की विभिन्न परिस्थितियों में आगे बढ़ती रहती है। इस इकाई में हम उन्हीं आधुनिक युगीन परिस्थितियों को भी समझने का प्रयास करेंगे।

'आधुनिक' शब्द काल वाचक 'अधुना' अव्यय से बना है। 'अधुना' का अर्थ है 'इस समय', 'सम्प्रति', 'वर्तमान काल'। अतः 'आधुनिक' का अर्थ है, 'इस समय का', 'हाल का', 'नया', 'वर्तमान समय का'। इस दृष्टि से तो हम केवल अपने सामने उपस्थित समय को ही 'आधुनिक काल' और अपने सामने रचित साहित्य को ही 'आधुनिक साहित्य' कह सकते हैं। तर्क–दृष्टि से यह ठीक भी है। किंतु जब हम हिंदी साहित्य के लम्बे इतिहास को देखते हैं तो पाते हैं कि आदिकाल से रीतिकाल की समाप्ति तक आते–आते पाश्चात्य प्रभाव और बाद में पाश्चात्य आक्रान्ताओं द्वारा भारत पर अधिकार कर लिए जाने से पैदा हुई बिल्कुल नई, बदलती हुई, राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक परिस्थितियों का हिंदी साहित्य पर गहरा और व्यापक प्रभाव पड़ा। हिंदी साहित्य को नई–नई दिशाएं, नए–नए रूप और नए आयाम प्राप्त हुए। हिंदी साहित्य में ही नहीं, समूचे भारत की प्रमुख भाषाओं के साहित्य में परिवर्तन और नवीनता के लक्षण 19वीं शताब्दी के पूर्वाद्ध में ही दिखाई देने लगे थे। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 1990 ई. (सन् 1843) से हिंदी साहित्य की आधुनिक काल का आरंभ माना है।

वास्तव में 'आधुनिक' शब्द सापेक्षिक है। आज जो 'आधुनिक' है, वही सौ दो सौ वर्ष के कालांतर में पुराना हो जाएगा। किंतु साहित्येतिहास के कालों के अनुक्रम में अंतिम काल खंड को सदा ही 'आधुनिक काल' कहा जाता है, और जब तक किसी नए मोड़ या परिवर्तन का आभास नहीं होता, वह इसी नाम से पुकारा जाता है।

'आधुनिक' शब्द जहाँ काल सापेक्षता को व्यक्त करता है, वहीं यह नवीनता, वैज्ञानिक–दृष्टि, बौद्धिकता और तर्क–वितर्क की प्रवृत्ति का भी सूचक है। आज जीवन और साहित्य में 'आधुनिकता' से यही तात्पर्य है। किंतु प्रस्तुत संदर्भ में हम मुख्य रूप से काल विभाजन की दृष्टि से आधुनिक युगीन परिस्थितियों का निरूपण करेंगे।

साहित्य के इतिहास—लेखकों ने हिंदी साहित्य के इतिहास के उस काल को आधुनिक काल कहा है, जिसमें हमारे देश का संपर्क पश्चिमी सभ्यता, संस्कृति, भाषा, धर्म, जीवन—पद्धति, राजनीति, शासन व्यवस्था, विज्ञान आदि से हुआ। भारत में हजारों वर्षों से अनेक जाति और धर्मों के लोग आते रहे हैं। उनके कारण भारत के मूलभूत स्वरूप में कोई विशेष अंतर नहीं आया। किंतु विगत दो सौ वर्षों में भौतिक विज्ञान की शक्ति लेकर यूरोप से जो जातियाँ पहले व्यापार के उद्देश्य से इस देश में आई और फिर अपनी कूटनीति और छलबल से इस देश को आक्रान्त कर लिया, उनके संपर्क का बहुत गहरा और व्यापक प्रभाव इस देश पर पड़ा। लगभग दो सौ वर्षों के ब्रिटिश शासन ने भारतवर्ष में परिवर्तन के ऐसे दृश्य उपस्थित कर दिए, जिनकी कल्पना भी पहले कभी नहीं की गई थी। भारत के लिए वह एक अभूतपूर्व, नया अनुभव था। अपनी अत्यंत प्राचीन और विशेष प्रकार की पौरास्त्य (पूर्वीय) सभ्यता, संस्कृति, धर्म, भाषा, जीवन—पद्धति के सामने उसने एक नितांत भिन्न जीवन मूल्यों वाली सभ्यता—संस्कृति, भाषा और भौतिक विज्ञान की शक्ति को चुनौती के रूप में खड़ा पाया। हिंदी जगत ने इन नई परिस्थितियों को देखा, समझा, संघर्ष भी किया और उनसे समझौते का मार्ग भी अपनाया। संवेदनशील, साहसी, दूरदर्शी और प्रतिभाषाली भारतीय चिंतकों एवं साहित्यकारों ने अनेक सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक आंदोलनों द्वारा आधुनिक भारत एवं आधुनिक हिंदी साहित्य के निर्माण में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। परंतु यहाँ इन आंदोलनकारी परिस्थितियों के अध्ययन से पूर्व आधुनिक युग के स्वरूप और स्थिति पर भी थोड़ी जानकारी हासिल कर लेना अनुचित न होगा।

2.2 आधुनिक युगः स्वरूप एवं स्थिति

यहाँ हम आधुनिक युग के स्वरूप और स्थिति की, परिवेश और परिस्थितियों की अथवा पूर्वपीठिका और पृष्ठभूमि की विवेचना इसलिए कर रहे हैं जिससे कि आधुनिक हिंदी साहित्य के निर्माण, उसके परिवर्तित स्वरूप, उसकी बदलती दृष्टि, उसके नए भाषिक आयाम तथा उसकी सामयिक अपेक्षाओं के मूलभूत कारण स्पष्ट हो सकें। 'आधुनिक' शब्द समय—सापेक्ष है और इसकी चर्चा पहले भी की गई है। क्या आज का 'आधुनिक' सदैव आधुनिक रह सकता है? संभवतः दो सौ वर्ष बाद यह आधुनिक न रहे। इस अर्थ—सीमा को किसी भी संदर्भ अथवा परिप्रेक्ष्य में देखा जा सकता है। साहित्य के संदर्भ में तथा इतिहास के संदर्भ में इसे दो अर्थों में समझा जा सकता है। एक तो आदिकाल तथा मध्यकाल (पूर्व—मध्यकाल एवं उत्तर मध्यकाल) से भिन्न नवीन इहलौकिक दृष्टिकोण की सूचना देने वाली सभी गतिविधियों के परिप्रेक्ष्य में और दूसरे लौकिक, सामाजिक एवं सांसारिक दृष्टिकोण के बदलते, संवरते और निखरते स्वास्थ्य, परिवेश तथा वातावरण के परिप्रेक्ष्य में।

आदिकालीन साहित्य में श्रृंगार, वीर, भक्ति, नीति तथा लौकिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ प्रधान रहीं तो भक्ति काल में भक्ति के निर्गुण और सगुण पक्षों का वर्णन—विवेचन होता रहा। रीतिकाल में श्रृंगारिकता, ऊहात्मकता, रूढ़िवादिता तथा शास्त्रीयता से समृद्ध एक विशेष प्रकार के साहित्य ने एकरसता और अरुचि पैदा कर दी। इन तीन युगों की यात्रा का परिवर्तित—सवंर्द्धित स्वरूप तब सामने आया जब नवीन ऐतिहासिक प्रक्रिया प्रारंभ हुई और आधुनिक गत्यात्मकता का संचार होने लगा। यह आधुनिक तथा नवीन दृष्टिकोण कला और साहित्य में भी इसीलिए अभिव्यक्त हुआ क्योंकि इस युग में, सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिवेश में तथा राजनैतिक एवं धार्मिक परिसर में इसका प्रादुर्भाव हो चुका था। रीतिकाल का श्रृंगारी—ढांचे में ढला हुआ साहित्य युगीन—सत्य और वास्तविकता का परिचायक तो है किन्तु युगीन अपेक्षाओं, जरूरतों तथा विविधताओं तक वह न पहुँच सका था। मात्र

भाषिक–चमत्कार तथा शिल्पगत–सौन्दर्य में उलझा रीतिकालीन–साहित्य जब बदलते युग और विकसित होती दृष्टि को अपेक्षानुसार दिशा–निर्देश तथा वैचारिक आधार न दे सका तो युगीन घुटन से पैदा हुई छटपटाहट ने जीवन–धारा के नए–नए तथा भिन्न–भिन्न स्रोत खोले। साहित्य मानव–जाति के सुख–दुख, आचार–विचार तथा दृष्टिकोण से जुड़ा। परिणामतः एक नई चेतना आई जिसे आधुनिक युग के नाम से जाना गया। यह चेतना जीव, समाज और सामाजिकता के विविध पक्षों में देखी जा सकती है। आधुनिक लेखकों, दार्शनिकों, चिंतकों – विचारकों, धार्मिक व्याख्याताओं ने मानव–चिंतनधारा को शुद्ध मानवीय धरातल पर स्थिर किया। अगली इकाई में आप इसका व्यापक अध्ययन कर सकेंगे। यहाँ साहित्य के संदर्भ में केवल यह स्पष्ट रहे कि आधुनिक युग की विविध साहित्य धाराओं ने सुधार, परिष्कार तथा अतीत के पुनराख्यानों द्वारा एक विशिष्ट नवीनता तथा मौलिकता प्रदान की। भाषिक स्तर पर भी इस नवीनता तथा आधुनिकता के दर्शन होते हैं। डिंगल–पिंगल, मैथिली और अवधी तथा ब्रजभाषा का स्थान इस युग में खड़ी बोली (हिन्दुस्तानी) ने ले लिया। इस आधुनिकता का कारण भी युगीन–परिस्थितियाँ और अपेक्षाएँ ही बनीं।

साहित्य के संदर्भ में हुए परिवर्तनों के लिए जिन कारणभूत–परिस्थितियों की हम चर्चा कर रहे हैं उनका अर्वाचीन अथवा मध्यकालीन परिवेश तथा वातावरण से आधुनिकता की ओर अग्रसर होना भी आधुनिक युग की पृष्ठभूमि में अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। परिवर्तन सृष्टि का, प्रकृति का और विकास का नियम है। यही प्रगति का सूचक भी है। परन्तु यह भी असत्य नहीं कि प्रत्येक परिवर्तन प्रगति का सूचक नहीं होता। अतः आधुनिक युग की पृष्ठभूमि में हुए अनेक परिवर्तन आधुनिकता के कारण बने। इन कारणों ने ही इस युग को विगत तीन युगों की चेतना से पूर्णतः भिन्न एवं सामयिक–प्रासंगिक चेतना प्रदान की।

रीतिकाल के उत्कर्ष के बाद जिस नए युग का आगमन हो रहा था, उसके संकेत अंग्रेजों की नई आर्थिक–नीति, औद्योगिक–क्रांति, संचार–व्यवस्था तथा मुद्रणालयों को प्रचार–प्रसार से मिलने लगते हैं। एकरसता और स्थिरता से निकलकर देश अब गत्यात्मकता का अनुभव करने लगा था। परम्पराएँ टूटने लगीं थीं तथा रूढ़ियों का विरोध पनपने लगा था। सामाजिक जीवन–शैली में नवीनता दिखाई देनी लगी थी। इन बदलती परिस्थितियों ने ही पुनर्जागरण को जन्म दिया था।

धर्म अब आकांक्षाओं के दायरे से निकल कर इहलौकिक आकांक्षाओं का वाहक बन रहा था। अंग्रेज प्रशासकों और इसाई मिशनरियों के आक्रामक रुख के कारण भारतीय धर्म और संस्कृति से सम्बद्ध धर्म–सुधारकों ने धर्म को नई परिभाषा तथा नए प्रारूप में ढालना प्रारंभ कर दिया था। अंधविश्वासों का स्थान अब तर्क ने तथा वैज्ञानिक दृष्टि ने ले लिया था। परिणामतः धर्म समाज–सुधार से जुड़ता चला गया। पुराणपंथियों और समाज–सुधारकों ने अपने मत के प्रचार हेतु धर्मशास्त्रों की शरण ग्रहण की। राजा राममोहन राय ने सती–प्रथा उन्मूलन के लिए धर्मशास्त्रों का सहारा लिया। ईश्वर चन्द्र विद्यासागर ने पौराणिक ग्रंथों को प्रमाण बनाकर जन–सामान्य का ध्यानाकर्षण किया। दयानंद सरस्वती ने सामाजिक–सुधार के लिए वेदों की गवाही से अपने मतों को पुष्ट एवं स्थापित किया। अतः तर्क और प्रमाण के ये शस्त्र अतीत में गौरव को जगाने में सफल हुए तथा रूढ़ियों–अंधविश्वासों को तर्क की तलवार से काट फेंकने में सहायक हुए। परिणामतः देशवासियों में आत्मविश्वास और आत्मसम्मान जागा। इसी चेतना ने पश्चिमी चुनौती का सामना करने और स्वतंत्रता हासिल करने की माँग को स्वर प्रदान किया। अतः धर्म, सुधार तथा राष्ट्रीयता की दूरी कम होने लगी। लोगों ने परंपरा के अंधेरों का विरोध किया तथा उसके प्रकाश का वरण करने की

सोच पैदा की। पाश्चात्य शिक्षा–प्रणाली तथा देश–विदेश के ज्ञान–विज्ञान का परिचय हासिल कर शिक्षार्थियों के बहुमुखी विकास का उद्‌देश्य अब मुखर होने लगा था।

अतः नए अर्थ–तंत्र, बदलती शिक्षा–प्रणाली तथा प्रचार–प्रसार पाते संचार–माध्यमों से आधुनिकीकरण का प्रादुर्भाव हुआ। आधुनिकीकरण की इस दृष्टि में वैज्ञानिकता थी, लोक–सम्पृक्ति थी, तर्कसंगत व्यवहार था। परन्तु आधुनिकता के इस प्रभाव–ग्रहण का तात्पर्य यह नहीं कि भारतीयों ने पश्चिमीकरण की प्रक्रिया का अंधानुकरण किया। पश्चिम–विचारकों के साथ–साथ मध्यकालीन संतों की वाणियों का सहारा भी इन्होंने लिया। पौराणिक–ऐतिहासिक आख्यानों के प्रेरक प्रसंगों के उदाहरण के लिए तो समसामयिक चिंतकों, विचारकों, दार्शनिकों एवं समाज सुधारकों की वैचारिक पृष्ठभूमि के परिप्रेक्ष्य में भी साहित्य को समाज से जोड़ा। छूआछूत, जाति प्रथा तथा स्त्री–पुरुष में भेदभाव का विरोध, समानता, स्वतंत्रता, राष्ट्रीय–चेतना, वैज्ञानिकता का ग्रहण तथा नवीन मानवतावाद के आविर्भाव का समर्थन आदि प्रसंगों से आधुनिक युग की इस पृष्ठभूमि को समझा जा सकता है। आर्य समाज, रामकिशन परमहंस मिशन, प्रार्थना समाज, ब्रह्म–समाज आदि संस्थाओं के प्रयासों में पुराने धर्म को नए समाज के अनुरूप ढालने की प्रक्रिया को देखा जा सकता है। बहुत से अंतर्विरोधों के बावजूद इन वैचारिक–मान्यताओं के स्रोतों ने जन–सामान्य को एक बौद्धिक एवं तार्किक आधार प्रदान किया। इसकी विस्तृत विवेचना आप अगली इकाई में कर सकेंगे।

अतः कह सकते हैं कि हिंदी साहित्य के जिस आधुनिक युग का प्रारंभ सन् 1857 के आसपास हुआ, उसके आधुनिक बनने की प्रक्रिया तो लगभग एक शताब्दी पूर्व (अर्थात् 1760 के आसपास) प्रारंभ हो चुकी थी। इसकी पृष्ठभूमि बनने वाली विभिन्न परिस्थितियों का विस्तृत विवेचन इसे और स्पष्ट कर सकेगा। किन्तु इससे पूर्व हम 'आधुनिक युग' के नामकरण और सीमांकन पर भी थोड़ा विचार कर लें तो उचित होगा।

2.3 नामकरण एवं सीमांकन

इस इकाई में हम आधुनिक युग के नामकरण एवं सीमा–निर्धारण पर संक्षिप्त समीक्षा करते हुए यही स्पष्ट करेंगे कि कोई भी कालखंड अपने बदलाव के कारण ही किसी दूसरे कालखंड से भिन्न होता है। बदलाव की यह प्रक्रिया यों तो निरंतर चलती ही रहती है किन्तु इस प्रक्रिया से प्राप्त परिणाम जब अत्यन्त मुखर होने लगते हैं और ऐतिहासिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक परिस्थितियाँ साहित्य और भाषा की सोच, दिशा, दृष्टि तथा चेतना को बदलने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। तभी एक नए युग का स्वरूप उभर कर सामने आता है।

हिंदी साहित्य के आधुनिक युग का प्रारंभ कब से माना जाए इस विषय में भी विद्वानों के भिन्न–भिन्न मत हैं। सामान्यतः इसका प्रारंभ संवत् 1900 अर्थात् 1843 ई. से माना जाता है। कछ विद्वानों ने सन 1857 से नवीन सामाजिक–राजनीतिक चेतना के प्रादुर्भाव का संदर्भ जोड़ते हुए यहीं से आधुनिक काल का प्रारंभ माना। यों तो बदलाव के स्पष्ट चिह्न भी, जैसा कि पहले कहा भी गया है, उन्नीसवीं शती के उत्तरार्द्ध में स्पष्टतः दिखाई देते हैं। संयोग से आधुनिक हिंदी साहित्य में जीवन–बोध के प्रवर्तक भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का जन्म भी उन्नीसवीं शती के मध्य अर्थात् सन् 1850 में ही हुआ था। परन्तु ठीक इसी वर्ष से आधुनिक युग की शुरुआत मान लेना तर्कसंगत नहीं लगता। इस संदर्भ में डॉ. नगेन्द्र का मत विचारणीय है–'सामान्यतः रीतिकाल के अंत (1843) से आधुनिक काल का आरंभ मानने की परम्परा रही है, नवीन सामाजिक–राजनीतिक चेतना के संवहन के फलस्वरूप सन् 1857 को

भी यह गौरव दिया जाता है; किन्तु साहित्य–क्षेत्र में नई विचारधारा का प्रवेश वस्तुतः भारतेन्दु के रचनाकाल (1868) से हुआ। इसके पूर्ववर्ती कालखंड (1843–1868) की गणना आधुनिक काल के अंतर्गत तो होगी, किन्तु उसे भारतेन्दु युग की पूर्वपीठिका के रूप में स्वीकार किया जा सकता है।' (हिन्दी साहित्य का इतिहास; संपादक, डॉ. नगेन्द्र, पृष्ठ 437)

आधुनिक भारत की सबसे महत्वपूर्ण घटना वह है जब अंग्रेजों ने अपने व्यापारिक हितों को राजनीतिक हितों में बदल दिया था। इस दृष्टि से सन् 1757 ई. में हुआ प्लासी का युद्ध तथा सन् 1764 ई. में हुआ बक्सर का युद्ध बहुत महत्वपूर्ण है। अंग्रेजों ने इन दोनों युद्धों में विजय हासिल करके अपना भावी राजनीतिक मार्ग प्रशस्त किया था। अब उन्हें चुनौती देने वाला कोई शेष न था। यहीं से भारतीय इतिहास के आधुनिक काल का प्रारंभ माना जाने लगा। देश की तदयुगीन परिस्थितियों ने साहित्य और सृजन को रचना और रचनाकार को ऐसे परिवेश में बहुत प्रभावित किया।

अंग्रेजी राज्य के प्रचार–प्रसार, उनकी विविध नीतियों तथा विचार–दृष्टियों ने साहित्य को पर्याप्त मात्रा में प्रभावित किया। सन् 1800 ई. में कलकत्ता में स्थापित किए गए फोर्ट विलियम कॉलेज के अंतर्गत भारतीय साहित्य के अध्ययन–अध्यापन की व्यवस्था, पाठ्य पुस्तकों के संपादन, लेखन, प्रकाशन आदि के परिप्रेक्ष्य में इस प्रभाव को सहज ही देखा भी जा सकता है। यह युग गद्य के प्रचार–प्रसार के आधिक्य के कारण गद्य–युग ही कहलाया। साहित्य और भाषा के इतिहास एवं विकास की दृष्टि से भी देखें तो यही प्रमाणित होता है कि गद्य के विकास की यात्रा का श्रीगणेश भी सन् 1800 में स्थापित फोर्ट विलियम कॉजेज से ही होता है। यह ठीक है कि आचार्य शुक्ल ने नामकरण का प्रमुख आधार 'प्रवृत्ति–विशेष' को माना परन्तु आधुनिक काल के संदर्भ में वे भी इसे गद्य भाषा की प्रमुखता के कारण गद्य काल ही कहते हैं। वैज्ञानिक दृष्टि, आधुनिक चेतना तथा तर्कसंगत वैचारिकता का वहन भी गद्य भाषा ही बाखूबी कर सकती थी। परन्तु इस आधार पर इस काल को 'गद्य काल' कहना उचित नहीं। ऐसा करने से आधुनिक काव्य की दीर्घ परंपरा के साथ अन्याय होगा।

प्रवृत्ति की दृष्टि से देखें, जो आधुनिक काल के अधिकांश साहित्य में एक वैज्ञानिक दृष्टिकोण तथा बौद्धिक धरातल देखने को मिलता है। यही 'आधुनिकता' की प्रवृत्ति इस युग के साहित्य को रीतिकाल से पृथक भी करती है। आधुनिक काल नामकरण की सटीकता और सार्थकता का आभास इस बात से भी मिलता है कि इसके अंतर्गत वे सभी अर्थ छवियाँ विकीर्ण होती जान पड़ती हैं जिनका संबंध पुनर्जागरण, नवीनता, प्रगतिशीलता, वैज्ञानिकता, बौद्धिकता तथा अस्तित्ववादिता आदि प्रवृत्तियों से माना जाता है। आधुनिकता की यही भावना इस युग के साहित्य को मध्यकालीन रूढ़िवादिता, एकरसता शृंगारिकता तथा रीतिबद्धता आदि प्रवृत्तियों से अलग भी करती है। अतः जीवनधारा के विविध स्रोतों को बद्ध एवं मुक्त रूप में स्वीकारने तथा अभिव्यक्ति देने वाले इस गत्यात्मक काल को 'आधुनिक काल' ही कहा जाना उचित है। मनुष्य के सुख–दुःखों से, उसके जीवन की खट्टी–मीठी अनुभूतियों से तथा समाज एवं राष्ट्र की परिवर्तनशील स्थितियों से साहित्य को जोड़ने वाला यह काल 'आधुनिक' शब्द की सार्थकता के अनुकूल ही ठहराता है। काव्य या गद्य–विधाओं में अब परलौकिक नहीं लौकिक व्यक्ति, लौकिक समस्याएँ तथा सभी लौकिक संदर्भ समाहित होने लगे। साहित्य, धर्म, दर्शन, चित्र, संगीत तथा अन्य सभी कलाओं में अधुनातन तथा नवीनतम दृष्टिकोण का, वैचारिक–क्रांति का तथा वैज्ञानिक पद्धति का आविर्भाव हुआ। ब्रजभाषा और अवधी भाषा का स्थान जन–भाषा खड़ी बोली ने लेना प्रारंभ कर दिया। सुधार, परिष्कार, जागृति, राष्ट्रीयता, सांस्कृतिक बोध तथा स्वातंर्त्र्य चेतना आदि का प्रबल आधार जिस युग ने दिया उसे 'आधुनिक युग' ही कहा जाना उचित जान पड़ता है। अतः सन् 1868

के आसपास से ही इस 'आधुनिक युग' की प्रारंभिक सीमा मानी जा सकती है और आज तक का समग्र गद्य–पद्य साहित्य इसी युग के भीतर आता है।

बोध प्रश्न– 1

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दें।

1. 'आधुनिक' शब्द के अर्थ एवं स्वरूप को लगभग आठ पंक्तियों में स्पष्ट कीजिए।

    ....

    ....

    ....

    ....

    ....

2. साहित्य–इतिहास लेखकों के अनुसार आधुनिक काल किसे कहा गया है ? लगभग दस पंक्तियों में स्पष्ट कीजिए।

    ....

    ....

    ....

    ....

    ....

    ....

    ....

3. हिंदी साहित्य के आधुनिक युग की काल सीमा बताते हुए उसके स्वरूप को लगभग दस पंक्तियों में स्पष्ट कीजिए।

    ....

    ....

    ....

    ....

    ....

    ....

    ....

    ....

4. नीचे कुछ कथन दिए गए हैं। इनमें से कुछ सही हैं तथा कुछ गलत। उपयुक्त चिह्न लगाकर स्पष्ट कीजिए :

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

i) 'आधुनिक' शब्द काल–सापेक्षता को तो व्यक्त करता है, किन्तु नवीनता, वैज्ञानिक दृष्टि, बौद्धिकता एवं तर्क–वितर्क का सूचक नहीं बनता। ( )

ii) अंग्रेज़ प्रशासकों और ईसाई मिशनरियों के आक्रामक रुख के कारण भारतीय धर्म और संस्कृति से सम्बद्ध सुधारकों ने धर्म को नई–परिभाषा तथा नए प्रारूप में ढालना प्रारंभ कर दिया था। ( )

iii) राजा राममोहन राय ने सती प्रथा उन्मूलन के लिए धर्मशास्त्र का सहारा लिया था। ( )

iv) आधुनिक युग के प्रारंभ में भारतीयों ने पश्चिमीकरण की प्रक्रिया का अंधानुकरण प्रारंभ कर दिया था। ( )

v) आधुनिक युग का प्रारंभ लगभग 1868 से माना जाता है और यहीं से नई विचारधारा का प्रवेश भी साहित्य में देखने को मिलता है। ( )

2.4 आधुनिक युग की परिस्थितियाँ

आधुनिक युग भारत की शासन व्यवस्था के उस युग से प्रारंभ माना जाता है जब मुसलमानों के हाथ से निकलकर सत्ता अंग्रेजों के हाथ में चली गई थी। अंग्रेजों के आगमन से भारतीयों के रहन–सहन, जीवन–यापन, आचार–विचार, साहित्य–कला एवं शिक्षा–संस्कारों में अनेक परिवर्तन होने लगे। अंग्रेजों से पूर्व भारतवर्ष पोर्चुगीज़ (पुर्तगाली), डच तथा फ्रांसीसियों ने भारत में खूब व्यापार किया। जहाँगीर के समय आए अंग्रेजों ने बम्बई, मद्रास तथा कलकत्ता में अपने व्यापारिक केन्द्र स्थापित किए। राजनीतिक पकड़ मजबूत करते हुए अंग्रेज़ों ने भारतीय राजाओं को परस्पर लड़वाया और लाभ उठाते हुए अपना प्रभाव स्थापित कर लिया। 1757 में प्लासी का युद्ध सिराजुद्दौला से जीतकर अंग्रेज़ों ने बंगाल पर अपना प्रभुत्व जमा लिया। परिणामतः रॉबर्ट क्लाइव (1743–1767) ने अपनी कूटनीति से अपार धन बटोरते हुए भारत में ब्रिटिश साम्राज्य की नींव डाल दी। बक्सर की लड़ाई से अंग्रेजी सैनिक शक्ति और बढ़ गई। 1761 में हैदर अली ने राज्य की स्थापना की और 1764 में सिक्खों का उदय हुआ। परन्तु 1764 में ही अंग्रेज़ों ने अवध पर भी विजय हासिल कर ली। अतः धीरे–धीरे ईस्ट इंडिया कंपनी ने अपना प्रभुत्व बढ़ाते हुए भारत में अपना आधिपत्य कर लिया। फिर धीरे–धीरे ब्रिटिश साम्राज्य समृद्ध होता गया और पूरे भारत पर उनका राज्य हो गया।

इसी तरह से शिक्षा, अर्थव्यवस्था, व्यावसायिक गतिविधियाँ, सामाजिक नियम, आचार विचार संहिताएँ, नौकरशाही, सांस्कृतिक परिवर्तन, सड़कों, नहरों, रेल, तार, डाक सेवा आदि से सम्बद्ध नीतियाँ–सभी पर पश्चिमीकरण की छाप लगती गई। धर्म, समाज शिक्षा पद्धति, प्रेस तथा आविष्कार आदि सभी क्षेत्रों में विदेशी प्रभाव छाने लगा। अंग्रेजों की इस स्वार्थभरी कार्य–व्यवस्था एवं शासन पद्धति से भारत को अप्रत्यक्षतः कुछ लाभ हुए परन्तु हानियाँ अधिक हुई। भाषा, उद्योग तथा शासन व्यवस्था के इस विदेशीकरण का कारण बनीं उस युग की विविध परिस्थितियाँ। अतः साहित्य पर भी उसका पर्याप्त प्रभाव पड़ा। बहुत से कवियों–साहित्यकारों की अभिव्यक्ति में इसे आगे की इकाइयों में देखा भी जा सकता है। अतः यहाँ हम पश्चिमीकरण से आ रही इसी 'आधुनिकता' के कारणों को स्पष्टतः जानने–समझने के लिए युगीन पृष्ठभूमि तैयार कर रही इन विविध परिस्थितियों की समीक्षा करेंगे।

2.4.1 राजनीतिक परिस्थिति

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, भारत में यूरोपीय जातियों के पदार्पण से एक नया परिदृश्य उपस्थित हुआ। व्यापार के लिए इन जातियों का भारत के पश्चिमी तट पर जलयानों द्वारा आगमन 15वीं शताब्दी के अंतिम चरण से ही आरंभ हो गया था। पुर्तगाली नाविक वास्को डि–गामा पहला यूरोपीय व्यापारी था, जो अफ्रीका महाद्वीप की परिक्रमा करते हुए 20 मई, 1498 ई. को दक्षिण भारत के केरल प्रदेश में समुद्र तटवर्ती नगर कोचीन/कालीकट पहुँचा। उसने केरल के राजा से व्यापार–संधि की और समद्र तट पर बसे कई नगरों में व्यापारिक कर्मशालाएँ (फैक्टरियाँ) खोलीं। 16वीं शती के अंत तक पुर्तगालियों ने भारत के पश्चिमी तट पर अनेक व्यापारिक कोठियाँ स्थापित कर ली थीं। अकबर और जहाँगीर के समय में ईसाई पादरी भी भारत में आने लगे थे। 1613 ई. में पुर्तगालियों ने चार भारतीय समुद्री व्यापारिक जहाज लूट लिए। सूरत के मुगल प्रशासक ने उन्हें दंडित किया और जहाँगीर ने उन्हें दी हुई व्यापारिक सुविधाएँ छीन लीं। किन्तु कुटनीति से पुर्तगालियों ने क्षमा–याचना करके सारी सुविधाएँ फिर से प्राप्त कर ली। जहाँगीर की शिथिल नीति का लाभ उठाकर ईसाई पादरियों ने लाहौर और आगरा में गिरजाघरों का निर्माण करा लिया। शाहजहाँ (1628–1658 ई.) के समय में पुर्तगालियों का साहस काफी बढ़ गया था। अकबर और जहाँगीर द्वारा दी गई सुविधाओं का दुरुपयोग करते हुए वे भारतीयों को बलपूर्वक ईसाई बनाने लगे थे। शाहजहाँ ने उनका दमन करने का कुछ प्रयत्न भी किया, किन्तु उसके शासनकाल में, भारत में यूरोपीय जातियों की गतिविधियों में तेजी आती गई। शिवाजी के शासनकाल (1666–1680 ई.) में भी पुर्तगालियों ने भारत के पश्चिमी तट पर अपनी शक्ति बढ़ाने का प्रयत्न किया था।

पुर्तगालियों को भारत में व्यापारिक लाभ और धर्म प्रचार के अवसर प्राप्त करते देखकर अन्य यूरोपीय जातियाँ–अंग्रेज, डच (हालैंड निवासी) और फ्रांसीसी–भी भारत के समुद्र तटों पर आकर व्यापारिक कोठियाँ स्थापित करने लगे थे। भारतीयों की उदारता और सहिष्णुता का पूरा–पूरा लाभ उठाते हुए उन्होंने भारत की सम्पदा को अनीतिपूर्वक व्यापार के बहाने अपने पश्चिमी देशों को ढोना शुरू कर दिया। अपने–अपने देश के वर्चस्व और धन–सम्पत्ति को बढ़ाने के लिए ये जातियाँ हमारे देश की भूमि पर ही परस्पर संघर्ष करती हुईं भारत के आंतरिक मामलों में भी हस्तक्षेप करने लगीं। यहाँ के प्रशासकों से भी संधि–विग्रह कर अपना साम्राज्य स्थापित करने का स्वप्न देखने लगीं। इनमें नौसेना से शक्ति–सम्पन्न अंग्रेजों की कूटनीति ही अंततोगत्वा सफल हुई। पुर्तगालियों ने गोआ, दमन और दीव में और फ्रांसीसियों ने चंद्र नगर, पांडिचेरी और माहे में अपने उपनिवेश स्थापित किए, किंतु अंग्रेजों ने शनैः शनैः पूरे भारत पर ही अधिकार कर लिया। अंग्रेजों ने मुगल शासकों और दक्षिण से उत्तर की ओर बढ़ती हुई मराठा–शक्ति को भी अपनी कूटनीति से अंततः परास्त कर ही दिया, जिसने एक बार अपनी राष्ट्रीय शक्ति से यूरोपीय जातियों को भारत में अपना प्रभाव स्थापित करने में निर्बल बना दिया था।

31 दिसम्बर, 1600 को इंग्लैंड की महारानी एलिजाबेथ से ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी ने भारत से व्यापार करने का अधिकार पत्र प्राप्त कर लिया था। जहाँ तक व्यापार के उद्देश्य से अंग्रेजों के भारत में पदार्पण की बात है सबसे पहले 1609 ई. में कैप्टन विलियम हॉकिंस जहाँगीर के दरबार में अंग्रेज व्यापारियों के लिए कुछ सुविधाएँ प्राप्त करने के लिए आया था। किंतु यहाँ पहले से ही विद्यमान पुर्तगालियों ने प्रतिद्वंद्वितावश मुगल प्रशासकों को अंग्रेजों के विरुद्ध भड़का रखा था। फलतः कैप्टन हॉकिंस को तो विशेष सफलता नहीं मिली, किन्तु 1615 ई. में इंग्लैंड के शासक जेम्स प्रथम ने सर टॉमस रो को भारत भेजकर जहाँगीर

से अंग्रेज व्यापारियों के लिए भारत में कुछ सुविधाएँ प्राप्त कर लीं। अंग्रेजों ने सूरत तथा अन्य कई नगरों में व्यापारिक कोठियाँ प्राप्त कर लीं। सर टॉमस रो ने आसफ खाँ को भेंट–नजराना देकर ही अपने उद्देश्य की पूर्ति की थी और यहीं से ब्रिटिश साम्राज्य की नींव पड़ गई। जहाँगीर (शासनकाल 1605–1627), शाहजहाँ (शासनकाल 1628–1658) तथा औरंगजेब (शासनकाल 1658–1707) के समय तक अंग्रेज व्यापारी भारत की आंतरिक दशा को बहुत कुछ समझ चुके थे। औरंगजेब की अनुदार नीतियों ने मुगलशासन को काफी दुर्बल बना दिया था। चारों ओर उसके शत्रु उत्पन्न हो गए थे। अंग्रेज भी ये सारी स्थितियाँ समझ रहे थे। दक्षिण में विद्रोहों का दमन करते हुए 1707 ई. में औरंगजेब की मृत्यु हो गई। उसके बाद मुगल शासन क्रमशः पतन को प्राप्त होने लगे। औरंगजेब के बाद उसका कोई उत्तराधिकारी दिल्ली के केंद्रीय शासन को ठीक ढंग से न संभाल सका। उसके पुत्र मुअज्जम (बहादुर शाह–प्रथम, शासनकाल 1707–1712) से लेकर जहाँदार शाह, फर्रुखसियर, मुहम्मदशाह, अहमदशाह, आलमगीर द्वितीय, शाह आलम द्वितीय, अकबर द्वितीय और अंत में बहादुशाह द्वितीय (शासनकाल 1837–1857) तक 150 वर्षों में आठ शासक दिल्ली की गद्दी पर बैठे। इस अवधि में ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी ने अपने विदेशी प्रतिद्वंद्वियों को समाप्त करने के साथ भारत की केंद्रीय मुगल सत्ता और भारत के विभिन्न प्रदेशों के देशी राजा–रानियों, नवाब–बेगमों आदि को भी सत्ता से वंचित कर दिया।

1757 में, क्लाइवदार प्लासी के युद्ध में बंगाल के नवाब सिराजुद्दौला के परास्त होने पर अंग्रेजों ने पहले ही सैनिक और कूटनीतिक विजय प्राप्त कर ली थी। 1764 में बक्सर के युद्ध में मीर कासिम शुजाउद्दौला और मुगल शासक शाह आलम की सम्मिलित सेना को परास्त कर अंग्रेजों ने एक निर्णायक विजय प्राप्त की। बंगाल और बिहार पर अंग्रेजों का पूरा अधिकार हो गया और अवध का नवाब उनके हाथ की कठपुतली बन गया। 1792 ई. में लार्ड कार्नवालिस ने कूटनीति से दक्षिण में टीपू सुल्तान को परास्त कर आंध्र और कर्नाटक तक अपना प्रभाव बढ़ा लिया। इससे पूर्व वारेन हेस्टिंग्स ने ईस्ट इंडिया कंपनी की आर्थिक दशा सुधारने के लिए अनेक अनुचित उपाय अपनाए। उसने बनारस के राजा चेतसिंह अवध की बेगमों और रोहिल्लों पर अमानुषिक अत्याचार किए। अंग्रेजों का प्रभाव उसके समय में उड़ीसा से रूहेलखंड तक फैल चुका था। शनैः शनैः गढ़वाल, कुमाऊं और शिमला तक का सारा प्रदेश अंग्रेजों ने हथिया लिया। 1818 तक चार युद्धों के बाद पेशवा बाजीराव द्वितीय की शक्ति क्षीण हो गई। मराठों की पराजय से मानो एक अंतिम राष्ट्रीय मुक्ति संग्राम व्यर्थ हो गया। उधर पंजाब में 1849 में महाराजा रणजीत सिंह की मृत्यु के पश्चात् अंग्रेजों ने पंजाब पर भी अधिकार कर लिया। इससे पूर्व 1823 तक राजस्थान की अनेक रियासतें विभिन्न संधियों के माध्यम से अंग्रेजों के अधीन पहले ही हो गई थीं।

1856 तक अनेक अंग्रेज प्रशासक ईस्ट इंडिया कंपनी द्वारा विजित भारतीय प्रदेशों के लिए नियुक्त किए गए। इन सबका उद्देश्य ब्रिटिश साम्राज्य का विस्तार करना था। इनमें लार्ड डलहौजी (1848–1856) के कार्यकाल तक ब्रह्म देश से सिंध तक अंग्रेजों की तूती बोलने लगी। ईस्ट इंडिया कंपनी ने 1844 में ही विलय का सिद्धांत (Doctrine of lapse) बना लिया था। इसके द्वारा अंग्रेजों के अधीन देशी रियासतों के किसी निःसंतान शासक को दत्तक पुत्र लेने और उसे अपना उत्तराधिकारी बनाने का अधिकार छीन लिया गया। इसके माध्यम से सतारा, नागपुर, झांसी, जैतपुर, संभलपुर, बघाट आदि को अपने अधीन कर लिया। अवध के नवाब पर कुशासन का आरोप लगाकर 1856 में डलहौज़ी को भी अपने अधिकार में ले लिया। अंग्रेजों ने सब्सिडयरी सिस्टम अर्थात सहायक सेना एवं पद्धति के रूप में एक और कूटनीतिक चाल अपनाई थी। इसके अनुसार देशी शासकों को अपने राज्य में एक सहायक अंग्रेज़ी सेना रखनी पड़ती थी, जिसका व्यय भी उस शासक को उठाना पड़ता था।

1851 में डलहौज़ी ने इस व्यय की वसूली के लिए बरार और हैदराबाद के कुछ प्रदेश निजाम से छीन लिए। अपनी विस्तारवादी नीति के अनुसार तंजौर के राजा और कर्नाटक के नवाब की मृत्यु के बाद उनकी परम्परागत उपाधियाँ समाप्त कर दी। पेशवा बाजीराव द्वितीय के निधन के उपरांत उसके दत्तक पुत्र धोंडू पन्त (नाना साहब) की पेंशन (निवृत्ति वेतन) समाप्त कर दी। डलहौजी और उसके पूर्ववर्ती गवर्नर जनरलों ने कुछ ऐसे विशेष कार्य और सुधार किए जिनसे भारत में ब्रिटिश साम्राज्य सुदृढ़ हुआ। किन्तु इन कार्यों और सुधारों से भारतवासियों में भी एक नई राष्ट्रीय चेतना जगी। उनको भौतिक सुविधाएँ भी प्राप्त हुईं। इस संबंध में लार्ड विलियम बैंटिक और डलहौज़ी के कार्य महत्वपूर्ण हैं। उदाहरण के लिए, विलियम बैंटिक ने 1835 में कलकत्ता में एक चिकित्सा महाविद्यालय खोला। क्रूरतापूर्ण सती–प्रथा समाप्त की। ठगों को निर्मूल कर जनता को सुरक्षा प्रदान की। लार्ड डलहौजी के समय में भारत में रेल, तार और डाक व्यवस्था आरंभ हुई। आधुनिकता की ओर यह एक अत्यन्त महत्वपूर्ण पग था। मैकाले ने बैंटिक को अंग्रेजी भाषा के माध्यम से भारत में शिक्षा प्रसार के लिए प्रेरित किया। डलहौजी के समय में 1854 में एक शिक्षा योजना बनाई गई। इसके अनुसार कलकत्ता, बंबई और मद्रास में विश्वविद्यालय स्थापित हुए। यद्यपि इन कार्यों के पीछे अंग्रेजों का मुख्य उद्देश्य अपने साम्राज्यवादी स्वार्थों की पूर्ति करना ही था, तथापि इनके सहज परिणामस्वरूप भारत में विकास, प्रगति और चिंतन के नए आयाम स्थापित हुए। सन् 1757 में प्लासी के युद्ध में अंग्रेजों की विजय से जिस ब्रिटिश साम्राज्य का विस्तार आरंभ हुआ था, वह सौ वर्ष 1857 में सारे भारत को आक्रान्त कर अपनी चरम सीमा पर पहुँच गया। किन्तु तभी सारे भारत में एक विस्फोट के समान एक महान् स्वाधीनता संग्राम छिड़ गया, जिसे अंग्रेजों ने 'सिपाही विद्रोह' नाम दिया।

1857 का स्वाधीनता संग्राम

स्थूल दृष्टि से देखने पर, पाश्चात्य शासकों को यह व्यापक स्वाधीनता संग्राम एक सैनिक विद्रोह मात्र लगा, क्योंकि इसका आरंभ कुछ सिपाहियों के विद्रोह से हुआ था। किन्तु वास्तव में यह भारतीय जनता की ब्रिटिश साम्राज्य को समाप्त कर स्वाधीनता प्राप्त करने की एक सुनियोजित जन–क्रांति थी, जिसमें दिल्ली के अंतिम मुगल शासक बहादुरशाह जफर, झांसी की रानी लक्ष्मीबाई, बिहार के राजा कुंवर सिंह, अमर सिंह, परम देशभक्त तात्या टोपे आदि ने महान् बलिदान करते हुए प्राणों की आहुति दी। किन्तु अन्य अनेक कारणों के साथ मुख्य रूप से उसी धरती में जन्में कुछ कायरों और देशद्रोहियों के कारण अंग्रेजों द्वारा यह क्रांति दबा दी गई। भारतीयों का यह संग्राम थोड़े दिनों के लिए थम अवश्य गया, किंतु 1857 की यह क्रांति की ज्वाला बुझी नहीं। आधुनिक हिंदी साहित्य की पृष्ठभूमि में 1857 की क्रांति एक बड़ी प्रेरक शक्ति रही। हिंदी भाषी विशाल क्षेत्र में ही यह सबसे व्यापक स्वतंत्रता–संग्राम सबसे पहले आरंभ हुआ।

इस स्वाधीनता संग्राम के पहले प्रेरक नाना साहब (धोंडू पन्त) थे। उनके प्रमुख सहायक अज़ीम उल्लाह ने इंग्लैंड जाकर नाना साहब की पेंशन को पुनः प्रारंभ कराने का प्रयत्न किया किन्तु सफलता न मिली। दोनों मित्रों की यह धारणा बनी कि जब तक भारतीय सैनिक और भारतीय राजा नवाब आदि देशी शासक इस क्रांति में भाग नहीं लेंगे तब तक विदेशी साम्राज्य को उखाड़ फेंकना संभव नहीं, क्योंकि अंग्रेजों की राज्य सत्ता मुख्य तौर पर भारतीय सैनिकों और देशी शासकों की सहायता पर ही अवलंबित थी। नाना साहब ने एक तीर्थयात्री के रूप में भारत के अनेक राजाओं से मिलकर मंत्रणा की। सारे देश में एक साथ सुनियोजित विद्रोह के लिए 31 मई, 1857 का दिन निर्धारित हुआ, किन्तु कारतूसों में निषिद्ध चर्बी के प्रयोग को लेकर भारतीय सैनिक निश्चित तिथि से दो महीने पहले ही उत्तेजित हो

उठे। 29 मार्च, 1857 को बंगाल में बैरकपुर की पलटन के एक सिपाही मंगल पाण्डे ने अपनी टुकड़ी के साथी सिपाहियों को विद्रोह के लिए प्रेरित करते हुए तीन अंग्रेज सेनाधिकारियों को गोली से उड़ा दिया। मंगल पाण्डे को अंग्रेजों ने फाँसी पर लटका दिया और बैरकपुर की दो भारतीय पलटनों को भंग कर दिया। मंगल पाण्डे के विद्रोह और फाँसी का समाचार सारे देश में दावानल की भांति फैल गया। 10 मई, 1857 को ईस्ट इंडिया कंपनी की मेरठ में तैनात भारतीय पलटनों ने भी खुला विद्रोह कर दिया। भारतीय सैनिकों ने अंग्रेज अफसरों को मार कर अपने साथियों को मुक्त कर लिया। मेरठ से ये सैनिक दिल्ली पहुँचे। दिल्ली के भारतीय सैनिकों ने उनसे मिलकर अंग्रेजों द्वारा अपदस्थ बहादुरशाह को पुनः सम्राट घोषित कर दिया। स्वतंत्रता की ज्वाला शीघ्र ही सारे उत्तर भारत में फैल गई, जो हिंदी का विशाल क्षेत्र है। इस स्वतंत्रता संग्राम ने भारत के सभी प्रांतों के साहित्यकारों को प्रेरणा दी। हिंदी में आधुनिक काल में अनेक साहित्यकारों ने इसे उपन्यास, नाटक और कविता का विषय बनाया। सुभद्रा कुमारी चौहान की प्रसिद्ध लोकप्रिय कविता 'खूब लड़ी मर्दानी वह तो झांसी वाली रानी थी' इसी स्वाधीनता संग्राम से प्रेरित है।

इस क्रांति का सूत्रपात निश्चित समय से पूर्व ही हो जाने के कारण यह सुनियोजित नहीं हो सका। अंग्रेज शीघ्र ही सावधान हो गए और उन्होंने अपनी कूटनीति, विकसित शस्त्रास्त्र से सज्जित सेना द्वारा दो वर्षों के भीतर ही अत्यन्त क्रूरता और बर्बरता से इस स्वाधीनता संग्राम को कुचल डाला। इसमें दुर्भाग्य से अनेक देशी शासकों ने भी भय और प्रलोभन से अंग्रेजों का साथ दिया। अंग्रेजों ने 'फूट डालो, राज्य करो' नीति अपनाकर विभिन्न धर्मावलंबियों को परस्पर खूब भड़काया। क्रांति के सारे नेताओं को एक–एक करके मौत के घाट उतार दिया। बहादुरशाह के दो पुत्रों को कैप्टन हडसन ने गोली से उड़ा दिया और उनके सिर काट कर बहादुरशाह के सामने लाकर रख दिया। क्रूरता और बर्बरता की चरम सीमा को पार करते हुए हडसन ने दोनों शहजादों के शवों को एक सार्वजनिक स्थल पर वृक्ष से लटका दिया, जिससे भारत की जनता भयभीत होकर फिर कभी क्रांति का नाम भी न ले। किन्तु भारत का इतिहास साक्षी है कि इस क्रांति के संस्कारों ने ही भारतीयों में निरंतर स्वाधीनता के लिए संघर्ष की शक्ति फूंकी और अंत में ब्रिटिश साम्राज्य की दासता से मुक्ति पाई।

अंग्रेजों का दमन चक्र दो वर्षों तक तीव्रता से घूमता रहा। पंजाब की तीन देशी रियासतों के राजाओं को फांसी दे दी गई। बहादुरशाह को बंदी बनाकर देश से निर्वासित करते हुए आजीवन कारावास के लिए रंगून भेज दिया गया। 1863 में वहीं उसका देहान्त हो गया। झांसी की रानी लक्ष्मीबाई ने अंग्रेज जनरल ह्यूरोज का अत्यन्त वीरता से सामना किया, किन्तु किसी विश्वासघाती देशद्रोही ने धन के प्रलोभन से झांसी के दुर्ग का एक द्वार खोलकर अंग्रेजी सेना को प्रवेश दे दिया। लक्ष्मीबाई लड़ते हुए झांसी से निकलकर कालपी पहुंची। इस स्थल पर अनेक क्रांतिकारी–तात्या टोपे, बांदा नरेश, शाहगढ़ नरेश–आदि एकत्र थे। ग्वालियर का शासक जयाजी राव सिंधिया अंग्रेजों से मिल गया था। अतः लक्ष्मीबाई ने पहले ग्वालियर पर अधिकार किया। जनरल ह्यूरोज उसका पीछा कर ही रहा था। उसकी विशाल और सुसज्जित सेना से अदम्य साहसपूर्वक लड़ती हुई इस भारतीय वीरांगना ने 18 जून, 1858 को वीरगति प्राप्त की। अब इस संग्राम का अंतिम सिपाही रह गया था–तात्या टोपे। किन्तु अंग्रेजी सेना निरंतर उसका भी पीछा कर रही थी। वह किसी प्रकार नर्मदा तट पर, फिर नागपुर और फिर बड़ौदा पहुंचा। कहीं से उसे सहायता नहीं मिली। अंत में, अलवर के निकट ग्वालियर के किसी मानसिंह नामक व्यक्ति ने तात्या टोपे को आधी रात के समय विश्वासघातपूर्वक पकड़ लिया और अंग्रेजों के हवाले कर दिया। अंग्रेजों ने इस महान देशभक्त को 18 अप्रैल, 1859 को फांसी दे दी। इस प्रकार 1857 के स्वाधीनता संग्राम का

यह अंतिम दीपक भी बुझ गया, किन्तु उसकी ज्योति अमर रही और भारत के स्वातंत्र्य आंदोलन के मार्ग को आलोकित करती रही।

1857 की इस स्वाधीनता क्रांति के विषय में अनेक प्रसिद्ध देशी–विदेशी इतिहासवेताओं ने अपने मत व्यक्त किए हैं। डॉ. ईश्वरी प्रसाद का मत है, 'यह एक सुनियोजित क्रांति थी। विद्रोह के लिए नेता बहुत समय से इसको पूरा करने में लगे थे, और निःस्वार्थ देशभक्तों का एक समूह देश के कोने–कोने में इसकी अलख जगा रहा था, जिन्हें अपने देश की स्वाधीनता से अधिक प्रिय कुछ न था' डॉ. के.एम. पणिक्कर ने भी बड़े मार्मिक विचार व्यक्त किए हैं 'एक राष्ट्रीय आंदोलन की कसौटी यह है कि उसका उद्‌देश्य देश की स्वाधीनता प्राप्त करना है या नहीं। विद्रोह का लक्ष्य था कि अंग्रेजों को बाहर निकाला जाए और भारत को पुनः स्वाधीन किया जाए। विद्रोह के नेताओं ने जिस स्वाधीनता की कल्पना की थी चाहे, उससे फूट तथा अराजकता की पुरानी स्थितियाँ उत्पन्न होतीं किन्तु इस तथ्य को नहीं नकारा जा सकता कि यह स्वाधीनता का आंदोलन था और इस अर्थ में राष्ट्रीय संघर्ष था। यह आंदोलन इस अर्थ में भी राष्ट्रीय था कि उसने साम्प्रदायिक भावना को पार किया। इसमें हिंदु–मुसलमानों ने मिल–जुलकर कार्य किया।' इस विद्रोह को विदेशी विद्वान चार्ल्स बॉल का मत भी एक व्यापक जन–आंदोलन सिद्ध करता है। वे कहते हैं 'विद्रोहियों को जनता की सहानुभूति से अकल्पनीय बल तथा उत्साह की प्राप्ति हुई। वे लोग रसद पहुँचाने वालों के बिना ही आगे कूच कर सकते थे, क्योंकि लोग सदा खिलाते–पिलाते थे। उन्हें अपनी तथा अंग्रेजों की स्थिति की निरंतर जानकारी रहती थी क्योंकि लोग लगातार उन्हें सब सूचनाएँ देते रहते थे।'

1857 की यह स्वाधीनता क्रांति निश्चय ही एक व्यापक जन–आंदोलन था इसका प्रमाण बहादुरशाह का वह महत्वपूर्ण घोषणा–पत्र है जो उस वर्ष 'पयामे आजादी' समाचार–पत्र में दिल्ली में छपा था 'हिन्दुस्तान के हिन्दू और मुसलमान भाइयों उठो, इंसान की जितनी बरकते हैं, उनमें सबसे कीमती बरकत आजादी है, वह ज़ालिम नाकस (अधम, नीच) जिसने गुलामी देकर हमसे यह बरकत छीन ली है, क्या हमेशा के लिए उससे महरूम (वंचित) रख सकता है? नहीं, कभी नहीं। फिरंगियों ने इतने जुल्म (अत्याचार) किए हैं कि उनके गुनाहों का प्याला लबरेज (पूरा भरा हुआ) हो चुका है। ख़ुदा अब नहीं चाहता कि तुम खामोश रहो, क्योंकि उसने हिंदुओं और मुसलमानों के दिलों में अंग्रेजों को अपने मुल्क से बाहर निकालने की ख्वाहिश (आकांक्षा) पैदा कर दी है। खुदा के फ़ज़ल (कृपा) और तुम लोगों की बहादुरी से अंग्रेजों को इतनी कामिल (संपूर्ण) शिकस्त (पराजय) मिलेगी कि हमारे इस मुल्क हिन्दुस्तान में उनका जरा भी निशान नहीं रह जाएगा। इस पाक (पवित्र) जंग (युद्ध) में शरीक (सम्मिलित) होने वाले सब भाई है, उनमें छोटे–बड़े का कोई फर्क नहीं है। मैं अपने तमाम हिन्द के भाइयों से दरख्वास्त (प्रार्थना) करता हूँ कि खुदा के बताए हुए इस पाक फ़र्ज़ (कर्त्तव्य) को पूरा करने के लिए मैदाने–जंग में कूद पड़ें।' इससे बढ़कर स्वाधीनता के लिए भारतीय जन–मानस की आकांक्षा की अभिव्यक्ति का और क्या प्रमाण हो सकता है। आगामी एक शताब्दी का भारतीय–लक्ष्य अंग्रेजों के चंगुल से इस देश को मुक्त कराना ही हो गया। जब बहादुरशाह को अंग्रेज हडसन ने बंदी बना लिया और उससे कहा –

''दमदमे में दम नहीं, अब ख़ैर मांगो जान की।
ऐ ज़फर ठंडी हुई शमशीर हिन्दुस्तान की।।''

इस कटु उक्ति को सुनकर कवि हृदय, देशभक्त और स्वाधीनता के लिए बलिदान को उत्सुक बहादुरशाह ने जो उद्‌गार प्रकट किया, वह किसी भी राष्ट्र–प्रेमी को सदैव प्रेरणा देता रहेगा :

''ग़ाज़ियों में बू रहेगी, जब तलक ईमान की।
तख़्ते ऐ लन्दन तक चलेगी, तेग़ हिन्दुस्तान की।।''

झांसी की रानी लक्ष्मीबाई ने भी अपने सैनिकों से विदेशी सत्ता को भारत से उखाड़ फेंकने के लिए प्रतिज्ञा करने को कहा। अतः स्पष्ट है कि इस विद्रोह का लक्ष्य विदेशी शासन का अंत था। स्वतंत्रता सेनानियों का यह लक्ष्य उस समय पूरा नहीं हुआ, यह बात दूसरी है, किन्तु इस क्रांति ने आगामी संघर्ष के लिए आधार भूमि का निर्माण कर दिया।

1857 की इस महान घटना के बाद अंग्रेजों ने अपने शासन को भारत में और भी सुदृढ़ बनाने के लिए अनेक महत्वपूर्ण कदम उठाए। ब्रिटिश पार्लियामेंट ने 1858 में एक ऐक्ट पास करके भारत के प्रशासन को ईस्ट इंडिया कंपनी से लेकर इंग्लैंड की सरकार को ही सौंप दिया। तत्कालीन ब्रिटिश सम्राज्ञी विक्टोरिया ने 1858 में एक घोषणा–पत्र द्वारा भारतीय जनता के आक्रोश को शांत करने का फिर कुटनीतिक प्रयास किया। विक्टोरिया ने कहा था–'ईश्वर की कृपा से जब देश में आंतरिक शांति हो जाएगी तो हमारी इच्छा है कि भारत की सर्वांगीण उन्नति के लिए फिर से यत्न किया जाए। हम अपने साम्राज्य की सीमाएँ और अधिक नहीं बढ़ाना चाहते हैं। किसी व्यक्ति को उसके धर्म के कारण तंग नहीं किया जाएगा और न ही किसी के प्रति पक्षपात किया जाएगा। शासन का संचालन करते और कानून बनाते समय इस देश के पुराने रीति–रिवाजों और अधिकारों का भी ध्यान रखा जाएगा। अपराधियों को बिना शर्त क्षमा प्रदान की जाती है। जब ईश्वर की कृपा से शांति स्थापित हो जाएगी तो हम सार्वजनिक हित के कार्यों का विस्तार करेंगे और सारी प्रजा के हित के लिए शासन चलाएंगे। प्रजा की समृद्धि में ही हमारी सुरक्षा है और उसकी कृतज्ञता में ही हमारा गौरव है।' इस प्रकार, 1858 से भारत की राजनीतिक स्थिति में एक नया मोड़ आया।

ब्रिटिश पार्लियामेंट द्वारा भारतीय प्रशासन के लिए इंडिया काउंसिल बनाई गई और भारत सचिव (सेक्रेटरी ऑफ स्टेट फॉर इंडिया) के पद की स्थापना हई। इंग्लैंड से भारत का प्रशासन संभालने के लिए आने वाले गवर्नर जनरल केवल भारत सचिव के नियंत्रण में थे। भारतीय विधान परिषद् का उन पर कोई नियंत्रण नहीं था। उनकी शक्ति असीमित थी, और वे मनमानी कर सकते थे। किन्तु लॉर्ड मेयो और लार्ड रिपन जैसे कुछ गवर्नर जनरलों ने उदार नीति अपनाई और स्थानीय संस्थाओं से कुछ सीमा तक भारतीयों को संबद्ध करते हुए उन्हें कुछ और अधिकार दिए। 1873 से 1884 तक अनेक ऐक्ट बनाए गए। नगर पालिकाओं में चुनाव द्वारा योग्य प्रतिनिधियों के चयन को प्रोत्साहित किया गया। आगे चलकर स्थानीय संस्थाओं में और अधिक जन–प्रतिनिधित्व तथा सरकारी नियंत्रण को कम करने की नीति अपनाई गई। भारतीय जनता में राजनीतिक और राष्ट्रीय चेतना बढ़ती जा रही थी। किन्तु ब्रिटिश सरकार निरंतर इस ओर भी सजग थी कि भारतीय जनता के मन में उसके लिए रागात्मक भाव उत्पन्न हो। 1883 में इंग्लैंड की जातीय संगीत सभा (नेशनल एन्थम सोसाइटी) ने 'गॉड सेव द किंग' गीत का बीस भारतीय भाषाओं में अनुवाद कराके उसे यथा–समय गवाए जाने का प्रावधान किया। उस समय विक्टोरिया का शासन था। भारतेंदु ने हिंदी में इंग्लैंड के राष्ट्रगीत का यह अनुवाद किया था :

'प्रभु रच्छहु दयालु महरानी।
बहु दिन जिए प्रजा सुखदानी ।।
हे प्रभु रच्छहु श्री महरानी।
सब दिस में तिन की जय होइ।
रहै प्रसन्न सकल भय खोइ।
राज करै बहु दिन लौ सोइ।
हे प्रभु रच्छह श्री महरानी।'

राजभक्ति के संस्कार डालने में ऐसे प्रयत्नों का प्रभाव हुआ भी। भारतेंदु के साहित्य में देशभक्ति और तत्कालीन ब्रिटिश शासन के प्रति राजभक्ति के भाव अनेक स्थलों पर साथ–साथ मिल जाते हैं।

1885 में ए.ओ.ह्यूम के प्रयत्न से भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस (इंडियन नेशनल कांग्रेस) की स्थापना हुई। प्रारंभ में यह भी एक राजभक्त संस्था थी, जिसका उद्‌देश्य सामाजिक सुधारों तक सीमित था। किंतु बाद में लॉर्ड डफरिन की प्रेरणा से इसने राजनीतिक क्षेत्र में भी कार्य करना आरंभ कर दिया। कांग्रेस ने एक ऐसी संस्था के रूप में कार्य किया जिसके द्वारा सब वर्गों और धर्मों के भारतीय मिलकर संवैधानिक प्रयासों से सरकार के समक्ष अपनी मांगें रख सकें। 1892 के ऐक्ट से भारतीयों को कुछ अधिकार मिले थे, किन्तु वे नगण्य थे। 1899–1905 की अवधि में लॉर्ड कर्जन के कार्यों पर मिली–जुली प्रतिक्रिया हुई। अकालों की रोकथाम, सिंचाई के साधनों में सुधार, कृषि बैंकों में सुधार, विश्वविद्यालयों में विज्ञान की शिक्षा का समावेश, प्राचीन स्मारक रक्षा विभाग की स्थापना का स्वागत हुआ, किन्तु उसके भारतीय संस्कृति, सभ्यता, दर्शन, भाषा आदि के प्रति हीनता और उपेक्षा की भावना की तीव्र आलोचना हुई। 1 जनवरी, 1905 को कलकत्ता विश्वविद्यालय के दीक्षांत भाषण में उसने पाश्चात्य देशों के चिंतन और सत्य–निष्ठा की तो प्रशंसा की और पौरस्त्य देशों के जीवन दर्शन को कूटनीति और छल–कपटपूर्ण बताया, जबकि मेक्समूलर, मोनियर विलियम्स, रोथ आदि भारतीय सभ्यता, संस्कृति, कला–दर्शन की श्रेष्ठता सिद्ध कर चुके थे। भारतीय मनीषियों में राजा राममोहन राय, स्वामी दयानन्द सरस्वती, स्वामी विवेकानंद आदि के द्वारा भारतीयों में स्वाभिमान, राष्ट्रीयता और स्वाधीनता के भाव पहले ही जाग्रत किए जा चुके थे। कर्जन के समय में 1905 ई. में पूर्व और पश्चिम बंगाल के रूप में साम्प्रदायिक आधार पर बंग–विच्छेद हुआ। सर बेम्फ़ाइल्ड ने एक ही बंगला भाषा–भाषी हिन्दू–मुसलमानों में खूब फूट डाली। कालांतर में यही विद्वेश विभाजन का हेतु बन गया।

2.4.2 आर्थिक परिस्थिति

भारत मूलतः एक कृषिजीवी देश है और इसकी अधिकतर जनसंख्या ग्रामवासी है। यद्यपि ब्रिटिश शासन के लगभग दो सौ वर्षों में जनसंख्या के इस अनुपात में अंतर हुआ है और ग्रामों की ओर से नगरों में आबादी का संक्रमण हुआ है, तथापि अंग्रेजी शासन के आरंभोपूर्व ग्रामीण जनसंख्या का अनुपात और भी अधिक था। भारत के ग्राम आर्थिक रूप में स्वावलम्बी और अपने आप में पूर्ण आर्थिक इकाई थे। वे शताब्दियों से उसी स्थिर और अपरिवर्तित रूप में चले आ रहे थे। इस तथ्य का उल्लेख सर चार्ल्स मेटकाफ़ ने अपने अनुभव के आधार पर किया है–'भारत के गाँव छोटे–छोटे गणतंत्र थे। उनकी अपनी आवश्यकताएँ वहीं पूरी हो जाती थीं। बाहरी दुनिया से उनका कोई संबंध नहीं था। एक के बाद दूसरा राजवंश आया, उसके बाद उलट फेर हुआ, हिंदू, पठान, मुगल, सिक्ख, मराठों के राज्य बने और बिगड़े, पर गाँव वैसे के वैसे ही बने रहे।' किंतु इसका अर्थ यह नहीं है कि वे विपन्न थे या जीवन–यापन के लिए अनिवार्य साधनों से रहित थे। धरती सबकी सम्पत्ति थी जो सब आवश्यकताओं की पूर्ति करती थी। कृषक लोग अन्न उपजाते और ग्राम की अन्न समस्या का समाधान करते थे। कुम्हार, बढ़ई, लोहार, नाई, धोबी तेली आदि अपने–अपने व्यवसाय से विनियम द्वारा पारस्परिक आवश्यकताओं की पूर्ति करते थे। इसी प्रकार, भारतीय नगर भी स्वतः पूर्ण आर्थिक इकाई थे। ग्राम और न आर्थिक दृष्टि से विशेष संबंध न था।

किसी भी देश में नगरों को प्रायः तीन श्रेणियों में देखा जा सकता है : 1) राजनीतिक दृष्टि से महत्वपूर्ण नगर; 2) व्यापारिक दृष्टि से महत्वपूर्ण नगर; और 3) धार्मिक–सांस्कृतिक दृष्टि से महत्वपूर्ण नगर। भारत में भी नगरों की स्थिति यही रही है। जहाँ ग्रामों में दैनिक उपभोग

की सामान्य वस्तुओं का उत्पादन होता था, वहीं नगरों में सौंदर्य प्रधान बहुमूल्य वस्तुओं का निर्माण होता था। स्वाभाविक रूप से ऐसे पदार्थों का ग्राहण धनी वर्ग था। राजा, नवाब, सामंत, सेठ–साहूकारों में नगरों में श्रेष्ठ हस्तशिल्पियों और कलाकारों द्वारा निर्मित वस्तुओं की खपत होती थी। अनेक प्रकार के रत्न–जड़ित आभूषण, हाथी दाँत पर मीनाकारी किए हुए विविध पदार्थ, सुन्दर रेशमी और बारीक सूती कपड़े आदि इस देश के ऐसे उत्पादन थे, जिनके लिए वह विश्व–विख्यात था। ढाका की अत्यन्त बारीक मलमल अन्य देशों के लिए विस्मय और स्पर्धा की वस्तु थी। भारत उनके लिए सोने की चिड़िया थी। यहाँ की उन्नत हस्तकला से उनकी आंखें चौंधिया गई। सन् 1600 ई. में लंदन के जिन व्यापारियों को रानी एलिजाबेथ से भारत में व्यापार करने की अनुमति मिली थी, वे भारतीय व्यापार से क्रमशः लाभ उठाते हुए भारत भूमि का दोहन करने लगे। सूरत, भड़ौंच, अहमदाबाद, आगरा आदि में उनकी फैक्टरियाँ खुल गई। 1661 से 1683 के बीच चार्ल्स द्वितीय से ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी को पाँच चार्टर प्राप्त हो चुके थे। अपने व्यापार के माध्यम से अंग्रेजों ने भारतीय अर्थव्यवस्था को चौपट कर शासन को भी हस्तगत कर लिया, जिसकी कल्पना भी उन्होंने पहले नहीं की थी। कंपनी ने अपने सिक्के तक बनाकर चला दिए।

प्रारंभ में कंपनी नील, लाख, चीनी, सूत तथा सूती कपड़ों का व्यापार करती थी, किंतु धीरे–धीरे उसने मिर्च–मसालों, रेशम और रेशमी कपड़ों का व्यापार भी आरंभ कर दिया। इन विदेशी व्यापारियों ने इस देश को अपना हाट–बाजार बनाया। यहाँ के उद्योग–धंधो और हस्तशिल्प को नष्ट–भ्रष्ट करने में कोई कसर नहीं छोड़ी। संयोगवश जो उद्योग–धंधे बचे रह गए थे, वे भी धीरे–धीरे नई सामाजिक व्यवस्था में दम तोड़ गए। अपने स्वार्थों के लिए इस देश को लूटते और इसके वाणिज्य–व्यापार को नष्ट करते देख भारतेंदु हरिश्चंद्र ने ब्रिटिश सरकार के विरोध में 'कविवचन सुधा' के मार्च, 1874 के अंक तीखी टिप्पणी लिखी थी। 1884 ई. में उनकी 'नवोदिता हरिश्चन्द्र चंद्रिका में' 'नए ज़माने की मुकरी' में अंग्रेजों की कूटनीति और शोषण को लक्ष्य करके कहा गया है।

भीतर–भीतर सब रस चूसै।
हंसि–हंसि के तन मन धन मूसै।
जाहिर बातन में अति तेज।
क्यों सखि साजन, नहिं अंगरेज।।

(अर्थात, 'भीतर ही भीतर सारा रस चूस जाता है। हंस–हंस कर ही तन–मन–धन चुरा लेता है। ऊपर से प्रकट बातों में बहुत तेज (चतुर) है। क्यों सखी, क्या वह साजन (साजन, पति) है? नहीं, वह अंगरेज है।')

भारतीय मनीषियों और राजनीतिज्ञों को ब्रिटिश शासन काल में हो रही इस देश की आर्थिक अवनति, स्थानीय उद्योग–धंधों के नाश और अपने कला–कौशल के ह्रास से बड़ा क्लेश होता था, वे साहित्य आदि के माध्यम से उसे व्यक्त करते थे। भारतेंदु और उनके समकालीन लेखकों ने अनेकशः इस विदेशी आर्थिक शोषण, करों के असहनीय भार, जनता की समस्याओं की घोर उपेक्षा से पड़ने वाले अकालों और फिर महामारियों आदि का उल्लेख किया है। भारतेंदु हरिश्चन्द्र के नाटक भारत दुर्दशा (रचनाकाल 1875) में ब्रिटिश शासन में भौतिक सुविधाओं (रेल, डाक–तार, सड़क आदि) को 'सुख सांज' बताते हुए भी उसके आर्थिक शोषण, टैक्स–पीड़न आदि का मार्मिक उल्लेख है :

'रोवहु सब मिलिकै आवहु भारत भाई।
हा हा ! भारत दुर्दशा न देखी जाई।।

अंगरेज राज सुखसाज सजे सब भारी।
पै धन विदेश चलि जात इहै अति ख़्वारी।।
ताहू पै मंहगी, काल, रोग बिस्तारी।
दिन दिन दूने दुःख ईस देत हा हा री।।
सबके ऊपर टिक्कस की आफ़त आई।
हा हा ! भारत दुर्दशा न देखी जाई।।'

ईस्ट इंडिया कंपनी की व्यापार नीति केवल अपने आर्थिक लाभ की दृष्टि से प्रवर्तित थी। 17वीं शती के अंतिम और 18वीं शती के प्रथम चरण में स्वयं मूल इंग्लैंड के स्थानीय व्यापारियों ने कंपनी की व्यापार नीति से होने वाली हानि पर घोर आपत्ति की थी। भारत में निर्मित वस्तुएँ इतनी लोकप्रिय थीं कि उनके अनुपात में इंग्लैंड में बनी वस्तुएं कठिनाई से बिकती थीं। शोषण और दमन के बावजूद 1800 ई. तक भी भारतीय उद्योग–धंधे काफी उन्नत थे। किंतु कंपनी लोभवश भारतीय व्यापार में निरंतर हस्तक्षेप करती जा रही थी। 1772 में ही विलियम बोल्ट्स ने लिखा था कि 'कंपनी के अंग्रेज व्यापारी अपने निश्चित किए हुए मूल्य कार कारीगरों को अपना सामान बेचने पर विवश करते हैं। कंपनी के नुमाइंदे (अभिकर्ता, एजेंट) जिस पत्र पर चाहते हैं, कारीगरों के हस्ताक्षर करा लेते हैं। फलस्वरूप भारतीय कारीगर अपने उद्योग–धंधे छोड़ बैठे। भारत में बने हुए कपड़ों पर 1813 में 70–80 प्रतिशत चुंगी कर लगाकर वस्त्र व्यापार को नष्ट प्रायः कर दिया।'

औद्योगिक क्रांति के फलस्वरूप इंग्लैंड में कच्चे माल की बहुत मांग बढ़ी। पराधीनता की इस स्थिति में भारत को अपना बहुत–सा कच्चा माल अंग्रेजों को दे देना पड़ता था। इंग्लैंड में उससे उपभोक्ता सामग्री बनने के बाद उसकी खपत के लिए बाजार की आवश्यकता होती थी और वह बाजार पराधीन भारत था। यहाँ यह विदेशी माल दुगुने–चौगुने मूल्य में बेचा जाता था। विदेशी मुहर लगाकर इस रूपांतरित माल की भारत में इतनी खपत बढ़ी कि जनता ने बंग–भंग पर अपना आक्रोश प्रकट करने के लिए विदेशी माल के बहिष्कार और स्वदेशी आंदोलन की नीति अपनाई। अनेक विदेशी आक्रान्ता भारत आए। युद्ध भी हुए उनके द्वारा धन–संपदा का अपहरण भी हुआ, किन्तु अंग्रेज़ी शासन में सामंतवादी व्यवस्था के बाद उनकी नई पूंजीवादी व्यवस्था में भारत के उद्योग–धंधों के चौपट होने से जो आर्थिक विपन्नता और व्यापक निर्धनता आई, वह अभूतपूर्व थी। ब्रिटिश शासकों की सहानुभूति भारत के साथ नहीं, अपने देश इंग्लैंड के साथ थी।

1793 में लार्ड कार्नवालिस द्वारा बंगाल, बिहार और उड़ीसा में जमींदारी प्रथा लागू किए जाने के बाद सामान्य कृषक और जनता की आर्थिक विपत्तियाँ और बढ़ गई। कालांतर में भी उत्तर भारत, मध्य भारत और महाराष्ट्र के कुछ भागों में भी जमींदारी प्रथा आरंभ कर दी गई। 1820 में सर टॉमस मुनरो द्वारा इस्तमरारी बंदोबस्त लागू किए जाने के परिणामस्वरूप भूमि व्यक्तिगत संपत्ति बन गई। इससे मालगुज़ारी, लगान और मनमानी दरें बढ़ना, किसानों का महाजनों के चंगुल आदि अनर्थकारी परिणाम सामने आए। 1770 में बंगाल में भीषण अकाल पड़ा। लगभग एक–तिहाई जनसंख्या कवलित हो गई, किन्तु भूमि के लगान में वृद्धि फिर भी होती रही। ब्रिटिश कंपनी ने व्यापार ही नहीं, भारत में अपने शासन की स्थापना के लिए जो अनेक युद्ध किए, उनसे यहाँ की अर्थव्यवस्था पर बहुत घातक प्रभाव पड़ा। 1857 की क्रांति के प्रमुख कारणों में से एक कारण देश का अर्थ–संकट भी था, जिसके बहुत कुछ उत्तरदायी अंग्रेज व्यापारी थे। कंपनी के शासन के बाद सीधे इंग्लैंड के क्राउन के शासन में आने पर भी इस देश की आर्थिक स्थिति में निरंतर ह्रास ही हुआ। अकालों की एक लंबी श्रृंखला ही शुरू हो गई। 1860 में पश्चिमोत्तर प्रांत में, 1866–67 ई. में कलकत्ता, उड़ीसा से मद्रास के पूर्व समुद्र तटीय भारत में, 1868–69 ई. में पंजाब, राजस्थान, पश्चिमोत्तर प्रांत

में, 1873 में बिहार में अकाल पड़ा। 1876–78 ई. तक प्रायः सभी प्रदेश अकाल की छाया में रहे और 1886–97 में पश्चिमोत्तर प्रांत, पंजाब, अवध, बिहार, बरार, मद्रास और बंबई, अकाल की विभीषिका से गुजरे। 1891 में आँकड़े लिए गए थे कि देश की 61 प्रतिशत जनता खेती पर आश्रित थी, तथापि ब्रिटिश सरकार ने कृषि की उपज बढ़ाने की ओर कोई ध्यान नहीं दिया।

1896 ई. से 1911 तक की अवधि देश के लिए बड़ी विपत्ति पूर्ण रही। देश के अनेक भागों में चूहों से फैलने वाली व्याधि 'प्लेग' का प्रकोप और अकाल का प्राणांतक संकट छा गया था। ब्रिटिश सरकार की शिथिलता ने जनता के मन में घोर आक्रोश भर दिया और सरकार की बड़ी निंदा की गई। अंग्रेजों की नई जटिल अर्थव्यवस्था में न्याय दुर्लभ हो गया। ग्राम पंचायतों का स्थान बड़ी कचहरियों ने ले लिया।

इस आर्थिक परिस्थिति का एक दूसरा पक्ष भी रहा। भारतीय समाज को इन परिस्थितियों से गुज़रने के कारण सहज रूप से विकास की दिशा प्राप्त हुई। डॉ. नगेन्द्र का यह मत सुविचारित ही है कि 'बहुत से शहरी उद्योग भी अंग्रेजों की कृपा से काल कवलित हो गए। फिर भी पुरानी अर्थव्यवस्था के स्थान पर जिस नई अर्थव्यवस्था को लागू किया गया, उससे अनजाने ही ऐतिहासिक विकास की अनिवार्य प्रक्रिया के फलस्वरूप भारतीय समाज विकास की ओर अग्रसर हुआ। गाँवों की जड़ता टूटी। गाँव दूसरे गाँवों और शहर के संपर्क में आने के लिए बाध्य हुए। घेरे में बंधी हुई अर्थव्यवस्था राष्ट्रोन्मुखी हो चली। जो देश केवल धार्मिक एकता में बंधा हुआ था, वह राष्ट्रीय एकता के प्रति भी जागरूक होने लगा। दूसरी ओर, जाति प्रथा आर्थिक वर्गों में बदलने लगी। उच्च वर्ग और श्रमिक वर्ग के अतिरिक्त एक नए मध्य वर्ग का उदय हुआ। इस देश में, इस वर्ग की भूमिका ही सबसे अधिक क्रांतिकारी कही जाएगी।' (हिंदी साहित्य का इतिहास, संपादक डॉ. नगेन्द्र, पृष्ठ 442)। अब हम थोड़ा विभिन्न सामाजिक परिस्थितियों को देखें।

2.4.3 सामाजिक परिस्थिति

ब्रिटिश शासन से पूर्व भारतीय समाज का जो रूप था, वह उसने हजारों वर्षों की अपनी समन्वय–प्रधान संस्कृति से प्राप्त किया था। प्राचीन भारतीय साहित्य से पता चलता है कि भारत ने अपने उदार चिंतन से किरात, हूण, आन्ध्र पुलिन्द, पुल्कस, आभीर, कंक, यवन, खस, पारसीक आदि जातियों को आत्मसात् कर लिया था। भारतीय समाज के स्वरूप में जो कुछ थोड़ा–बहुत परिवर्तन प्रभाव आगे चलकर दिखाई दिया, वह 8वीं शती में इस्लाम के प्रवेश से हुआ था। किन्तु जैसा पहले संकेत किया जा चुका है, ईसाई धर्मावलम्बी पाश्चात्य जातियाँ आधुनिक विज्ञान और उसके उपकरण लेकर भारत में आई। साथ ही, उनकी भाषा भी भौतिक ज्ञान, और भौतिक समृद्धि का आकर्षक वाहन बनकर इस समाज के सामने खड़ी थी। यह धर्म और अध्यात्मक प्रधान भारतीय समाज के लिए एक नितांत नया अनुभव था। एक नया झटका मानो इस शांत, स्थिर और शनैः–शनैः गतिशील समाज को लगा, जिसने इसके चिंतन और जीव पद्धति को काफी व्यापकता और गहराई से प्रभावित किया।

अंग्रेजी राज्य पूर्णतया स्थापित हो चुका था। मैकाले जैसे कूटनीतिज्ञों का विचार था कि यदि इस देश में अंग्रेजी भाषा छा जाएगी तो अंग्रेजी शासकों की सब समस्याएं हल हो जाएँगीं और वे अपने मंतव्यों में पूर्णतया सफल हो जाएंगे। विलियम बेंटिक की काउंसिल के दो सदस्यों–विल्सन और मैकाले–में भारतीय समाज को शिक्षित करने के माध्यम और पाठ्य–सामग्री के संबंध में मतभेद था। विल्सन संस्कृत और भारतीय भाषाओं के माध्यम और पाठ्य–सामग्री का पक्षधर था, और मैकाले (भारत आगमन 1834 ई.) अंग्रेजी भाषा के माध्यम

और अंग्रेजी साहित्य का हामी था। अंततोगत्वा मैकाले की दूरदर्शिनी कूटनीति सफल हुई। ब्रिटिश सरकार को अपना सारा कामकाज चलाने के लिए सस्ते क्लर्कों की आवश्यकता थी ही, उसने भारतीयों को अंग्रेजी शिक्षा देना और कंपनी में छोटी–मोटी नौकरी देना आरंभ कर दिया। अंग्रेजों की इस शिक्षा नीति का उद्देश्य यह भी था कि अंग्रेज़ी शिक्षा से भारतीय जनता अंग्रेज़ी वस्तुओं का प्रयोग करने की अभ्यस्त हो जाएगी, जिससे अंग्रेज़ी माल इस देश में अधिक खपने लगेगा। अंग्रेज़ अपने इस उद्देश्य में पूर्णतया सफल हुए। 1873 के ऐक्ट के अनुसार ब्रिटेन की सरकार ने ईस्ट इंडिया कंपनी को एक लाख रुपया वार्षिक भारतीय जनता में शिक्षा और विज्ञान के प्रसार के लिए व्यय करने का आदेश दिया। अंग्रेजों ने यह नीति अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिए अपनाई थी। किन्तु इस पाश्चात्य शिक्षा से अनेक भारतीय मनीषियों में उलटे अपने प्राचीन पौरस्त्य ज्ञान, विज्ञान, साहित्य, संस्कृति और अध्यात्म दर्शन के प्रति आदर और राष्ट्र–प्रेम की भावना जागृत हुई। अनेक पाश्चात्य विद्वान भारतीय सभ्यता, संस्कृति, ज्ञान–विज्ञान और दर्शन की श्रेष्ठता का लोहा पहले ही मान चुके थे। भारतीयों को मैक्समूलर, सर विलियम जोन्स, मोवियर विलियम्स जैसे ज्ञान पिपासु पाश्चात्य विद्वानों की कृतियों के अध्ययन से भी अपनी राष्ट्रीय महत्ता का भान हुआ। अंग्रेज़ व्यापारियों तक में कुछ ऐसे व्यक्ति थे, जिन्होंने भारतीय भाषाओं, साहित्य, दर्शन, कलाओं आदि में गहरी रुचि ली और उनका अच्छा अध्ययन किया। एक निष्पक्ष अंग्रेज़ विद्वान जेम्स जीन्स का मत इस संबंध में उल्लेखनीय है। वे कहते हैं, 'जब हमारे पूर्वज पशुओं का शिकार और एक–दूसरे की हत्या करते रहते थे तब भारत में परिपक्व दर्शन ग्रंथ रचे जा चुके थे। कला, कविता, साहित्य, सभी दिशाओं में वह इंग्लैंड से आगे था।' (वकील, एजुकेशन इन इंडिया, पृष्ठ 1, आधुनिक काल) जॉन मार्शल ने बहुत पहले (1672 ई. में) भारतीय संस्कृति और भाषा पर 'नोट्स एण्ड ऑब्जरवेशंस ऑन ईस्ट इंडिया' नामक महत्वपूर्ण ग्रंथ लिखा था। हिस्टिंग्ज के समय काशी में संस्कृत कॉलेज की स्थापना हुई। कलकत्ता में रॉयल एशियाटिक सोसाइटी की स्थापना से विलियम जोन्स ने भारतीयता के समग्र पक्षों को उजागर करने का महत्वपूर्ण कार्य किया। उन्होंने कालिदास के 'अभिज्ञान शाकुन्तलम' और जयदेव के 'गीत गोविन्द' का अंग्रेजी में अनुवाद कर पाश्चात्य जगत् से भारतीय कवयित्री प्रतिभा का परिचय कराया। 1800 ई. में कलकत्ता में फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना से हिंदी के व्यापक प्रचार का कार्य सम्पन्न हआ। अनेक अंग्रेज विधा प्रेमियों ने हिंदी सीखी। विलियम कैरे आदि ईसाई धर्म प्रचारकों ने हिंदी आदि भारतीय भाषाओं में बाइबिल का अनुवाद किया। इससे हिंदी की नई गद्य शैली का विकास हुआ। 1817 ई. में कलकत्ता 'बुक सोसाइटी' की स्थापना हुई, जिसके द्वारा संस्कृत तथा देशी भाषाओं की पुस्तकें प्रकाशित होती थीं। 1838 ई. में रोज़ेन के सम्पादन में ऋग्वेद के आठ भाग प्रकाशित हुए। रूगे राथ का वैदिक इतिहास और मैक्समूलर के ऋग्वेद पर छह विशाल ग्रंथ प्रकाशित हुए। मैक्समूलर की आस्था थी कि समस्त ज्ञान का आदि स्रोत भारत ही है। 1857 के उपरांत प्राचीन भारतीय संस्कृति के अन्वेषण का कार्य व्यवस्थित रूप से प्रारंभ हो गया। कनिंघम ने भारतीय पुरातत्व विभाग की स्थापना के द्वारा इस दिशा में महत्वपूर्ण कार्य किया। दूसरी ओर, भारतीय मनीषी आधुनिक राष्ट्रीय भावों के लिए बर्क, मिल, मैकाले, लॉक, हर्बर्ट स्पेंसर, मिल्टन आदि पाश्चात्य विचारकों और साहित्यकारों से प्रभावित हुए।

बोध प्रश्न –2

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दें।

1. आधुनिक युग की राजनीतिक परिस्थितियों को लगभग पन्द्रह पंक्तियों में स्पष्ट कीजिए।

....

....

....

....

....

....

....

....

2. सन् 1857 का स्वाधीनता संग्राम क्या था? उसके कारण स्पष्ट करते हुए लगभग दस पंक्तियाँ लिखिए।

....

....

....

....

....

....

....

3. आधुनिक युग की आर्थिक परिस्थितियों को लगभग दस–बारह पंक्तियों में स्पष्ट कीजिए।

....

....

....

....

....

....

....

....

4. आधुनिक युग में अंग्रेजों की आर्थिक व्यवस्था से हो रहे शोषण को भारतेंदु हरिश्चंद्र ने कविता के माध्यम से अभिव्यक्ति दी है। कोई एक उदाहरण देकर लगभग दस पंक्तियों में उसका अर्थ स्पष्ट कीजिए।

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

....

....

....

....

....

....

....

....

5. आधुनिक युग की सामाजिक परिस्थितियों पर पन्द्रह पंक्तियाँ लिखिए।

....

....

....

....

....

....

....

....

2.4.4 धार्मिक परिस्थिति

अंग्रेजी शासन का आधिपत्य भारत में हिंदू धर्म के ह्रास का कारण भी बना। तत्व ज्ञान की समर्थता का भंडार माना जाने वाला वह हिंदू धर्म जिसके आगे पूरा संसार सर झुकाता था, धीरे–धीरे अपने गौरव को खोने लगा। धर्मवेत्ता–ब्राह्मणों ने तत्व ज्ञान की शिक्षा देने के स्थान पर दान लेने में ही अपने कर्त्तव्य की पूर्ति मान ली थी। अशिक्षित भारतीय जनता अब अंध–परंपराओं के आगे नत–मस्तक होने लगी थी। सती–प्रथा, बाल–हत्या तथा नर–बलि आदि अब धर्म–सम्मत हो गए थे।

अंग्रेजों के साथ ईसाई मिशनरी भी भारत आए थे। अतः सनातन हिंदू धर्म, जैन धर्म, बौद्ध धर्म, इस्लाम धर्म तथा सिक्ख सम्प्रदाय आदि के साथ–साथ अब ईसाई धर्म के प्रचार–प्रसार हेतु भी हर प्रकार के हथकंडे अपनाए जाने लगे थे। हिंदू सनातन धर्म के कर्मकांड से तंग आकर बहुत से हिन्दुओं ने ईसाई धर्म अपनाना प्रारंभ कर दिया था। ईसाई मिशनरियों के धार्मिक प्रचार का लक्ष्य भी हिन्दुओं और मुसलमानों के धर्मों पर आक्रमण करके उनमें हीनता की भावना भरना था। ईसाई मिशनरियों को इसी उद्देश्य के लिए अपार धनराशि भी दी जाती थी।

अंग्रेजी सरकार ऊपर से तो सभी धर्मों को समान अधिकार देने की बात करती रही, परन्तु वास्तविकता यह नहीं थी। जैन तथा बौद्ध धर्म तो यों भी अपना प्रभाव पहले ही कम कर

चुके थे। धीरे–धीरे आधुनिक युग में आस्तिकता भी कम होती गई और नास्तिकता की विचारधारा फैलती गई। नीत्शे का यह वाक्य 'ईश्वर मर चुका है' चारों तरफ प्रसार करने लगा था। धर्म के नाम पर साम्प्रदायिकता धीरे–धीरे व्याप्त होने लगी थी। आगे चलकर ब्रहम समाज, प्रार्थना समाज, आर्य समाज, रामकिशन मिशन तथा थियोसॉफिकल सोसाइटी आदि की धार्मिक एवं सांस्कृतिक विचारधाराओं, ने आधुनिक साहित्य एवं भाषा को पर्याप्त प्रभावित किया। इनके प्रभाव से ईसाई या मुसलमान बने बहुत से हिन्दु धर्मावलम्बी पुनः हिन्दू धर्म में लौट आए। अब हिन्दु धर्म के पुनरूद्धार की चेष्टाएँ भी होने लगी थीं। तांत्रिक मत की प्रबलता के लिए नरमांस द्वारा हो रही देवी चण्डिका, चामुण्डा या काली की उपासना पर भी रोक लगी। बालकों की बलि को भी रोका गया। कन्या–वध को वर्जित ठहराया गया। स्वयं हिन्दू समाज भी अब धर्मान्धता के लिए छटपटाने लगा था। सन् 1893 में रामकृष्ण परमहंस तथा उनके योग्य शिष्य स्वामी विवेकानन्द विश्व धर्म संसद में भाग लेने के लिए शिकागो (अमेरिका) गए और भारतीय आध्यात्मिकता की धाक पूरे विश्व में जम गई। इस नवजात चेतना के कारण हिन्दू धर्म की उन्नति और उसमें विश्व श्रेष्ठ आत्म–गौरव को पुनर्जीवित करने के अनेक महान व्यक्ति अपने जीवन का उत्सर्ग करने में जुट गए। अतः आधुनिक काल में जो हिंदी साहित्य लिखा गया, उस पर विभिन्न धर्मों एवं सम्प्रदाय का प्रभाव भी काफी रहा। धर्म–दर्शन तथा उनकी चेतना का प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष प्रभाव भारतेंदु युग से आज के साहित्य में देखा भी जा सकता है।

2.4.5 सांस्कृतिक परिस्थिति

किसी भी साहित्य और सभ्यता में सांस्कृतिक मूल्यों की अंतर चेतना को देखा जा सकता है। आधुनिक युग के इस परिवेश में ब्रिटिश जाति के भारत में सत्तारूढ़ हो जाने के परिणामस्वरूप भारतीय एवं योरोपीय संस्कृति के संघर्ष को देखा जा सकता है। शासन की राजनीतिक, आर्थिक तथा शैक्षिक व्यवस्था का प्रभाव भारत की परिस्थिति और भावनाओं पर तो पड़ ही रहा था, भारतीय मनःस्थिति पर भी गहराता जा रहा था। आरंभ में भारतीय संस्कृति ने सर्वोपरि होने का दंभ भरते हुए इस पाश्चात्य संस्कृति के सभी पक्षों का विरोध किया, किन्तु वह कारगर न हो सका। भारतीय संस्कृति की सहज प्राणशक्ति ने समय की अपेक्षा को पहचानते हुए स्वयं को परिवर्तित परिस्थिति के अनुकूल ढाल लिया। सामंजस्य प्रियता का परिणाम यह हुआ कि पूर्व और पश्चिम, नवीनता और प्राचीन तथा परंपरा और बौद्धिक–वैचारिक आधुनिकता ब्रह्म समाज, प्रार्थना समाज, वेद समाज, देव समाज, आर्य समाज तथा थियोसॉफिकल सोसाइटी के रूप में उभरकर सामने आने लगी। हमने आध्यात्मिकता के क्षेत्र में तो स्वयं को समृद्ध माना परन्तु इतिहास, समाज सुधार राजतंत्र, विज्ञान, उद्योग, अर्थ–नीति तथा शिक्षा आदि क्षेत्रों में हम योरोपीय संस्कृति की ओर झुके नहीं, धीरे–धीरे रंगते भी चले गए।

ऐतिहासिक–सांस्कृतिक संघर्ष का परिणाम यह हुआ कि भारतीय सामंतीय संस्कृति समाप्त होने लगी तथा औद्योगिक पूंजीवादी व्यवस्था का सूत्रपात होता चला गया। परिणामतः राष्ट्रीयता को भी बढ़ावा मिलने लगा। श्रमिक वर्ग संघटित हो गया। राजनीति में अंग्रेजी पढ़ा–लिखा मध्यवर्गीय भारतीय भी उतर गया। अंग्रेजों का, उनके शासन का गुणगान होने लगा। परन्तु अंग्रेजों की यह प्रशंसा अधिक देर न चल सकी। कांग्रेस पार्टी के सामने आते ही आंदोलनवादी नीति प्रमुख हो गई और राष्ट्रीय चेतना प्रसार पाने लगी। गांधी जी के राजनीति में आते ही सत्य और अहिंसा की संस्कृति प्रसार पाने लगी। धीरे–धीरे अंतर्राष्ट्रीय संबंध भी स्थापित हुए। परिणामतः 'विश्व कुटुम्बकम' भावना का प्रसार हुआ। मानवतावाद का उदय तथा साम्राज्यवाद का विरोध भी खुलकर होने लगा था। अतः सांस्कृतिक जागरण की

दृष्टि से भी यह युग अत्यन्त महत्वपूर्ण युग कहा जा सकता है। अतीत के माध्यम से वर्तमान समस्याओं को, पुराख्यानों, पुरासंदर्भो तथा ऐतिहासिक पात्रों या चरित्रों का गुणगान साहित्य में भी होने लगा। सांस्कृतिक चेतना साहित्य में ढलने लगी। परस्पर आदान–प्रदान से संस्कृति का स्वरूप बदला अवश्य, परन्तु उसके मूलभूत मूल्यों से जनतांत्रिक भावनाओं को विकास ही मिलता रहा।

2.5 साहित्य, संगीत एवं अन्य कलाएँ

आधुनिक काल की इन परिस्थितियों और गतिविधियों ने युगीन साहित्य, संगीत, भाषा तथा चित्रकला आदि को भी प्रभावित किया। रीतिकाल में इन सभी को दरबारों में आश्रय और प्रश्रय मिल रहा था, किन्तु अंग्रेजी साम्राज्य की स्थापना के बाद सामंतवादी ढाँचा टूटा और इन कलाओं के दरबारी आश्रय भी छिन गए। कला, संगीत और नृत्य आदि को घरानों में पीढ़ी–दर–पीढ़ी संरक्षण मिला करता था। इस युग में वह धीरे–धीरे कम होता चला गया। पाश्चात्य संस्कृति की आंधी ने भारतीय कलाओं के स्वरूप को बदला। संगीत के क्षेत्र में एक नई पद्धति का आविर्भाव 'रवीन्द्र संगीत' के नाम से हुआ, जिसमें पूर्व और पश्चिम की संगीत–शैली का मिश्रण था। चित्रकला पर भी पश्चिमी प्रभाव बढ़ता गया। पश्चिमी ढंग के तैल–चित्रों का निर्माण इस अभिव्यक्ति का प्रमाण बना। पत्र–पत्रिकाओं में ये सामंजस्यमयी–संस्कृति के सूचक चित्र छपने लगे थे। आगे चलकर हैबेल, रवीन्द्र नाथ ठाकुर तथा आनंद कुमार स्वामी आदि ने भारतीय चित्र शैली को आधुनिक जीवन दृष्टि से अनुशासित करते हुए एक नया रूप प्रदान किया। बंगाल ने इस दिशा में तो प्रमुख भूमिका निभाई ही, साहित्य की अनेक विधाओं में भी आधुनिक जीवन के नवजागरण की मुखर अभिव्यक्ति देखने को मिली। हिंदी भाषा और साहित्य को भी इसी प्रेरणा से नई दिशा प्राप्त हुई। मुद्रणकला की आधुनिक दृष्टि से इस युग का साहित्य तेजी से तथा नए–नए रूप–रंग में आगे बढ़ा। साहित्यकारों ने अतीत को भी सामने रखकर अपने को गौरवान्वित महसूस करना प्रारंभ किया। देश में उभरती हुई राष्ट्रीय चेतना को भी साहित्य से स्वर प्राप्त हुआ। देश की सभी भाषाओं में साहित्य का वैविध्य तथा जागरण की चेतना देखी जा सकती है। मुद्रणालयों ने साहित्य को जन–जन तक तो पहुँचाया ही, देश को एक सूत्र में बांधने की दिशा में महत्वपूर्ण भूमिका भी निभाई। देश में नवजागरण लाने वाले समाचार–पत्रों, पत्रिकाओं, पुस्तकों तथा मुद्रणालयों की इस भूमिका को कभी विस्मृत नहीं किया जा सकता।

उस समय सरकारी कार्यालयों, अदालतों तथा शिक्षा संस्थाओं में उर्दू भाषा का आधिपत्य था। फलतः हिंदी भाषा जन–समूह तथा विभिन्न बोलियों के बीच संपर्क माध्यम के रूप में खड़ी बोली को प्रतिष्ठित करने, उर्दू के स्थान पर नागरी लिपि में खड़ी बोली हिंदी को हिंदी भाषी जनता के नवजागरण का सांस्कृतिक माध्यम बनाने और सरकारी स्तर पर हिंदी को यथायोग्य स्थान दिलाने का जो संघर्ष उस समय हुआ, उसमें आधुनिक बोध की तथा अधुनातन–चेतना की महत्वपूर्ण भूमिका रही। 1868 ई. से ही आधुनिक हिंदी गद्य साहित्य का प्रवर्तन हुआ और यहीं से साहित्यिक पत्रिका 'कवि–वचन–सुधा' की शुरुआत भी। इसके बाद 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका', 'सरस्वती', तथा 'मतवाला' आदि पत्रिकाएँ भी प्रकाशित हुईं। यों सन् 1802 ई. में कलकत्ता के हरकारू प्रेस, गजट प्रेस तथा मिरर प्रेस से मर्सिया, सिंहासन बत्तीसी, माधोनल, शकुन्तला नाटक तथा बैताल पचीसी का हिंदी में प्रकाशन हो चुका था। अतः खड़ी बोली हिंदी साहित्य के इतिहास में यह ऐतिहासिक वर्ष ही था। इसके बाद तो 'लल्लू जी लाल कवि' द्वारा किया गया खड़ी बोली रूपांतरण 'प्रेम सागर' प्रकाशित हुआ। फिर पंडित सदल मिश्र ने 'नासिकेतोपाख्यान' तथा 'रामचरित' नामक ग्रंथों में प्रयुक्त

राजभाषा सामने आई। तदोपरांत मुंशी सदासुख लाल का 'सुख सागर' नामक ग्रंथ प्रकाशित हुआ। इसी प्रकार इंशा अल्ला खाँ की रचना 'रानी केतकी की कहानी' भी आधुनिक खड़ी बोली गद्य के इतिहास में महत्वपूर्ण रचना के रूप में जानी गई। मिशनरियों द्वारा बाइबिल के अनुवाद किए गए। राजा शिव प्रसाद सितारे हिन्द का आविर्भाव भी हिंदी खड़ी बोली गद्य के विकास की दिशा में एक महत्वपूर्ण चरण माना गया। इसी प्रकार, राजा लक्ष्मण सिंह की रससिद्ध गद्य शैली तथा नवीन चन्द्र राय की गद्य शैली भी आधुनिक हिंदी साहित्य एवं भाषा के विकास की सूचक बनी।

अतः आधुनिक युग की विभिन्न परिस्थितियों ने साहित्यकार, कलाकार तथा चित्रकार आदि को तो प्रभावित किया ही, साहित्य की विभिन्न विधाओं, भाषाओं, शैलियों तथा माध्यमों को भी प्रभावित किया। नवीन शिक्षा प्रणालियाँ, पाठ्य–पुस्तकें, समाचार–पत्र, लेखन–पठन–सामग्री सभी का गद्य एवं पद्य में लेखन सृजन हुआ। पत्रकारिता के विकास ने भी गद्य लेखन को प्रोत्साहित किया। परन्तु इसका तात्पर्य यह भी नहीं कि इस युग में काव्य सृजन हुआ ही नहीं या बहुत कम हुआ। काव्य की दृष्टि से इस युग के इतिहास एवं विकास के सोपानों को देखें तो वे इस प्रकार हैं : भारतेंदु युगीन काव्य, महावीर प्रसाद द्विवेदी युगीन काव्य, छायावादी काव्य, प्रगतिवादी काव्य, प्रयोगवादी काव्य, नई कविता, साठोत्तरी कविता, अकविता तथा विचार कविता आदि। इसी प्रकार, गद्य के विकास को विभिन्न साहित्य रूपों में देखें तो बहुत सी विधाएँ उपलब्ध होती हैं–नाटक, एकांकी, उपन्यास, निबंध, समालोचना, गद्यकाव्य, जीवनी, यात्रावृत्त, संस्मरण रेखाचित्र, पत्र–साहित्य, भेंटवार्ता, इंटरव्यू, अनुवाद तथा रिपोर्ताज आदि। आगे की इकाइयों खंडों में आप इनकी समीक्षा भी कर सकेंगे।

अतः आधुनिक युग के हिंदी साहित्य, भाषा, संगीत, चित्र तथा अन्य कलाओं पर भी पश्चिमीकरण का पर्याप्त प्रभाव पड़ा। कई गद्य विधाएँ विदेशी 'फ्रेम' पर तैयार हुई। भाषा पर, मुहावरों पर, संस्कृति पर, मानसिकता पर, विषय–वैविध्य पर इस विदेशी प्रभाव को देखा जा सकता है। परन्तु यह मात्र विदेशी अथवा पश्चिम का अंधानुकरण नहीं। यह मिश्रित संस्कृति का सूचक है। वैज्ञानिक दृष्टि का वाचक है। यह आधुनिक युग की आधुनिकता का परिणाम है।

2.6 राष्ट्रीय चेतना का विकास

आधुनिक युग के दौरान 1857 की क्रांति की चर्चा हम राजनीतिक परिस्थितियों के अंतर्गत कर चुके हैं। किंतु यहाँ आधुनिक युग में प्रचार–प्रसार पा रही राष्ट्रीय चेतना की संक्षिप्त समीक्षा कर लेना भी अनुचित न होगा। इस युग में स्वतंत्रता के लिए तन–मन–धन से समर्पित रहने तथा देश के लिए प्राणोत्सर्ग करने की भावना पूरी तरह जोर पकड़ती जा रही थी। राष्ट्रीय चेतना ने लोगों को इस सीमा तक जागृत कर दिया था कि वे स्वतंत्रता के लिए कुछ भी न्यौछावर करने को तैयार थे। इसी राष्ट्रीय चेतना ने देश को सांस्कृतिक प्रगति की पृष्ठभमि भी प्रदान की। अलग–अलग जाति और धर्म के लोगों ने संकीर्णता से ऊपर उठकर राष्ट्रीय एकता की दिशा में सोचना प्रारंभ कर दिया था। परिणामतः धीरे–धीरे धर्म और जाति गौण होते जा रहे थे तथा राष्ट्रीय हित सर्वोपरि होता जा रहा था। 19वीं शताब्दी के अंतिम भाग तथा 20वीं शताब्दी के प्रारंभ में पाश्चात्य संस्कृति के प्रति भारतीय जनता का विशेष लगाव था, परन्तु धीरे–धीरे पाश्चात्य संस्कृति, विदेशी भाषा, विदेशी सामग्री आदि के अंधानुकरण के प्रति विचारकों और लेखकों का क्षोभ लक्षित होने लगा था। प्राचीन भारतीय संस्कृति पुनः मुखर होकर साहित्य में स्थान पाने लगी थी।

20वीं शताब्दी के दूसरे दशक से तो राष्ट्रीय भावना में प्रगति और व्यापकता स्पष्टतः देखी जाने लगी। विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार होने लगा। राष्ट्रीयता की भावना के आधार पर सांस्कृतिक मनोदृष्टि का नवोन्मेष प्रारंभ हुआ। अपनी संस्कृति के प्रति मोह तथा प्रबल आकर्षण देखने को मिलने लगा और अंग्रेज़ियत का विरोध प्रारंभ हो गया। भारतीय संस्कृति के प्रति समादर भाव उभरने लगा। मैथिलीशरण गुप्त, प्रसाद, निराला, महादेवी, दिनकर, माखनलाल चतुर्वेदी, सुभद्रा कुमारी चौहान, पंत, रामनरेश त्रिपाठी, बालकृष्ण शर्मा नवीन तथा सोहनलाल द्विवेदी आदि साहित्यकारों के सृजन–संसार में इस चेतना को सहज ही देखा जा सकता है।

आगे चलकर धीरे–धीरे पाश्चात्य संस्कृति के प्रति वैज्ञानिक मनोदृष्टि का उदय और उसके प्रति प्रबल आग्रह भी देखने को मिलने लगा। सांस्कृतिक जागरण तथा वैज्ञानिक प्रबुद्धता का यह अद्भुत मिश्रण स्वाभाविक रूप में सामने आया। आजादी से पहले की चेतना ने राजनीतिक दासता के विरोध में हमें संस्कृति के प्रति उन्मुख किया तो आजादी के बाद की चेतना ने सांस्कृतिक मनोभावों की दिशा बदलने पर वैज्ञानिकता और बौद्धिकता की दिशा में आगे बढ़ाया। बौद्धिकता और वैज्ञानिकता की इसी अतिशमता ने यथार्थवाद, प्रगतिवाद तथा मानवतावाद को पुष्ट किया। पाश्चात्य जीवन प्रणाली का मोह बढ़ने लगा। परिणामतः लक्ष्य रहा समन्वयात्मक वैज्ञानिकता और बौद्धिकता की ओर अग्रसर होने का। पाश्चात्य संस्कृति की अच्छाइयों को अपनाने का। भारतीय संस्कृति एवं स्वाभिमान को तिलांजलि देकर पाश्चात्य संस्कृति के अंधानुकरण का लक्ष्य कदापि नहीं रहा।

बोध प्रश्न–3

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

1. नीचे कुछ कथन दिए गए हैं। उनकी पुष्टि के लिए तीन–तीन विकल्प भी दिए गए हैं। सही विकल्प को (अ) चिन्हित कीजिए :

   i) सन् 1757 / 1764 / 1707 ई. में बक्सर का युद्ध जीतकर अंग्रेजों ने एक निर्णायक विजय हासिल की। ( )

   ii) सन् 1849 / 1856 / 1823 में महाराजा रणजीत सिंह की मृत्यु के पश्चात् अंग्रेजों ने पंजाब पर भी अधिकार कर लिया था। ( )

   iii) लार्ड कार्नवालिस / डलहौजी / विलियम के समय में कलकत्ता, बंबई और मद्रास में विश्वविद्यालय स्थापित किए गए। ( )

   iv) सन् 1823 / 1841 / 1857 में भारतीय जनता ने ब्रिटिश साम्राज्य को समाप्त कर स्वाधीनता हासिल करने की एक सुनियोजित जनक्रांति प्रारंभ की। ( )

   v) महान देशभक्त तात्या टोपे को अंग्रेजों ने सन् 1859 / 1842 / 1857 में फांसी दे दी। ( )

2. नीचे दिए कथनों में कुछ सही हैं तथा कुछ गलत। उपयुक्त चिह्न से स्पष्ट कीजिए :

   i) सन् 1885 में ए.ओ. ह्युम के प्रयत्न से भारतीय कांग्रेस की स्थापना हुई।

   ii) सन् 1793 में लार्ड कार्नवालिस द्वारा बंगाल, बिहार और उड़ीसा में जमींदारी प्रथा लागू किए जाने के बाद सामान्य कृषक और जनता की आर्थिक विपत्तियाँ और बढ़ीं थीं।

iii) 1813 के ऐक्ट के अनुसार ब्रिटेन की सरकार ने ईस्ट इंडिया कंपनी को एक लाख रुपया वार्षिक भारतीय जनता में शिक्षा और विज्ञान के प्रसार के लिए व्यय करने का आदेश दिया था।

iv) आधुनिक युग के प्रारंभ में मुद्रणालयों ने देश के जन–जागरण में कोई महत्वपूर्ण भूमिका नहीं निभाई।

v) भिन्न–भिन्न जाति और धर्मों के लोग आधुनिक युग के प्रारंभ में भी संकीर्णता से ऊपर उठकर राष्ट्रीय चेतना और एकता की दिशा में न सोच सके थे।

3. आधुनिक युग में धर्म और संस्कृति की दृष्टि से भी उल्लेखनीय परिवर्तन आए। लगभग दस–बारह पंक्तियों में स्पष्ट कीजिए।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

4. आधुनिक युग में साहित्य, संगीत एवं अन्य कलाओं की दृष्टि से क्या परिवर्तन आया। लगभग दस पंक्तियों में लिखिए।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

5. आधुनिक युग के प्रारंभ में साहित्य, संगीत एवं अन्य कलाओं की क्या स्थिति थी? लगभग दस पंक्तियों में स्पष्ट कीजिए।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

6. आधुनिक युग की परिस्थितियों में राष्ट्रीय चेतना के प्रसार की क्या स्थिति थी? लगभग आठ पंक्तियों में लिखिए।

....

....

....

....

....

....

2.7 सारांश

- 'आधुनिक युगीन परिस्थितियाँ' विषयक इस इकाई में आपने हिंदी के आधुनिक युगीन साहित्य की पृष्ठभूमि तैयार करने वाली विभिन्न परिस्थितियों का विवेचनात्मक अध्ययन किया। राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक तथा सांस्कृतिक परिस्थितियों की समीक्षा करते हुए आपने यह भी जाना कि किन अर्थों में ये स्थितियाँ आधुनिक युग का निर्माण कर रही थीं तथा आधुनिक हिंदी साहित्य के लिए किन प्रेरक कारणों का निर्माण कर रही थीं। संगीत, साहित्य, भाषा तथा अन्य कलाओं की इस युग के प्रारंभ में क्या स्थिति थी तथा उन्होंने कैसे विकास पाया। साहित्य तथा भाषा का स्वरूप आधुनिकता के परिप्रेक्ष्य में कैसे और क्यों बदला। खड़ी बोली गद्य का स्वरूप तथा विकास क्या रहा और आधुनिक युग के निर्माण में उसकी क्या भूमिका रही। राष्ट्रीय चेतना के स्वर को इस युग में कैसे मुखर किया गया और भारतीय एवं पाश्चात्य संस्कृति के सामंजस्य ने वैज्ञानिकता और बौद्धिकता के किन आयामों को दृष्टि में रखकर विकास पाया। विदेशी शासन, पाश्चात्य सभ्यता की गहराती पकड़, अंग्रेजों की अर्थनीति, सामाजिक एवं प्रशासनिक व्यवस्था, धार्मिक स्थिति के बदलते स्वरूप आदि की आपने गहन विवेचना इस इकाई में की।

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

- इससे पूर्व, प्रारंभ में 'आधुनिक युग' के स्वरूप और विकास की विस्तृत चर्चा करते हुए आपने इस युग के नामकरण एवं सीमांकन का भी तर्कसंगत विवेचन किया। अब आगामी इकाइयों में आप इन परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में आधुनिक युग के वैचारिक आधार, आधुनिक हिंदी साहित्य के आरंभ, भारतेन्दु युग तथा द्विवेदी युगीन साहित्य का व्यापक अध्ययन कर सकेंगे।

2.8 शब्दावली

सम्प्रति : वर्तमान समय में

काल–सापेक्षता : समय पर आधारित अथवा समय के संदर्भ में

पुनराख्यान : पुनः कहना अथवा पुनः वर्णित करना

लोक–सम्पृक्ति : जनता से मिल–जुलकर या लोक सम्बद्ध

आधिपत्य : प्रभुत्व

आक्रान्त : जिस पर हमला किया गया हो, जिस पर कब्जा किया गया हो

अपदस्थ : पद से हटाया हुआ, पदच्युत

विभीषिका : भय–प्रदर्शन, डरावना

धर्मावलम्बी : धर्म को मानने वाला

धर्मान्धता : धर्म के प्रति अंधविश्वास या अंधश्रद्धा

2.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

आधुनिक हिंदी साहित्य का इतिहास : बच्चन सिंह; लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।

भारतीय साहित्य का समेकित इतिहास: संपादक डॉ. नगेन्द्र, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।

हिन्दी साहित्य का इतिहास: संपादक डॉ. नगेन्द्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस; दरियागंज, दिल्ली।

हिन्दी साहित्य का इतिहास: डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।

आधुनिक हिन्दी साहित्य : डॉ. ओमप्रकाश सिंहल, पीताम्बर पब्लिशिंग कम्पनी, करोल बाग, नई दिल्ली।

2.10 बोध प्रश्नों / अभ्यासों के उत्तर

बोध प्रश्न –1

1) देखिए, भाग 2.1

2) देखिए, भाग 2.1

3) देखिए, भाग 2.2 और भाग 2.3

4) i) x

ii) √

iii) √

iv) x

v) √

बोध प्रश्न –2

1) देखिए, भाग 2.4.1

2) देखिए, भाग 2.4.1

3) देखिए, भाग 2.4.2

4) देखिए, भाग 2.4.2

5) देखिए, भाग 2.4.3

बोध प्रश्न –3

1) i) सन् 1764

ii) सन् 1849

iii) लार्ड डलहौजी

iv) सन् 1857

v) सन् 1859

2) i) √

ii) √

iii) √

iv) x

v) x

3) देखिए, भाग 2.4.4 और 2.4.5

4) देखिए, भाग 2.5

5) देखिए, भाग 2.6

इकाई 3 आधुनिक युग का वैचारिक आधार

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 सामाजिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि

- 3.2.1 नया आर्थिक ढाँचा
- 3.2.2 नयी शिक्षा प्रणाली
- 3.2.3 मुद्रणालयों की भूमिका
- 3.2.4 यातायात की स्थिति एवं विकास

3.3 पाश्चात्य जीवन–दृष्टियाँ

- 3.3.1 आदर्शवाद
- 3.3.2 अभिव्यंजनावाद एवं रूपवाद
- 3.3.3 अस्तित्ववाद
- 3.3.4 मनोविश्लेषणवाद एवं अतियथार्थवाद
- 3.3.5 मानवतावादी विचारधारा
- 3.3.6 मार्क्सवादी विचारधारा
- 3.3.7 समाजवाद एवं साम्यवाद
- 3.3.8 प्रतीकवाद और बिम्बवाद

3.4 थियोसोफिकल सोसायटी की स्थापना

3.5 भारतीय जीवन दृष्टियाँ

- 3.5.1 ब्रह्म समाज
- 3.5.2 प्रार्थना समाज
- 3.5.3 रामकृष्ण परमहंस मिशन
- 3.5.4 आर्य समाज
- 3.5.5 गांधीवादी विचारधारा
- 3.5.6 प्रगतिवाद

3.6 वैज्ञानिक दृष्टिकोण तथा आदर्शवादी जीवन–दर्शन

3.7 सारांश

3.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

3.9 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

3.0 उद्देश्य

इससे पहली इकाई में आप आधुनिक काल की परिस्थितियों का अध्ययन कर चुके हैं। यह इकाई आधुनिक युग की पृष्ठभूमि तथा युगीन विचारधाराओं की पोषक दृष्टियों एवं धारणाओं की समीक्षा करती है। अतः इस इकाई के अध्ययन से आप :

- सामाजिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से हो रहे वैचारिक एवं व्यावहारिक बदलावों को समझ सकेंगे/सकेंगी;

- भारत में अंग्रेजों की नई आर्थिक नीति को स्पष्ट कर सकेंगी / सकेंगे;
- नई शिक्षा प्रणाली, यातायात के बदलाव तथा मुद्रणालय की जन–जीवन में भूमिका बता सकेंगी / सकेंगे;
- पाश्चात्य विचारधाराओं के सूचक आदर्शवाद, अभिव्यंजनावाद, अस्तित्ववाद, मार्क्सवाद तथा समाजवादी आदि विविध वादों की जीवन दृष्टि को व्याख्यायित कर सकेंगी / सकेंगे;
- थियोसोफिकल सोसाइटी की स्थापना एवं भूमिका को बता सकेंगी / सकेंगे;
- भारतीय जीवन दृष्टि के अंतर्गत ब्रह्म समाज, प्रार्थना समाज, रामकृष्ण मिशन, आर्य समाज तथा गांधीवाद आदि के वैचारिक आधार का विवेचन कर सकेंगी / सकेंगे; और
- आधुनिक युग के वैज्ञानिक दृष्टिकोण एवं आदर्शवादी जीवन–दर्शन को विश्लेषित कर सकेंगी / सकेंगे।

3.1 प्रस्तावना

भारत में अंग्रेजी शासन एक महत्वपूर्ण घटना है। भारत के सामाजिक जीवन में आधुनिक काल में जो चेतना आयी उसका कारण आंग्ल–भारतीय संपर्क है। लार्ड क्लाइव ने 1757 में बंगाल के नवाब सिराजुद्दौला को प्लासी के युद्ध में पराजित करके सम्पूर्ण बंगाल को अधिकार में कर लिया। 1764 में अंग्रेजों ने मुगल सम्राट, आलम शाह को पराजित किया। 1826 में जाट राजा और 1849 में सिक्खों को पराजित किया एवं 1856 में अवध के नवाब वाजिद अली शाह को अपदस्थ करके अंग्रेजों ने अवध को अंग्रेजी राज्य में मिला लिया। इस प्रकार संपूर्ण देश पर अंग्रेजों का नियंत्रण 1856 तक हो गया। विजय पर विजय पाने के कारण अंग्रेज स्वभावतः मदोन्मत्त हो गये और उनकी नीतियों से असन्तुष्ट होकर देशी राजाओं ने अन्तिम मुगल सम्राट बहादुशाह ज़फर के नेतृत्व में 1857 में व्यापक स्तर पर विद्रोह किया। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि पूँजीवादी और सामंतवादी शक्तियों की टकराहट हुई एवं सामंतीय शक्तियों की पराजय हुई। इसके फलस्वरूप ब्रिटिश सरकार ने ईस्ट इंडिया कम्पनी को समाप्त करके भारत को ब्रिटिश साम्राज्य का उपनिवेश बना लिया। इससे भारतीयों को भिन्न सभ्यता और संस्कृति का सामना करना पड़ा तथा ब्रिटिश सरकार ने अपनी आर्थिक, शैक्षणिक और प्रशासनिक नीतियों को लागू करना आरंभ कर दिया। अब भारतीयों को कुछ नया सोचने और करने के लिए बाध्य होना पड़ा।

हिन्दी साहित्य ने पुरानी रूढ़ काव्य परम्पराओं से कुछ मुक्ति पाकर ऐसे क्षेत्र में प्रवेश किया जो नए जीवन की संघर्षपूर्ण हलचलों से भरा हुआ था एवं प्रथम बार वह मनुष्य के बृहत्तर सुख–दुख के साथ जुड़ा। इसे भारतेन्दु युग कहा गया। आधुनिक जीवन–चेतना की अभिव्यक्ति का माध्यम खड़ी बोली बनी।

किसी भी साहित्य का इतिहास बदलती हुई अभिरुचियों एवं संवेदनाओं का इतिहास हुआ करता है। अभिरुचियों और संवेदनाओं के परिवर्तन का सीधा सम्बन्ध चिन्तनात्मक और आर्थिक परिवर्तन से होता है। आधुनिक काल की वर्तमान प्रक्रिया को समझने के लिए उन समस्त कारणों का विवेचन आवश्यक है जो अंग्रेजी साम्राज्यवाद के फलस्वरूप प्रादुर्भूत हुए।

इस इकाई में आप इन सब कारणों के मूल में काम कर रही पाश्चात्य एवं जीवन दृष्टियों का विश्लेषण कर सकेंगे कि आधुनिक युग का हिंदी साहित्य इन सब विचारों से कैसे और किस रूप में ऊर्जा ग्रहण करता है। वास्तव में आधुनिक भारतीय साहित्य और विशेषतः हिंदी

साहित्य के भीतर की जो वैचारिक एवं जागरणमयी चेतना है उसका श्रेय इन्हीं सब जीवन दृष्टियों को जाता है। आर्थिक, सामाजिक, शैक्षिक, राजनैतिक एवं साहित्यिक स्तर पर जो विद्वान चिंतनरत थे तथा जो संस्थाएँ मार्ग–दर्शन के कार्य में दत्त–चित्त थीं उन सभी का विश्लेषण इस इकाई में किया जा रहा है।

इससे पहले कि इकाई में आप आधुनिक युग की प्रमुख परिस्थितियों का विवेचन कर चुके हैं। पहले आपने यह भी देखा कि राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियाँ 'साहित्य–भूमि' तैयार करने में अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। इस इकाई में उन परिस्थितियों से तैयार हो रही मानसिकता तथा उनकी जीवन दृष्टि को स्पष्ट करने का प्रयास किया जा रहा है। उल्लेखनीय है कि विदेशी वादों एवं जीवन दृष्टियों का भी भारतीय आधुनिक युग पर अत्यंत प्रभाव रहा। इस युग की आधुनिकता और अधुनातनता को पुष्ट करने वाली उन चिन्तन धाराओं की भूमिका एवं स्वरूप को भी इसी इकाई में स्पष्ट किया गया है। आइए अब हम आधुनिक युग के वैचारिक आधार को स्पष्ट करने वाली इस इकाई में सर्वप्रथम सामाजिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से मुखरित होती वैज्ञानिक पृष्ठभूमि की समीक्षा करें।

3.2 सामाजिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि

किसी भी बड़े या छोटे बदलाव के कुछ न कुछ कारण अवश्य होते हैं। आधुनिक हिंदी साहित्य में विगत तीन कालों की तुलना में देखें तो अनेक दिशाओं में यह परिवर्तन उजागर होते हैं। आर्थिक कारण तो बुनियादी परिवर्तनों के मूल में रहते ही हैं साथ ही सांस्कृतिक–सामाजिक एवं वैचारिक धरातल पर देश–विदेश का परस्पर आदान–प्रदान भी इसका महत्वपूर्ण कारण बनता है। भारत में भी अंग्रेजों की नीति ने हमारी स्वदेशी संस्कृति को अपनी विचारधाराओं से रंगने का पर्याप्त प्रयास किया। साथ ही हमारी अर्थव्यवस्था पर भी उनकी साम्राज्यवादी नीति ने अपना शिकंजा कस लिया।

सामान्यतः सन् 1857 से हम हिंदी साहित्य के आधुनिक काल की शुरुआत मानते रहे हैं किंतु यह भी सत्य है कि इस आधुनिकता के बीजवपन को सन् 1857 से लगभग 70–80 वर्ष पूर्व देखा जा सकता है। यह वह काल था जब ईस्ट इंडिया कंपनी ने नवाब सिराजुददौला को प्लासी की लड़ाई में हरा दिया था। सन् 1849 में सिक्खों को भी पराजित कर अंग्रेजों ने सम्पूर्ण भारत को अपने अधीन कर लिया था। अंग्रेजों के मद ने अब भारतीय अर्थव्यवस्था और संस्कृति पर आक्रमण करना प्रारंभ कर दिया था। अंग्रेज़ों की नीतियों से असंतुष्ट देशी राजाओं, सिपाहियों, किसानों ने एकजुट होकर 1857 ई. में व्यापक स्तर पर विद्रोह किया। अतः ब्रिटिश पूँजीवादी साम्राज्यवाद से टकराहट अब प्रारंभ हो चुकी थी। भारत जब ब्रिटिश साम्राज्य का उपनिवेश बना तब अंग्रेज़ों ने अपनी आर्थिक, शैक्षणिक तथा प्रशासनिक नीतियों में परिवर्तन किया। आधुनिक जीवन चेतना ने साहित्य को मनुष्य जीवन के सुख–दुख से जुड़ने के लिए प्रेरित किया। परिणामतः जीवन चेतना की ये चिन्गारियाँ गद्य और पद्य दोनों में उठने लगीं। नया युग अपनी इस नई अभिव्यक्ति के लिए नई भाषा खोज ही रहा था। परिणामतः खड़ी बोली का आगमन हुआ और उसी ने आधुनिक विचारधारा को वहन कर महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। यों ब्रजभाषा का प्रयोग भी पद्य में चलता रहा पर उसमें पुरानी संवेदनाएँ ही अभिव्यक्ति पाती रहीं। खड़ी बोली गद्य एवं पद्य ने आधुनिक युग की नई चेतना एवं नई संवेदना को मुखर किया। यह चेतना आर्थिक, शैक्षिक, यातायात एवं मुद्रण आदि के परिप्रेक्ष्य में देखी भी जा सकती है।

3.2.1 नया आर्थिक ढाँचा

अंग्रेजी शासन से पूर्व भारत के गाँवों का आर्थिक ढाँचा प्रायः अपरिवर्तनशील तथा स्थिर था। गाँव अपने आप में स्वतः पूर्ण आर्थिक इकाई थे। गाँवों की अपरिवर्तनशीलता को लक्ष्य करके सर चार्ल्स मेटकाफ ने लिखा है– 'भारतीय गाँव छोटे–छोटे गणतंत्र थे। उनकी आवश्यकताएँ गाँव में ही पूरी हो जाया करती थीं और उनका बाहरी संसार से कोई संबंध नहीं था। एक के बाद दूसरे राजवंश आये, एक के बाद दूसरे उल्ट फेर हुए, हिन्दू, पठान, मुगल, सिक्ख और मराठों के राज्य बने बिगड़े पर गाँव वैसे के वैसे रहे।

गाँव की जमीन पर सबका समान अधिकार होता था। किसान खेती करता था। गाँव की अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति बढ़ई, लुहार, कुम्हार, धोबी, नाई, तेली आदि करते थे। जाति के आधार पर पेशा निश्चित नहीं हुआ करता था और एक जाति का व्यक्ति दूसरी जाति के व्यक्ति का पेशा नहीं कर सकता था क्योंकि उसके लिए वह स्वतंत्र नहीं होता था।

गाँव और नगर अपनी–अपनी इकाइयों में पूर्ण तथा एक–दूसरे से असम्बद्ध थे। मुख्य रूप से नगर के प्रकार थे– राजनीतिक महत्व के नगर, धार्मिक महत्व के नगर और व्यावसायिक महत्व के नगर। प्रायः नगरों में मूल्यवान वस्तुओं का निर्माण होता था। नगरों का उद्योग सामान्य वस्तुओं का निर्माण नहीं करता था। गाँव का घरेलू उद्योग बिल्कुल अलग था और नगरों का अलग। दोनों की अपनी–अपनी दृढ़ इकाइयाँ थीं।

अंग्रेज व्यापारी थे, उनका मुख्य उद्देश्य अधिक से अधिक धन कमाना था। यहाँ के उद्योग–धंधों को नष्ट करने के लिए हर तरह के हथकण्डों को अपनाया क्योंकि बिना इसके भारत में अपने व्यापार का एक छत्र राज्य स्थापित कर पाना कठिन था। जो कुछ उद्योग धंधे बच गए थे, वे नई सामाजिक व्यवस्था के कारण स्वयं नष्ट हो गए। अंग्रेज यहाँ से कच्चे माल माटी के मोल ले जाते और अपने देश से पक्का माल बनाकर फिर भारत में ऊँची कीमत पर बेचते। इस प्रकार भारत की धन–संपत्ति को ले जाते तथा भारत को आर्थिक दृष्टि से इंग्लैंड पर निर्भर बना देना चाहते थे।

भारत में अंग्रेजों के द्वारा जो आर्थिक ढाँचे में परिवर्तन आया, उसमें भी उन्हीं का नाम था। उन्होंने गाँव की आर्थिक व्यवस्था में रद्दोबदल किया। गाँव की जमीन का बन्दोबस्त करके उन्होंने गाँव के लोगों को दो वर्गों–जमींदार और किसान–में विभाजित कर दिया। जमींदारी प्रथा 1793 में लार्ड कार्नवालिस ने लागू की, क्योंकि इससे उन्हें थोड़े से ही लोगों से मालगुजारी मिल जाती। कहने का अर्थ यह है कि जमींदारी पद्धति ने किसानों के शोषण का एक नया मार्ग प्रशस्त किया। किसान मेहनत करता और जमींदार लगान, नज़राना, जुर्माना आदि के नाम पर कमाई का बड़ा हिस्सा हड़प कर जाता। किसान अपना गुजारा चलाने के लिए साहूकार की शरण में जाकर फँस जाता क्योंकि वह मनमानी शर्तों और ब्याज पर ऋण देता। इस प्रकार किसान की स्थिति सदैव सोचनीय बनी रही। गाँव को दो इकाईयों में बाँट कर यानी ज़मींदार और किसान, अंग्रेजों ने गाँव की स्वाधीनता को नष्ट किया और उसे लूटा तथा महाजनी सभ्यता का जाल फैला दिया।

1820 से सर टामस मुनारो ने इस्तमारी बन्दोबस्त लागू करके ज़मीन को व्यक्तिगत संपत्ति के रूप में बदल दिया। अब ज़मींदार और जोतदार दोनों ही जमीन का क्रय–विक्रय कर सकते थे। ज़मीन के व्यक्तिगत सम्पत्ति हो जाने पर खेती का व्यावसायिक हो जाना स्वाभाविक था। कृषि का उत्पादन यातायात की सुविधा के कारण शहरों में जाने लगा और खेती में उन्हीं वस्तुओं का उत्पादन अधिक किया जाने लगा जो व्यावसायिक दृष्टि से अधिक लाभप्रद थी किन्तु फिर भी किसानों की स्थिति आर्थिक दृष्टि से सुधारने की बजाय बिगड़ती

ही गयी क्योंकि किसान जमींदार और महाजन दो पाटों के बीच पिसता रहा एवं अंग्रेज समय–समय पर मालगुजारी की दर में भी वृद्धि करते रहते थे। किसानों की दयनीय स्थिति का उल्लेख भारतेंदु कालीन साहित्यकारों के साहित्यों में मिलता है।

भूमि के व्यक्तिगत सम्पत्ति बन जाने और उत्पादन वितरण के ढंग बदल जाने से सामूहिक कृषि करने का ढंग नष्ट हो गया और सम्बन्धों की रागात्मकता टूटने लगी। प्रत्येक व्यक्ति के अपने–अपने स्वार्थ सामने आये तथा अब अर्थ पर टिका हुआ स्वार्थ आत्मपरक हो गया। यहाँ से पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में घटिया स्वार्थ का जन्म होता है।

अंग्रेजी सरकार की इस नयी व्यवस्था से जनता को घोर संकट का सामना करना पड़ा क्योंकि खेत अनेकानेक टुकड़ों में बँट गए और किसान तथा सरकार के बीच बहुत से मध्यस्थ हो गये। इसका प्रभाव पैदावार पर पड़ा और वह दिन–ब–दिन घटती गयी। खेती पर अंग्रेजों की व्यापार नीति के कारण, बहुत बोझ आ पड़ा, क्योंकि जो उद्योग धंधे अंग्रेजों ने नष्ट कर दिए थे, उनके कार्यकर्ता और कारीगर भी खेती पर ही आश्रित हो गए। नगरीय उद्योग भी अंग्रेजों की कृपा काल–कवलित हो गए। नगरों में भी पूँजीपति वर्ग मध्यवर्ग और श्रमिक वर्ग ने जन्म लिया।

पुरानी अर्थव्यवस्था के स्थान पर जिस नयी अर्थव्यवस्था को लागू किया गया उससे जाने–अनजाने ही भारतीय किसान भी विकास की ओर अग्रसर हुआ। गाँवों की जड़ता टूटी, गाँव और नगर में सम्पर्क स्थापित हुआ। घेरे में बंधी हुई अर्थव्यवस्था राष्ट्रोन्मुख हो चली तथा जो देश केवल धार्मिक एकता में बंधा हुआ था अब राष्ट्रीय एकता की ओर जागरूक होने लगा। इससे जाति प्रथा की जड़ता को तोड़ा तो नहीं जा सका, किन्तु जाति प्रथा शिथिल अवश्य हुई।

3.2.2 नयी शिक्षा प्रणाली

भारतवर्ष का अठारहवीं शताब्दी के अंत में जिस पाश्चात्य शिक्षा प्रणाली से सम्पर्क हुआ, वह भारत के ज्ञान–विज्ञान से प्रकृति से ही बिल्कुल भिन्न थी। भारतीय ज्ञान मतानुगतिका और परम्परायुक्त था जबकि पाश्चात्य ज्ञान–विज्ञान नए जीवन संदर्भो की ताजगी लिए हुए था। भारतीय ज्ञान–विज्ञान का प्रमुख लक्ष्य आध्यात्मिक और पारलौकिक था तथा पाश्चात्य ज्ञान–विज्ञान का लक्ष्य भौतिक और इहलौकिक था। भारत में विद्या वर्ग विशेष अथवा जाति विशेष तक सीमित थी किन्तु पाश्चात्य विद्या सर्व सुलभ थी।

भारतवर्ष ने अतीत में दर्शन, ज्योतिष, औषधि विज्ञान, गणित, धर्मशास्त्र, व्याकरण इत्यादि क्षेत्रों में अभूतपूर्व उन्नति की थी किन्तु अंग्रेजों के आगमन के समय भी उन्हीं को दुहराया जा रहा था। एक प्रकार से नयी उद्‌भावनाओं का मार्ग अवरुद्ध सा हो गया था क्योंकि भारतीय वेदादि की आप्तता, वर्णाश्रम धर्म की श्रेष्ठता, इहलौकिकता के प्रति अनासक्ति भाव यथा स्थिति बनाये रखने के पक्षधर थे। हालांकि उनकी उपयोगिता पर नयी परिस्थितियों ने प्रश्न चिन्ह लगा दिया था। यहाँ तक कि मुसलमानों में भी हिन्दुओं की ही भांति गतानुगतिका घर कर गयी थी।

मैकाले ने भारत की शिक्षा पद्धति पर टिप्पणी करते हए लिखा है–'हिन्दुओं और मुसलमानों की शिक्षा पद्धतियों में बहुत कुछ समानता थी। वे उस भाषा में शिक्षा देते थे जो जनता की भाषा नहीं थी। उनकी शिक्षा का मूल स्रोत धर्म था और उसकी आप्तता अपरिवर्तनीय थी। वे नए अभिनिवेश और परिवर्तन के विरुद्ध थे।' यह शिक्षा पद्धति अपने धर्म के प्रति केवल कट्‌टरता की भावना को दृढ़ करती थी न कि स्वतंत्र व्यक्तित्व और विवेक सम्मत दृष्टि का

निर्माण। आधुनिक शिक्षा प्रणाली में जो भी कमियाँ रही हों किन्तु आधुनिकता की दिशा में एक गत्यात्मक प्रयत्न मानना ही चाहिए। इसके प्रचार–प्रसार में मुख्यतः इसाई मिशनरियाँ, अंग्रेज सरकार और व्यक्तियों के प्रयासों का विशेष योगदान है।

यों तो ईसाई मिशनरी, भारत के दक्षिणी प्रदेशों में ब्रिटिश राज्य की स्थापना से बहुत पहले ही, धर्म प्रचार का कार्य कर रही थी किन्तु उनका शिक्षा से कोई सम्बन्ध न था। जब 1758 ई. में डेविश मिशन कलकत्ता में आया और फिर 1893 ई. में मिशनरियों का दूसरा महत्वपूर्ण दल कलकत्ता में आया तो कैरे और उसके दो सहयोगियों ने जो मिशन से सम्बद्ध थे, नये बंगाल के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। बंगला गद्य साहित्य की नींव डालने वाले लोगों में कैरे का नाम विशेष रूप से लिया जाता है। ईस्ट इंडिया कम्पनी ने 1813 ई. में एक नया चार्टर स्वीकार किया जिसके अनुसार शिक्षा तथा अन्य उपयोगी कामों के लिए अनुदान देने की व्यवस्था की गयी। इस सम्बन्ध में अलेक्ज़ेन्डर डफ का उल्लेख करना आवश्यक है। क्योंकि डफ का कम्पनी के अधिकारियों पर विशेष प्रभाव था और वह धर्म प्रचार अंग्रेजी शिक्षा के माध्यम से चाहता था। अतः अनेक अंग्रेजी स्कूल और कालेज खोले गए।

ईसाई मिशनरियों ने अपने धर्म प्रचारार्थ हिन्दुओं और मुसलमानों के धर्मों पर निस्संकोच आक्रमण किया तथा उनकी निन्दा भी की एवं समस्त मिशनरी स्कूलों में ईसाई धर्म की शिक्षा अनिवार्य की। उनका विश्वास था कि प्रत्येक अध्यापक विज्ञान और गणित पढ़ाते हुए प्रकारान्तर में भारतीय धर्मों को तोड़ने में सहायता करता है। यद्यपि उनकी यह धारणा निर्मूल सिद्ध हुई।

धीरे–धीरे मिशनरियों ने यह महसूस किया कि जन साधारण में धर्म प्रचार के लिए उनकी भाषा अर्थात् जन भाषा की आवश्यकता है और कैरे, ब्राउन, नेवलिन, स्किनर, बैले आदि ने भारतीय भाषाओं में बाइबिल का अनुवाद किया एवं स्कूलों में पढ़ाने के लिए उन्हें पाठ्य पुस्तकें लिखनी पड़ी, जिनमें बंगला, हिन्दी, मराठी, गुजराती आदि भारतीय भाषाओं को विशेष महत्व मिला। इन पाठ्य पुस्तकों में भारतीय धर्म, पुराण इत्यादि को भी विवरणात्मक गद्य में प्रस्तुत किया। स्त्री शिक्षा के प्रचार–प्रसार में भी उन्होंने महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। कहने का तात्पर्य यह है कि अपनी तमाम विकृतियों के बावजूद मिशनरियों ने लोगों को अंग्रेजी शिक्षा की ओर आकृष्ट किया एवं उनकी कई दृष्टियों से उपयोगिता भी सिद्ध हुई। इस भाषा के माध्यम से अंग्रेज व्यापारियों को विशेष लाभ हुआ। अब उन्हें भारतीय व्यापारियों से विचार विनिमय में काफी सुविधा होने लगी। अंग्रेजी जानने वाले लोगों को विदेशी फर्मों और कम्पनी के प्रशासन में नौकरी मिल जाती थी।

सन 1780 में वारेन हैस्टिंग्स ने मुसलमानों को प्रसन्न करने की दृष्टि से कलकता मदरसा खोला और हिन्दुओं के तुष्टीकरण के लिए 1791 ई. में बनारस के रेज़ीडेन्ट ने बनारस में संस्कृत कॉलेज की स्थापना की। कलकत्ता में फोर्ट विलियम कॉलेज की 1801 ई. में कम्पनी के सिविल सर्वेन्ट्स को अंग्रेजी शिक्षा देने के लिए की गयी थी कि उसमें भारतीय अध्यापकों की नियुक्ति देशी भाषा में पाठ्य पुस्तकें और व्याकरण तैयार करने के लिए की गयी। इससे जो विशेष लाभ हुआ वह यह कि भारतीय भाषाओं में गद्य लेखन को प्रोत्साहन मिला। 1823 में कंपनी ने लोक शिक्षा समिति का गठन किया। इस समिति को लोक शिक्षा के संबंध में सुझाव देना था। समिति में दो विचारधारा के सदस्य थे–एच.एच. विल्सन और एच.टी. प्रिंस प्राच्य भाषाओं के समर्थक थे। कलकत्ता के मदरसे और बनारस के संस्कृत कॉलेज का उन्होंने पुनर्गठन किया। एजूकेशन प्रेस की स्थापना 1828 ई. में कलकत्ता में की एवं इससे संस्कृत और अरबी की पुस्तकें छपने लगीं। किन्तु जब मैकाले 1834 ई. में भारत आया तो प्राच्य शिक्षा विरोधियों को काफी बल मिला। मैकाले संस्कृत, अरबी और फारसी का कट्टर

विरोधी था। उसने लार्ड बैंटिक को सुझाव दिया कि संस्कृत, अरबी और फारसी की शिक्षा को बन्द कर दिया जाये। लार्ड बैंटिक ने मैकाले के प्रतिवेदन को स्वीकार तो किया किन्तु संस्कृत, अरबी, फारसी मदरसों को दिए जाने वाले अनुदान को तो बन्द नहीं किया लेकिन प्राच्य विद्या के विद्यार्थियों को दी जाने वाली छात्रवृत्ति को समाप्त कर दिया एवं संस्कृत, अरबी और फारसी की पुस्तकों को छापना जारी कर दिया। बैंटिक की पाश्चात्य शिक्षा की संस्कृति ज्यों की त्यों उसे मान्य थी। 1844 में हार्डिंग्ज का घोषणा–पत्र प्रकाशित हुआ कि नौकरियाँ अंग्रेजी पढ़े–लिखे लोगों को दी जायें। इससे अंग्रेजी के प्रसार में काफी सफलता मिली।

शिक्षा समिति के सम्मुख इस समय प्रमुख रूप से दो प्रश्न आये–शिक्षा का माध्यम और जनता में शिक्षा का प्रचार–प्रसार। शिक्षा के माध्यम के सम्बन्ध में तीन विकल्प थे (1) माध्यमिक और विश्वविद्यालय का माध्यम अंग्रेजी हो, (2) संस्कृत, अरबी, फारसी हो, (3) बोलचाल की भाषा–हिन्दी, मराठी, बंगला, उर्दु, गुजराती आदि हो। चार्ल्स ग्रांट और मैकाले ने पहले मत का समर्थन किया और अंग्रेजों में विल्सन तथा शेक्सपियर जैसे व्यक्तियों ने देशी भाषा की उपयोगिता का समर्थन किया। शिक्षा समिति के भारतीय सदस्य जगन्नाथ सेठ ने 1847 ई. में शिक्षा माध्यम के सम्बन्ध में लिखा है–'यदि हमारा उद्देश्य भारतीय जनता का ज्ञानवर्धन और उनके मस्तिष्क का परिष्कार करना है तो हमें उनकी अपनी भाषा में शिक्षा देनी चाहिए। स्त्री–शिक्षा के लिए और दूसरा कौन सा उपाय हो सकता है? मैं अंग्रेजी के अध्ययन को हतोत्साहित नहीं करना चाहता, किन्तु मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि यह शिक्षा भारतीय जनता के अभिगम के बाहर है।' लेकिन अंग्रेज अधिकारियों पर इसका तनिक भी प्रभाव नहीं पड़ा और अन्त में अंग्रेजी उच्च शिक्षा का माध्यम स्वीकार कर ली गयी।

1853 में ब्रिटिश संसद ने भारत में स्थायी शिक्षा नीति निर्धारित करने के लिए एक संसदीय समिति का गठन किया जिसके फलस्वरूप 1854 ई. में वुड घोषणा–पत्र जारी किया गया। उसके अनुसार जन समूह को शिक्षित करने का प्रयास शुरू हुआ। विश्वविद्यालयों की स्थापना हुई और प्राथमिक तथा माध्यमिक शिक्षा को प्रोत्साहन मिला। प्रत्येक प्रांत में शिक्षा विभाग स्थापित किए गए जिससे शिक्षा को एक सामान्य स्तर पर प्रतिष्ठित करने में सुविधा हुई।

उत्तर भारत (विशेषकर–उत्तर प्रदेश और बिहार) में लोग अंग्रेजी शिक्षा की ओर उन्मुख नहीं हुए क्योंकि इसका सम्बन्ध इसाई मिशनरियों से था, जिसे लोग शंका की दृष्टि से देखते थे। पटना (बिहार) के स्कूलों के इन्स्पेक्टर जनरल के दफ्तर को शैतान का दफ्तरखाना कहते थे। उत्तर प्रदेश में अनेक अंग्रेजी स्कूल खोले गये किन्तु विशेष प्रगति नहीं हुई।

जब हम नवीन शिक्षा पद्धति के लेखा–जोखा का अवलोकन करते हैं तो हमें अन्तर्विरोध मिलता है। इसाई मिशनरियाँ शिक्षा के माध्यम से लोगों को इसाई बनाकर पुण्य लूटने के चक्कर में थीं तो अंग्रेज सरकार को अपने दफ्तरों के लिए सस्ते देशी बाबुओं की आवश्यकता थी जिससे उनका प्रशासन और व्यवसाय निर्बाध गति से चल सके एवं देश के उत्साही व्यक्तियों की दृष्टि में भी सामान्यतः रोजी–रोटी का प्रश्न प्रमुख था।

लेकिन हमें यह स्वीकार करना ही होगा कि नवीन शिक्षा पद्धति से धर्मनिरपेक्ष दृष्टिकोण बना जो धार्मिक रूढ़ियों से मुक्त होने के कारण तर्क–सम्मत और इहलौकिक हो सका तथा वैयक्तिक स्वतंत्रता इसकी दूसरी उल्लेखनीय देन है। आश्रम धर्मी घेरे बन्दी से बाहर निकल कर व्यक्ति के अपने निर्णय को अहमियत मिली। मध्यकालीन धार्मिक कथाओं को विश्वसनीय बनाने एवं आधुनिक युग की समस्याओं को जोड़ने के मूल में यह प्रवृत्ति क्रियाशील थी।

3.2.3 मुद्रणालयों की भूमिका

भारत में मुद्रण यंत्र स्थापित करने का श्रेय पुर्तगालियों को है। 1550 ई. में उन्होंने दो मुद्रण यंत्र मंगवाकर धार्मिक पुस्तकों को छापना शुरू किया और 1674 ई. में ईस्ट इंडिया कम्पनी द्वारा बम्बई में मुद्रणालय की स्थापना की गयी। 18वीं शताब्दी में कलकत्ता, हुगली, मद्रास आदि स्थानों पर छापाखाने खोले गए। सर्वप्रथम भारत के संदर्भ में यंत्र निकालने की पहल राजा राममोहन राय ने की और 1821 में 'सम्वाद कौमुदी' का प्रकाशन शुरू किया। श्रीरामपुर मिशन के तत्वाधान में दो पत्र–'समाचार दर्पण' और 'दिग्दर्शन' प्रकाशित हुए। फारसी भाषा में दो पत्र–'जाम–ए–जहाँ–नुमाँ' और 'मीरत–उल–अखबार'–निकाले गए। बम्बई में फरदून जी मर्जबान ने गुजराती प्रेस खोला और 1822 में 'बम्बे समाचार' प्रकाशित हुआ। द्वारिका नाथ टैगोर, प्रसन्न कुमार टैगोर और राजाराम मोहन राय जैसे समाज सुधारकों ने 'बंगदूत' (1830 ई.) पत्र की नींव डाली। केवल इतना ही नहीं बल्कि 1830 ई. के अन्त तक कलकत्ता में बंगला भाषा में दैनिक, अर्ध साप्ताहिक, साप्ताहिक, त्रिसाप्ताहिक और मासिक पत्र प्रकाशित होने लगे।

पं. जुगलकिशोर शुक्ल के सम्पादकत्व में 'उदण्ड मार्तण्ड' हिन्दी का पहला पत्र 1826 में कलकत्ता से प्रकाशित हुआ। कलकत्ता से ही 1834 ई. में 'प्रजामित्र' और 'दैनिक हिन्दी पत्र सुधा वर्षणा' श्यामसुन्दर सेन के सम्पादकत्व में प्रकाशित हुआ। 19वीं शती के उत्तरार्द्ध तक देश में अनेक पत्र–पत्रिकाओं का प्रकाशन होने लगा। इससे देश में नये विचारों के आदान–प्रदान में सुविधा हो गयी। सामाजिक रुढ़ियों के विरोध में पत्रों का उपयोग किया गया तथा विदेशी सरकार की उन कार्यवाहियों का विरोध किया गया जो देश के हित में न थी। छापाखानों से वैज्ञानिक दृष्टिकोण और राष्ट्रीयता के प्रचार–प्रसार में अत्यधिक सहायता मिली। भारतीय नवजागरण के लिए प्रेस वरदान सिद्ध हुआ। छापाखाने से सांस्कृतिक, सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक विचारों के प्रचार–प्रसार की सुविधा ही नहीं हुई प्रत्युत समाचार पत्रों के माध्यम से विचारों का आदान–प्रदान भी होने लगा।

इस नवयुग ने मुद्रण का जो बड़ा माध्यम हमें दिया इसने साहित्यकारों को प्रसिद्धि का स्वर्णिम अवसर प्रदान किया। छापाखाने के कारण साहित्य में वैयक्तिकता की भावना को बल मिला। जन रुचि के आकर्षण ने साहित्य को जन–जीवन के निकट ला दिया। भारतेन्दु युग में शायद ही कोई साहित्यकार ऐसा रहा हो जिसका किसी न किसी पत्र–पत्रिका से संबंध न रहा हो। इन पत्र–पत्रिकाओं में शुद्ध साहित्य ही नहीं छपता था बल्कि समसामयिक समस्याओं पर भी प्रकाश डाला जाता था। पत्र–पत्रिकाओं द्वारा एक–दूसरे की समस्याओं को समझना, उनको सुलझाना और उनको लेकर नयी–नयी वैचारिक भूमियों को तैयार करना। इस प्रकार जहाँ पत्र–पत्रिकाएँ जन तांत्रिक भावनाओं का पोषण कर रही थीं। वहीं दूसरी ओर समाज की रूढ़ियों पर भी प्रहार करती हुई राष्ट्रीय चेतना के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही थी। वस्तुतः आधुनिक काल के साहित्य में जो हमें वैविध्य, वैयक्तिक कल्पना–छवियाँ, बौद्धिकता, प्रयोगात्मकता आदि दिखायी पड़ती है इसका आंशिक दायित्व प्रेस पर ही है। छापाखाने के अभाव में अभिरुचियों और संवेदनाओं का आकलन बहुत ही कठिन था, केवल इतना ही नहीं प्रत्युत साहित्य और कला सम्बन्धी वादों, आन्दोलनों आदि को रूपायित करने में छापाखानों का विशेष योग है।

3.2.4 यातायात की स्थिति एवं विकास

19वीं शती में रेल, बस, जलयान (स्टीम शिप) इत्यादि यातायात के साधनों से यातायात में काफी परिवर्तन आया और संसार सिमट कर छोटा हो गया तथा इससे लोगों में राष्ट्रीयता

और वैचारिक एकता की भावना भरने में सहायता मिली। इससे संकीर्ण भावना को कुछ हद तक समाप्त करने में भी सहायता मिली।

किसी भी राष्ट्र के आर्थिक विकास में यातायात का विशेष योग होता है। इंग्लैंड की औद्योगिक क्रांति से वहाँ के उद्योगपतियों के सामने यह समस्या थी कि वे अपने उत्पादन की खपत कहाँ करें तथा कारखानों के लिए कच्चा माल कहाँ से लायें? भला उन्हें भारत से अच्छा बाजार कहाँ मिलता। अतः उन्होंने ईस्ट इंडिया कम्पनी की सरकार से भारत में रेलवे की स्थापना और सड़क निर्माण के लिए अनुरोध किया। लार्ड डलहौजी रेल निर्माण योजना रेलवे की स्थापना का अगुआ माना जाता है। उसने इसके मूल में निहित आवश्यकताओं का उल्लेख स्वयं किया है कि अंग्रेजों को आर्थिक लाभ के अलावा बाहरी आक्रमणों और आंतरिक विद्रोहों से अपनी सुरक्षा करने की ओर के लिए. आवागमन की ओर विशेष ध्यान देना पड़ा। कहने का तात्पर्य यह है कि आधुनिक युग में सांस्कृतिक, धार्मिक और राजनीतिक विकास के लिए यातायात के साधनों के विकास के लिए नहीं किया गया बल्कि अंग्रेजों ने अपने स्वार्थ के लिए सड़कों और रेलों का निर्माण किया था। हाँ इससे अनचाहे भारतीयों को भी लाभ मिला।

बोध प्रश्न– 1

1. नीचे कुछ विषय दिए गए हैं। प्रत्येक को लगभग दस पंक्तियों में स्पष्ट कीजिए–

   i) नया आर्थिक ढाँचा ....

   ....

   ....

   ....

   ....

   ii) नई शिक्षा प्रणाली ....

   ....

   ....

   ....

2. मुद्रणालयों की आधुनिक युग के वैचारिक–आधार को प्रभावित करने में क्या भूमिका रही? दस पंक्तियों में स्पष्ट कीजिए–

   ....

   ....

   ....

   ....

   ....

   ....

   ....

   ....

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

3. यातायात की स्थिति ने वैचारिक आधार की समृद्धि में क्या भूमिका निभाई ? लगभग पाँच पंक्तियों में स्पष्ट कीजिए।

....

....

....

....

....

....

4. नीचे लिखे वाक्यों में से एक वाक्य सही है (अ) का निशान लगाकर बताइये कौन सा वाक्य सही है?

अ) 1) अंग्रेजों की नयी आर्थिक नीति से गाँवों की आर्थिक दशा में सुधार हुआ।

2) अंग्रेजों की नयी आर्थिक नीति से गाँवों के लोगों के संबंधों की रागात्मकता टूटी।

3) नयी आर्थिक नीति से गाँव का आर्थिक ढाँचा अपरिवर्तनशील हो गया।

4) जमींदारी प्रथा से किसानों को लाभ हुआ।

ब) निम्नलिखित वाक्यों में से एक वाक्य सही है (अ) का निशान लगाकर बताइये वह कौन सा वाक्य है ?

1) नयी शिक्षा प्रणाली से विद्या वर्ग–विशेष की संपत्ति हो गयी।

2) नयी शिक्षा प्रणाली से भारत की धर्मनिरपेक्षता को हानि पहुँची।

3) अंग्रेजों की शिक्षा प्रणाली से आधुनिकता की दिशा में गत्यात्मकता आयी।

4) नयी शिक्षा प्रणाली से जन–भाषा की उन्नति हुई।

स) निम्नलिखित वाक्यों में से एक वाक्य सही है उसे (अ) के निशान से चिन्हित कीजिए

1) मुद्रणालय के प्रचार से वैज्ञानिक दृष्टिकोण और राष्ट्रीयता को बलमिला।

2) मुद्रणालय के आगमन से साहित्य में वैयक्तिकता का हास हुआ।

3) छापाखाना के प्रचार से अनेक पत्र–पत्रिकाओं के प्रकाशन से एक दूसरे को समझने की समस्याएँ बढ़ गयीं।

4) हिन्दी का प्रथम पत्र दिल्ली से प्रकाशित हुआ।

3.3 पाश्चात्य जीवन–दृष्टियाँ

आधुनिक युग भारत में ही नहीं विदेशों में भी अनेक आंदोलनों, परिवर्तनों एवं विविध विचारधाराओं का युग माना जाता है। इस अवधि में एक ओर तो सामाजिक आर्थिक, सांप्रदायिक और सांस्कृतिक क्षेत्रों में अनेक आंदोलन हुए, वहीं दूसरी तरफ रचनात्मक तथा

आलोचनात्मक साहित्य के क्षेत्र में भी विविध विचारधाराओं का आविर्भाव और विकास हुआ। प्रथम एवं द्वितीय विश्व युद्ध के गंभीर परिणाम, भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के विविध रंग, युद्ध–शांति के लिए किए गए प्रयास, सभी को साहित्य गद्य एवं पद्य विधाओं में सहज ही अभिव्यक्ति पाते देखा जा सकता है। गद्य की अनेकों विधाओं जन्म, प्रचार–प्रसार, लोकप्रियता तथा पद्य की लोक–जीवन एवं जन–जन की समस्याओं को अभिव्यक्त करने की क्षमता इसी युग में उभरकर सामने आई।

वास्तव में साहित्य की इन धाराओं, विधाओं एवं चेतनाओं को जिन–जिन दृष्टियों, विद्वत मतों, संस्थाओं तथा वैचारिक धरातलों ने प्रभावित किया या उनके लिए एक उर्वर–भूमि तैयार की उनमें पाश्चात्य देशों की विविध विचारधाराओं अथवा सिद्धांतवादों की भी महत्वपूर्ण भूमिका रही। यहाँ हम इन विद्धांतवादों पर भी संक्षिप्त चर्चा कर लें तो उचित होगा।

3.3.1 आदर्शवाद

आदर्शवादी सिद्धांत का उद्देश्य मनुष्य की बौद्धिक, आध्यात्मिक तथा नैतिक क्षेत्रों में उन्नति करना है। यों आदर्शवादी विचारधारा भारतीय साहित्य के क्षेत्र में बहुत प्राचीन काल से ही विद्यमान रही है। विदेशी साहित्य में भी आदर्शवादी विचारधारा ने पर्याप्त लोकप्रियता हासिल की। प्राचीन यूनानी विचारकों में प्लेटो और अरस्तु आदर्शवादी चिंतक ही माने जाते हैं। आगे चलकर सर टामस सूर ने भी आदर्शवादी विचारधारा का ही प्रचार किया। रूसो ने भी एक आदर्श संस्था के रूप में राज्य को मनुष्य की बौद्धिक, आध्यात्मिक उन्नति का प्रमुख आधार माना। कांट ने विश्व संघ को शांति के लिए आदर्श संस्था बताया। इसी प्रकार जान फिटटे, हामबोल्ट, टी.एच. ब्रेडले तथा हीगेल आदि चिंतकों ने अपनी चिंतन पद्धतियों में बौद्धिक, नैतिक एवं आध्यात्मिक उन्नति को ध्यान में रखते हुए आदर्शवाद को ही मान्यता दी।

हिंदी में आदर्शवाद शब्द का प्रयोग 'आइडियालिज्म' के अर्थ में किया जाता है। हिंदी में उदान्त पर बल देना इसका प्रमुख लक्ष्य रहा है। संयम, त्याग और बलिदान इसकी प्रमुख भावनाएं हैं। इसमें आध्यात्मिकता का समावेश भी मिलता है। हिंदी में यह आदर्शवादी विचारधारा प्राचीन युग से ही रही है। कबीर, सूर, तुलसी आदि कवि मूलतः आदर्शवादी ही माने जाते हैं। इसी प्रकार प्रेमचंद, प्रसाद, मैथिलीशरण गुप्त तथा आचार्य रामचंद्र शुक्ल आदि साहित्यकार आदर्शवादी विचारधारा के ही पोषक माने जाते हैं।

3.3.2 अभिव्यंजनावाद एवं रूपवाद

आधुनिक युग की विशिष्ट चिंतनधाराओं में अभिव्यंजनावाद की भूमिका भी अत्यंत महत्वपूर्ण रही है। उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम वर्षों में इसके संकेत मिलने लगते हैं। प्रथम महायुद्ध के बाद जर्मनी साहित्य में तो इसका विशेष विकास देखा जा सकता है। अभिव्यंजनावाद के प्रमुख प्रवर्तक तो इटली के चिंतक क्रोचे माने जाते हैं। क्रोचे कला को सदैव आत्माभिव्यक्ति का एक रूप मानते हैं। क्रोचे ने अनेक उदाहरण देकर यह सिद्ध भी किया है कि कलात्मक अभिव्यक्ति साहित्य का सबसे महत्वपूर्ण तत्व है। अभिव्यंजनावाद का मुख्य सिद्धांत ही सौद्देश्य अभिव्यक्ति तथा मनोवैज्ञानिक आंतरिक स्थिति की उद्देश्यपूर्ण अभिव्यंजना पर बल देता है। क्रोचे कला में समानता और सौंदर्य तत्वों के कट्टर समर्थक रहे हैं। उनके अनुसार सौंदर्य किसी वस्तु का कोई गुण नहीं है अपितु सौंदर्य तो आत्मिक क्रियाशील के स्वभाव के रूप में उत्पन्न होता है। यही कारण है कि क्रोचे, हीगल, शापेनहावर तथा कोट आदि विचारक कला को ज्ञान का ही एक रूप मानते हैं। अभिव्यंजनावाद ने पाश्चात्य वैचारिक आंदोलनों को ही नहीं भारतीय साहित्यकारों तथा

साहित्यांदोलनों को भी प्रभावित किया। कला और साहित्य में विशुद्ध अभिव्यंजना को प्रधानता देने वाली यह विचार प्रणाली सौंदर्य शास्त्रीय आधार लेकर अपेक्षाकृत व्यापक पृष्ठभूमि पर साहित्य में प्रतिष्ठित हुई। अभिव्यंजना परिणामतः साहित्य और कला ही चरम परिणति सिद्ध हुई। हिंदी में आचार्य रामचंद्र शुक्ल तथा नंददुलारे वाजपेयी आदि समीक्षकों ने अपनी प्रतिक्रियाओं में अभिव्यंजनावाद पर बराबर विचार किया।

रूपवाद कला के बाह्य एवं आकार से सम्बद्ध होता है। इसे 'फार्मलिज़्म' का पर्याय माना जाता है। इसका आरंभ बीसवीं शताब्दी के दूसरे शतक में हुआ। इस सिद्धांत के विचारकों की स्थापना है कि कला में शिल्प का ही विशेष महत्व होता है। इनके अनुसार आधार या रूप किसी ऐसे उद्देश्य की विशेषता है जो अनुभव की गई हो। प्लेटो ने रूप को एक प्रकार का अनुकरण ही माना था। अरस्तू का मानना था कि रूप केवल आकार ही नहीं वरन् आकार का प्रदानकर्ता भी है। अतः रूप केवल रचना ही नहीं उसका आधार भी है। इनके अनुसार एक लेखक जब साहित्य सृजन का कार्य करता है तब बाह्य तत्वों से युक्त एक रूप तथा आकार वह उसे दे देता है। जो आकार वह अपनी कृति को देता है वह भाषागत होता है। पर इस सिद्धांत का युरोप में मार्क्सवादी विचारधारा ने बहुत विरोध किया। आधुनिक हिंदी साहित्य के क्षेत्र में भी यह विचारधारा अपना कोई उल्लेखनीय प्रभाव न छोड़ सकी।

3.3.3 अस्तित्ववाद

सोरेन कीकेंगार्ड (1813–1855) तथा फ्रीडरिख नीत्शे अस्तित्ववाद के जन्मदाता माने जाते हैं। कार्ल जेस्पर्श (1883), हेडेगर (1889) तथा गैब्रिल मार्शल (1889) ने इसे तर्कों के आधार पर प्रतिष्ठित किया। अस्तित्ववाद जीवन की सम्पूर्णता के माध्यम से परिवेश को जानने का सचेत प्रयास कहा जाता है। अस्तित्ववाद साहित्य का एक तर्कशास्त्र है, एक मनोविज्ञान है और इसे एक दर्शन कहा जा सकता है।

आधुनिक ज्ञान–विज्ञान ने मनुष्य को कुछ हद तक बुद्धिवादी बना दिया है। जर्मन दार्शनिक नीत्शे की घोषणा–ईश्वर मर गया–ने बौद्धिक जगत में एक क्रांतिकारी परिवर्तन ला दिया, यथार्थ का स्वरूप ही बदल गया। पुराने मूल्य विघटित हो गए और मनुष्य ने पाया कि वर्तमान परिस्थितियों में वह असहाय, क्षुद्र और निरर्थक प्राणी हैं। विज्ञान की प्रगति ने भी निश्चयवादी सिद्धांत को खोखला सिद्ध कर दिया। फ्लैक के क्वाटंम सिद्धांत और आन्स्टीन के सापेक्षवाद से सिद्ध हो गया कि न तो कोई सार्वभौम सत्य है और न ही शाश्वत नैतिकता। इस पर अस्तित्ववाद ने अपनी मुहर लगाकर और भी अधिक पुष्ट कर दिया।

अस्तित्ववाद ने अपने पूर्ववर्ती दर्शनों और विज्ञान की अमूर्तता पर आक्रमण किया तथा अपने ठोस अनुभवों एवं व्यक्ति के बुनियादी प्रश्नों के साथ जोड़ा। ये आधारभूत प्रश्न हैं–व्यक्ति की व्याग्रता, दुख, निराशा, अकेलापन, मृत्यु बोध, स्वतंत्रता, त्रास आदि। इसके साथ ही वह सामूहिकवाद और निश्चयवाद के विरुद्ध भी खड़ा हुआ। वह उन समस्त विचारों के विरुद्ध है जो व्यक्ति को अ–मनुष्य और अस्तित्वहीन बनाते हैं। उसकी दृष्टि में मनुष्य स्वतंत्र है–वह न वस्तु है और न ही मशीन, वह तो क्रियात्मक शक्ति है। वह स्वतंत्र निर्णय लेने में समर्थ है और उसके लिए स्वयं जिम्मेदार है। सात्र, कीर्केगार्ड आदि पर अस्तित्ववादी विचारों का गहरा प्रभाव पड़ा। आधुनिक चित्रकला भी इससे कम प्रभावित नहीं हुई। सेवा, बान गोग, पिकासो आदि पर इसका प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है। सातवें दशक में हिंदी साहित्य में अकविता, अकहानी, अनुपन्यास और अनाटक की जो चर्चाएं हुईं हैं उनके आधार पर लिखा गया साहित्य आज के अनिश्चय, व्यर्थता, अजनोवियत, अलगाव, अकेलेपन, आत्मनिर्वासन आदि को ही व्यक्त करता है।

3.3.4 मनोविश्लेषणवाद एवं अतियथार्थवाद

आधुनिक युग का वैचारिक आधार सुदृढ़ एवं समृद्ध करने में जिन पाश्चात्य विद्वानों की महत्वपूर्ण भूमिका रही उनमें फ्रायड भी एक हैं। फ्रायडीय मनोविश्लेषण के काम सिद्धांत को इस युग में बहुत मान्यता प्राप्त हुई। फ्रायड का मानना है कि समस्त कलाओं के मूल में दमित और अतृप्त काम भावना होती है। सामाजिक निषेध काम वृत्तियों की मुक्त अभिव्यक्ति को बाधित करते हैं। परिणामतः ये वृत्तियाँ कुंठित एवं दमित होकर अपनी एवं अचेतन मन में निहित रहती हैं और अपनी अभिव्यक्ति के अवसर खोजती रहती है। कला इन्हें यह अवसर प्रदान करती है। यह कुंठित काम मानव में छिपा रहता है सामान्यतया विभिन्न मानसिक रोगों एवं विकृतियों को जन्म देता है। कलाकार कला और उदात्त माध्यम से काम को उदात्त रूप दे देता है।

फ्रायड ने स्वप्न सिद्धांत की चर्चा करते हुए भी यही कहा कि स्वप्न दमित इच्छाओं की ही पूर्ति प्रत्यक्ष के प्रतीकात्मक रूप में करते हैं अवचेतन में निहित दमित कामनाएँ सामाजिक विषय की पहुँच से बाहर होने के कारण एक—एक कर विभिन्न रूपों में होने लगती हैं। मनोविश्लेषण शास्त्रियों ने इन कुंठित एवं दमित इच्छाओं की खोज करने के लिए 'फ्री एसोसिएशन' पद्धति को जन्म दिया जिसमें व्यक्ति को पूरी तरह पूर्ण विश्राम की अवस्था में रखकर उसके मन में उठने वाले सभी भावों और विचारों को ज्यों का त्यों उसी क्रम में प्रस्तुत कराया जाता है। इन प्रस्तुत तथा बिखरे हुए विचारों तथा असंबद्ध मनोविकारों का मानसिक विश्लेषण करते हुए उन मनोग्रंथियों को खोला जाता है। इसी प्रक्रिया से मानसिक रोगों का उपचार भी किया जाता है।

इस सिद्धांत को आगे बढ़ाने वालों में फ्रायड के बाद युंग, एडलर मैक्डूगल आदि मनोवैज्ञानिकों का नाम उल्लेखनीय है। इसी प्रकार फ्रेम, होने, सलीवन, कार्डीनर तथा मार्गरेट मीड आदि के नाम भी लिए जा सकते हैं। हिंदी में भी कविता तथा गद्य में जिस कुंठा और असंगत निरावृत श्रृंगारिकता को वाणी मिली वह इसी फ्रायडीय मनोविश्लेषण की देन है। यौन प्रतीकों, बिम्बों, स्वप्न प्रतीकों तथा चित्रों का खुला प्रयोग इस साहित्य में भी देखा जा सकता है। अज्ञेय, नरेश मेहता, यशपाल, जैनेन्द्र, इलाचंद्र जोशी तथा उपेन्द्रनाथ अश्क आदि की कहानियों, उपन्यासों कविताओं आदि साहित्य में इन मानसिक ग्रंथियों को आप देख भी सकते हैं। उग्र तथा मन्नू भंडारी की कहानियों में भी इसे देखा जा सकता है।

अतियथार्थवाद (सर्रीयलिज्म) फ्रायडीय मनोविश्लेषणवाद की ही परंपरा का अगला चरण है। प्रथम विश्व—युद्ध के पश्चात् जो यथार्थवाद साहित्य की दुनिया में फैल रहा था उसी की प्रतिक्रिया में अतियथार्थवाद एक नवीन रूप में विकासमान था। इसके प्रवर्तक चार्ल्स बॉदलेयर माने जाते हैं। इनसे पहले हाब्रीमान, आर्थन, रिबो तथा मेलार्मे आदि भी अतियथार्थवाद के समर्थक रहे हैं। सन् 1910 के बाद इस विशिष्टवाद ने खाली प्रसिद्धि प्राप्त की। सन 1930 के बाद यह आंदोलन फ्रॉंस के बाहर के देशों में भी फैला। इसकी नई व्याख्या उस सत्ता के रूप में की गई जो यथार्थ होते हुए भी दृष्टिगत न हो। आगे चलकर हरबर्ट रीड ने इसकी विस्तृत व्याख्या करते हुए इसे स्पष्ट भी किया। इसके उद्देश्यों में अवचेतन के यथार्थ का चित्रण प्रमुख रहा। इस सिद्धांत के समर्थकों ने बौद्धिक नियंत्रण की उपेक्षा करते हुए अभिव्यक्ति करने पर बल दिया तथा स्वतः लेखन को आदर्श माना। परिणामतः इस पद्धति में प्रतीकात्मक संकेतों की बहुलता हो गई। इस पद्धति ने मानसिक यथार्थ को तो स्वाभाविक वाणी प्रदान की परंतु वस्तु विषय की दृष्टि से नैतिकता और सौंदर्यवादी मूल्यों का ह्रास ही हुआ। शैली भी अस्पष्ट तथा छिन्न—भिन्न सी हो गई। प्रथम महायुद्ध की विभीषिकाओं का ही परिणाम था कि लेखक और कलाकार वस्तु जगत से

भागकर अवचेतन में शरण लेने लगा था। इस सिद्धांत ने भी हिंदी साहित्य के आधुनिक युग की एक पीढ़ी को बहुत प्रभावित किया। अज्ञेय तथा धर्मवीर भारती के साहित्य में इसे देखा जा सकता है। परंतु अपनी अनास्था और असामाजिकता के कारण यह भी अधिक समय तक न रूक सका।

3.3.5 मानवतावादी विचारधारा

साहित्य में मानववाद की भावना फ्रांसीसी दार्शनिक काम्ते के विचार दर्शन के प्रभाव स्वरूप विकसित हुई जिसका प्रभाव हिन्दी पर बंगला साहित्य के माध्यम से प्रतिफलित हुआ। लोक सेवा को ही ईश्वर सेवा समझा गया। काम्ते के मतानुसार धर्म का लक्ष्य जीवन में सामंजस्य लाना है, हृदय एवं मस्तिष्क दोनों को समानतया आलिंग्न में आबद्ध करने से यह सामंजस्य स्थापित हो सकता है। मानवता एक ऐसा धर्म है जो सभी मनुष्यों को संगठित करता है एवं 'आत्मात्सर्ग' उसका पथ–प्रदर्शक बन जाता है।

तत्कालीन युग में काम्ते का विधयवाद (पाजिटिविस्ट) दर्शन, भारत में काफी लोकप्रिय हुआ। हमारे देश के स्वतंत्रता आंदोलन के आरंभिक दिनों में हमारी राष्ट्रीय जागृति के लिए उसमें उपयुक्त विचारधारा थी अतः राजनीति में मानवतावाद को आधार बनाया गया इससे इसकी मान्यता और अधिक बढ़ गयी। अब जो राजनैतिक स्वतंत्रता का आंदोलन था, वह सामान्य जन–समुदाय को लेकर चला। अब बड़े–बड़े विचारक व्यापक दृष्टिकोण को लेकर सामाजिक अवस्था पर मनन करने लगे। महात्मा गांधी की समस्त क्रियात्मक योजनाएँ सामाजिक उत्थान के लिए बड़ी शक्तिशाली सिद्ध हुई। गांधी जी की मानवतावादी भावना ने निम्न स्तर के लोगों की सामाजिक दशा में बड़ा परिवर्तन ला दिया। उनकी मानवतावादी भावना के कई रूप मिलते हैं–अहिंसा, सत्याग्रह, राजनीतिक समानता, अछूतोद्धार, हिन्दू–मुस्लिम एकता, धार्मिक समन्वय, ग्रामोद्धार, जमींदारी का विरोध।

इस युग के महान विचारक, समाज सुधारक एव मानवतावाद के समर्थक विश्वकवि रवीन्द्रनाथ टैगोर थे उनकी कविता में मानवतावाद बड़े व्यापक रूप में अभिव्यक्त हुआ। उनकी मानवतावादी भावना के प्रमुख रूप–विश्व–संस्कृति, आध्यात्मिकता, अन्तर्राष्ट्रीयता, मानव–दुःख, निवारण और जाति भेद को मिटाने में तत्परता आदि हैं।

हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल के तृतीय उत्थान (1916–1936) में सामाजिक अवस्था का मुख्य रूप मानवतावादी भावनाओं में केन्द्रित है और कुरीतियों के निवारण के कुछ ठोस रूप दिखायी दिए। निर्धन और शोषित जैसे–कृषक, श्रमिक, अछूत आदि के प्रति सहानुभूति का प्रदर्शन मैथिलीशरण गुप्त, सियाराम शरण गुप्त, नारी के उत्थान का प्रयत्न रामनरेश त्रिपाठी, अयोध्यासिंह उपाध्याय, मैथिलीशरण गुप्त आदि की कविताओं में मिलता है। छायावादी कविता में मानवतावाद का विकास हुआ और इसमें विश्व बन्धुत्व की पुकार सुनाई पड़ी। छायावाद का सौंदर्यवाद मानवतावादी विचारधारा से अनुप्राणित है। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि मानव सेवा की ईश्वर सेवा के रूप में प्रतिष्ठित करने की भावना हिन्दी के रामनरेश त्रिपाठी, मुकुटधर पांडेय, जयशंकर प्रसाद मैथिलीशरण गुप्त, हरिऔध प्रभूति कवियों की कविताओं में व्यक्त हुई।

3.3.6 मार्क्सवादी विचारधारा

समाज के बुनियादी ढाँचे को बदलने में आर्थिक कारण सांस्कृतिक कारणों की अपेक्षा अधिक शक्तिशाली होते हैं। मार्क्सवाद एक भौतिक दर्शन है। सन् 1917 में रूसी क्रांति की सफलता को देखकर सोवियत संघ की नवीन शासन पद्धति और उसके मूल में काम करने वाले

मार्क्सवादी सिद्धांतों को जानने और समझने के लिए भारत के लोगों के मन में प्रबल उत्कंठा थी किन्तु उसके प्रवेश पर भारत में अंग्रेजी सरकार ने प्रतिबंध लगा रखे थे।

भारत में मार्क्सवादी विचारधारा के बीजारोपण का श्रेय काजी नज़रूल इस्लाम, मुजूज़फर अहमद (भारत में कम्यूनिस्ट पार्टी के संस्थापक) और गुलाम हुसैन को है। श्रीपाद अमृत डांगे ने 1921 में 'गांधी और लेनिन' शीर्षक से अंग्रेजी में पुस्तक लिखी और उसमें उन्होंने लेनिन का समर्थन किया। इससे प्रभावित होकर बम्बई के एक सपन्न नागरिक रणघोडदास लोटवाला ने श्री डांगे के सहयोग से एक लाख रुपये से मार्क्सवादी साहित्य के प्रकाशन और प्रचार के लिए एक संस्था स्थापित की। 1922 में श्री डांगे के संपादकत्व में 'सोशलिस्ट' नामक साप्ताहिक भी प्रकाशित हुआ।

हिन्दी जगत् में मार्क्सवादी विचारधारा से प्रभावित प्रथम निबंध लिखने का श्रेय श्री जनार्दन भट्ट को है। उन्होंने 1914 ई. में 'हमारे गरीब किसान और मजदूर' शीर्षक निबंध लिखा था किन्तु हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल में 1936 ई. से सामाजिक क्षेत्र में आर्थिक परिस्थिति अधिक मुखरित हुई। पूंजीवाद, देशव्यापी दरिद्रता, महंगाई, बेरोजगारी और वर्ग संघर्ष की भावना में वृद्धि आदि ने मार्क्सवादी विचारधारा के प्रभुत्व को बढ़ाया। इसके अलावा आर्थिक संबंधों में कल्पना और भावुकता न्यून से न्यूनतर होती गयी। आगे चलकर द्वित्तीय महायुद्ध की संभावना ने जीवन को बहुत कटु बना दिया था। एक गहरी निराशा की भावना ने जन–जीवन को आच्छादित कर लिया। गरीबी पराकाष्ठा पर पहुँच चुकी थी। साम्राज्य और पूँजीवाद के शोषण चक्र से जनता पीड़ित थी।

धीरे–धीरे विचारकों का ध्यान यथार्थ की कठोर परिस्थितियों एवं निम्न वर्ग की करुण दशा की ओर गया और वर्ग संघर्ष से व्यापक जागृति हुई तथा दलित वर्ग विद्रोह कर तत्पर हुआ। इस प्रकार मार्क्सवाद का महत्व बढ़ता ही गया।

मार्क्सवाद का साहित्यिक रूप प्रगतिवाद है। प्रगतिवादी विचारधारा के अनुसार सारे विश्व में पूंजीवाद अर्थनीति से पीड़ित निम्न वर्ग का एक विशाल समुदाय निर्मित हो गया है। इन्हीं मज़दूरों और दीन–जनों की सार्वदेशिक प्रगति में योग देना प्रगतिवादी कवि का मुख्य लक्ष्य है।

प्रगतिवादी युग में ही एक और विचारधारा प्रवाहित हुई और वह है फ्रायड से प्रभावित मनोविश्लेषणवादी काव्य की। इस युग के मनोविज्ञान की उन्नति एक महत्वपूर्ण घटना है। इस मनोविश्लेषण के युग में प्राकृतवाद को अपने लिए उपयुक्त वातावरण मिला। अंग्रेजी साहित्य के एक्स्प्रेरिन्टालिज्म का भी प्रभाव परिलक्षित होता है। प्रगतिवादी साहित्यकारों में हम उदाहरणार्थ प्रेमचंद और निराला को प्रस्तुत कर सकते हैं।

3.3.7 समाजवाद एवं साम्यवाद

फ्रांस की राज्य क्रांति से ही समाजवादी विचारधारा का श्रीगणेश माना जाता है। आज समाजवाद अपने मूल रूप से पूर्णतः भिन्न स्वरूप लिए है। आविर्भाव के समय समाजवाद का सीधा विरोध साम्राज्यवाद से था। आगे चलकर यह विरोध पूँजीवाद से होने लगा। यह नया रूप कार्ल मार्क्स की देन बना। सन् 1848 ई. में कार्ल मार्क्स ने साम्यवादी घोषणा पत्र जारी किया और सर्वप्रथम इतिहास की आर्थिक व्याख्या देते हुए एक नए सिद्धांत की पुष्टि की। यही वह समय था जब समाजवाद को अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर मान्यता प्राप्त हुई।

मार्क्स ने हीगेल के आदर्शवादी विचारों से असहमत होते हुए भी उसकी चिंतर पद्धति का अनुकरण किया। मार्क्स का मानना था कि पूँजी ही वह शक्ति है जो समाज के विभिन्न अंगों

की आर्थिक रचना का आधार है और इसलिए इसी पर उसके विभिन्न कार्य क्षेत्रों की प्रणालियाँ, राज्य–व्यवस्था, साहित्य एवं कला आदि स्थिर हैं। आर्थिक व्यवस्था ही समाज की नींव है और साहित्यिक, राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक एवं आध्यात्मिक अभिव्यक्तियाँ इसकी ऊपरी मंजिलें हैं। यही कारण है कि समस्त क्रांतियों का मूल कारण आर्थिक ही रहता है। अतः कार्ल मार्क्स को आधुनिक समाजवाद का जन्मदाता माना जाता है यद्यपि उसके बाद भी समाजवादी अविचारधारा में बहुत से परिवर्तन हुए हैं।

प्रसिद्ध भारतीय समाजवादी नेता आचार्य नरेन्द्र देव ने भी कार्ल मार्क्स की तरह ही सामाजिक उत्पादन व्यवस्था के विकास क्रम के संबंध में विचार करते हुए यह स्पष्ट किया कि उत्पादन शक्ति के विकास में एक मुख्य अवस्था ऐसी भी आई थी कि जब सामंत तथा कृषक वर्गों के स्थान पर पूँजीपति और श्रमिक नामक दो आधारभूत नए वर्ग प्रभूत्व में आए। उत्पादन संबंधों को जोड़कर ही समाज का आर्थिक ढाँचा बनता है और उसी आर्थिक ढाँचे के आधार पर राजनीतिक तथा सांस्कृतिक दीवारें खड़ी होती हैं। समाजवाद अपने मूल रूप में प्रगतिशील आंदोलन है।

पाश्चात्य विद्वान हुगन ने समाजवाद को श्रमिकों द्वारा संचालित एक राजनीतिक आंदोलन माना, जिसका उद्‌देश्य वे शोषण का उन्मूलन तथा एक ऐसी प्रजातंत्र व्यवस्था बताते हैं जिसमें उत्पादन वितरण शक्ति समाज के अधिकार में होती है। लिटर ने समाजवाद राष्ट्रीय स्वरूप में परिवर्तन की एक प्रेरणा माना जिसका स्रोत वे श्रमिक वर्ग हैं। फ्लिंट ने समाजवाद की साम्यवाद तथा समूहवाद नामक दो शाखाएँ बताई। समाजवादियों ने क्रांति को प्रमुख महत्व दिया और समाजवाद का उद्‌देश्य हानिकारक प्रतिद्वंद्विता, पूँजीवाद तथा पैतृक अधिकारों का अंत करके उसके स्थान पर उत्पादन के साधनों तथा उत्पादक यंत्रों का पुनर्वितरण करना माना। हिंदी साहित्य के क्षेत्र में समाजवादी इस विचारधारा को छायावादोत्तर काव्य में प्रायः अधिकांश विधाओं में प्रश्रय मिला।

साम्यवाद मूलतः एक प्रगतिशील एवं परिवर्तनशील वाद है। यही कारण है कि प्लेटो के समय के साम्यवाद तथा आधुनिक साम्यवाद में बहुत अंतर आ गया। आधुनिक साम्यवाद को कार्ल मार्क्स, लेनिन तथा स्टालिन जैसे साम्यवादियों ने नया प्रारूप दिया। यही कारण है कि राबर्ट फ्लिंट जैसे विचारक ने साम्यवाद को समाजवाद की ही एक विचारधारा माना। नोयज का मानना है कि साम्यवाद जीवन के दर्शन का एक रूप है और जीवन का यही दर्शन ही साम्यवाद की नींव है। साम्यवादी विचारक इसे विश्वस्तरीय समस्याओं के सुलझाने का एक क्रांतिकारी और सार्वभौमिक दर्शन मानते हैं। प्रसिद्ध भारतीय साम्यवादी डांगे ने बताया है कि कैसे समाज दासों और धन–स्वामियों के दो वर्गों में बँटा। सन 1848 में मार्क्स और एंजिल्स का साम्यवादी घोषणा पत्र प्रकाशित हुआ था। इसके अनुसार साम्यवाद का आधार आर्थिक सिद्धांत के स्थान पर द्वंद्वात्मक भौतिकवाद माना गया था। मार्क्स के अनुसार क्रांति तथा शांति एक ही सिद्धांत के दो भिन्न पक्ष हैं। शांति के लिए ही क्रांति की आवश्यकता होती है। आधुनिक हिंदी साहित्य में यशपाल, नागार्जुन, त्रिलोचन आदि कई साहित्यकारों की कृतियों में यह विचारधारा बौद्विक आधार पर स्पष्टतः समाविष्ट हुई देखी जा सकती है।

3.3.8 प्रतीकवाद और बिम्बवाद

प्रतीकवाद का प्रवर्तन एक आधुनिक वैचारिक आंदोलन के रूप में फ्रांस में हुआ था। आगे चलकर यह पूरे विश्व में एक प्रतिनिधि विचारधारा के रूप में व्याप्त हो गया। इनके अनुसार किसी भी विषय के प्रतीक के रूप अभिव्यंजना करना ही प्रतीकवाद है। साहित्यिक प्रतीकों

को मुख्यतः भावनात्मक एवं व्यंजनात्मक साम्य पर आधारित माना जाता है और वैज्ञानिक प्रतीक किसी विशिष्ट पदार्थ अथवा बिम्ब को अभिव्यंजित करते हैं। अतः भाव प्रेषण तथा अभिव्यक्ति के सभी माध्यमों को प्रतीकात्मक कहा जा सकता है। समाज, धर्म, संस्कृति तथा साहित्यिक क्षेत्रों की अधिकांश क्रियाएँ तो सत्र रूप में प्रतीकात्मक होती हैं, अचेतन में होने वाली प्रक्रियाएँ भी प्रतीकात्मक ही कही जा सकती हैं। केनपवर्ग ने प्रतीक की विस्तृत व्याख्या की है। वे कहते हैं कि प्रतीकों का कार्य किसी अनुभव के प्रतिरूप अथवा प्रतिवृति का शाब्दिक साम्य अभिव्यंजित करना है। मानव भाव तथा अनुभूतियों की अभिव्यक्ति के लिए प्राकृतिक प्रतीकों का उपयोग किया जाता है। प्रतीकवाद नग्न तथा यथार्थ चित्रण के स्थान पर प्रतीकात्मक चित्रण करने वाला महत्वपूर्ण सिद्धांत है। इससे यथार्थ के आधार पर होने वाले नग्न चित्रण से युक्त अभिव्यक्तियों को रोका जा सकता है। प्रतीकवाद 19वीं शताब्दी के मध्य में फ्रांस में प्रकृतिवाद की प्रतिक्रिया के रूप में जन्मा था। इसे बाद में मेलार्मे, बलेरी, बर्ले तथा रिबो आदि ने आगे बढ़ाया। मेलार्मे का कहना है कि–'वही कविता श्रेष्ठ हो सकती है जो अनुभूति का संकेत मात्र देकर रह जाए, उसका शनैः शनैः उद्घाटन करे। अनुभूति की स्पष्ट अभिव्यक्ति के अर्थ हैं–कविता के तीन चौथाई सौंदर्य को नष्ट कर देना।'

बिम्बवाद के मूल में भी नए काव्य रूप के अन्वेषण की ही प्रेरणा है। इसके प्रवर्तक ह्यूम माने जाते हैं। इन्होंने विशिष्ट काव्य रूप की चर्चा कर बहुतों को प्रभावित किया। परिणामतः एजरा पाउंड, रिचर्ड, एलडिंग्टन, एप.एस. फ्लिंट आदि इनके अनुयायी हो गए। सन 1914 ई. में एज़रा पाउन्ड के संपादन में 'दि इमैजिस्ट' नाम का एक काव्य संग्रह प्रकाशित हुआ। इसमें इन लोगों ने अपने सिद्धांत की मान्यताओं का प्रकाशन किया। कम से कम शब्दों में पूरे चित्र को उतार देना ही इनका आदर्श रहा। इसके लिए शब्द चयन की विशिष्टता पर ये बल देते रहे। क्योंकि सामान्य शब्द की अपनी अर्थवत्ता और चित्रात्मक सांकेतिकता के लिए अद्वितीय बन सकता है। सन् 1909 से लगभग 1930 तक चलने वाले इस आंदोलन का प्रभाव हिंदी कविता में सन् 1940 के बाद दिखाई देता है। अज्ञेय, गिरिजाकुमार, शमशेर, धर्मवीर भारती आदि साहित्यकार बिम्बवादी इसी विचारधारा से प्रेरित जान पड़ते हैं।

3.4 थियोसोफिकल सोसाइटी की स्थापना

इसकी स्थापना मदाम ब्लावत्स्की और कर्नल ओल्टकाट ने न्यूयार्क में सन् 1875 ई. में की। इस सोसाइटी के संस्थापक जनवरी 1879 ई. में भारत आये। 1882 ई. में अडयार (मद्रास) में इसकी शाखा खोली गयी। श्रीमती एनीबेसेन्ट ने 1888 ई. में इस संस्था की इंग्लैंड शाखा से सम्बद्ध हुई और 1893 ई में वे भारत आयी और सोसाइटी के विकास में तन–मन–धन से जुट गयी। इस सोसाइटी का प्रमुख लक्ष्य विश्वबन्धुत्व का प्रचार, आध्यात्मिक जीवन का महत्व समाज सुधार और शिक्षा आदि का प्रचार करना था। वस्तुतः थियोसोफिकल आन्दोलन भारतीय विचारों और परंपरा के अनुकूल ही था। श्रीमति एनीबेसेन्ट ने समस्त भारत का दौरा किया तथा हिन्दू धर्म के आध्यात्मिक पक्ष पर अनेक ओजस्वी भाषण दिए एवं उन्होंने घोषित किया––मैं अपने विगत के संस्कारों के कारण हृदय से तुम्हारे साथ हूँ।' थियोसोफिकल में उन्होंने अनेक आदर्शों को मूर्त रूप प्रदान करने हेतु कई शिक्षा संस्थानों की स्थापना की। बनारस का सेन्ट्रल हिन्दू कॉलेज इसी तरह का था। इन संस्थाओं ने भारतवासियों में नवीन प्रेरणा शक्ति, अतीत के प्रति श्रद्धा, भविष्य में विश्वास उत्पन्न करके नई आत्म गौरव की भावना का संचार किया। इस आंदोलन से उदारता और समन्वयवादी दृष्टि का विकास तेज़ी से हुआ। सोसाइटी ने राष्ट्रीयता का पोषण सफलता के साथ किया एवं उसने नयी शिक्षा प्रणाली को भारत के विरूद्ध घोषित किया।

बोध प्रश्न– 2

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर संक्षेप में दें।

1. आदर्शवाद क्या था? उसकी मुख्य धारणा को पाँच पंक्तियों में स्पष्ट कीजिए।

....

....

....

....

....

2. अभिव्यंजनावाद और रूपवाद का अंतर स्पष्ट करते हुए उनकी वैचारिक देन पर दस पक्तियाँ लिखिए।

....

....

....

....

3. अस्तित्ववाद ने आधुनिक युग के वैचारिक आधार को कैसे समृद्ध किया ? दस पंक्तियाँ लिखिए।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

4. मनोविश्लेषणवाद एवं अतियथार्थवाद का स्वरूप क्या है? लगभग दस पंक्तियों में स्पष्ट कीजिए।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

5. मार्क्सवादी विचारधारा क्या है ? लगभग सात–आठ पंक्तियों में स्पष्ट कीजिए।

....

....

....

....

....

6. प्रतीकवाद और बिम्बवाद का अंतर पाँच पंक्तियों में स्पष्ट कीजिए।

....

....

....

....

....

7. समाजवाद और साम्यवाद के वैचारिक आधार में क्या अंतर है? पाँच–छह पंक्तियों में स्पष्ट कीजिए।

....

....

....

....

....

अभ्यास 1

1) निम्नलिखित के सही उत्तर को (√) चिह्नित कीजिए

i) नीचे कुछ नाम दिए हुए हैं बताइए किस दार्शनिक ने कहा था कि –

'ईश्वर मर गया'– हैडलर, जैसपर्श, नीत्शे, मार्शल

ii) नीचे दिए हुए शब्दों में से बताइये अस्तित्ववाद की दृष्टि में मनुष्य क्या है –

वस्तु, मशीन, क्रियात्मक शक्ति

iii) नीचे कुछ नगरों के नाम दिए हुए हैं बताइए थियोसोफिल सोसाइटी भारत में प्रथम शाखा किस नगर में खोली गई–

बम्बई, कलकत्ता, मद्रास

iv) नीचे लिखे हुए लेखकों के नामों से बताइए कि किसने हमारे 'गरीब किसान और मजदूर' नामक लेख लिखा –

श्रीपाद अमृत डांगे, काजी नज़रुल इस्लाम, जनार्दन भट्ट।

2) 1854 में वुड घोषणा–पत्र द्वारा शिक्षा के लिए क्या किया गया? दो वाक्यों में उत्तर दीजिए।

....

....

3) महात्मा गांधी की मानवतावादी भावना के कितने रूप हैं ? तीन पंक्तियों में लिखिए।

....

....

....

....

3.5 भारतीय जीवन दृष्टियाँ

अंग्रेज़ी राज्य की स्थापना से भारत के आर्थिक ढाँचे में बेशुमार परिवर्तन आया। नयी शिक्षा पद्धति लागू हुई। प्रेस और यातायात के साधनों के फलस्वरूप समाज का जो आधुनिकीकरण आरंभ हुआ, वह प्राचीन और मध्यकालीन धार्मिक संस्कारों, रीति–रिवाजों, संगठनों से मेल नहीं खाता था। अतः नये और पुराने संस्कारों के बीच सामंजस्य की आवश्यकता महसूस की गयी एवं इसी सामंजस्य के साथ ही नये समाज निर्माण की प्रक्रिया भारत में शुरू हई। भारतीय नव–जागरण के मूल में व्यक्ति स्वातंत्र्य का विशेष महत्व है। बदली हुई परिस्थितियों के अनुसार ब्रह्म समाज, प्रार्थना समाज और आर्य समाज ने परंपरागत धर्म को नये समाज के अनुरूप ढालने के पक्षपाती थे। मध्यकाल का सामंजस्य भावना मूलक था किन्तु आधुनिक काल में भावना से काम नहीं चल सकता था, अब तो भावना के स्थान पर तर्क, विवेक, और बुद्धि से काम लेना अनिवार्य हो गया था। ब्रहम समाज और प्रार्थना समाज की मान्यताएँ कुछ हद तक बुद्धि, विवेक और तर्क पर ही आधारित है।

3.5.1 ब्रह्म समाज

आधुनिक भारत की नींव का पहला पत्थर राजा राममोहन राय ने रखा क्योंकि विदेश यात्रा ने उन्हें नया दृष्टिकोण दिया था। उन्होंने भारतीय समाज के आधुनिकीकरण के लिए 20 अगस्त 1828 ई. में ब्रह्म समाज की स्थापना की। हिन्दू धर्म की गूढ़ता को भली–भांति समझने के लिए उन्होंने बनारस जाकर कुछ वर्षों तक गीता, उपनिषद आदि का गहन अध्ययन किया। अरबी–फारसी का उन्हें अच्छा ज्ञान था, इन भाषाओं के माध्यम से अफलातून, अरस्तू, प्लाटीनस आदि यूनानी विचारकों का अध्ययन किया। यही कारण है कि उनकी विचारधारा पर इस्लामी ऐकेश्वरवाद के प्रभाव की झलक स्पष्ट रूप से दिखायी पड़ती

है तथा इसाई धर्म से भी वे प्रभावित थे। उन्हें ये समस्त विचारधारायें प्राचीन औपनिषदिक दर्शन में मिली–विशेष रूप से तैतिरीय और कोषातकी में। उन्होंने कर्मकांड और अंधविश्वासों पर कुठाराघात करने के लिए बड़ी सफलता से उपनिषदों का प्रयोग किया। मूर्ति पूजा को उन्होंने धर्म का बाह्याडंबर घोषित किया तथा उसके समर्थन में जितने तर्क दिए जाते थे उनका खंडन उपनिषदों के आधार पर किया। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा कि परंपरा का प्राचीनतम रूप शुद्ध ब्रह्म की उपासना है न कि मूर्ति–पूजा।

तत्कालीन समाज में राजा राममोहन राय अकेले ऐसे व्यक्ति थे जिन्होंने अंधविश्वासों और रुढ़ियों के विरुद्ध आवाज उठाई एवं उनको समाप्त करने का भरसक प्रयास किया। उनकी विचारधारा में तर्क की ऐसी प्रधानता थी जो लॉक, ह्यूम और रूसो से मेल खाती थी। उनका मत था कि मनुष्य को स्वयं दार्शनिक ग्रन्थों का अध्ययन करके उनके सिद्धांतों को तर्क की कसौटी पर कसना चाहिए और जो अंश तर्कोनुमोदित न हो उन्हें अवश्य ही अस्वीकार कर देना चाहिए।

धार्मिक सुधार और समाजिक सुधार में घनिष्ठ संबंध है। राजा राममोहन राय इसे अच्छी तरह समझते थे इसी कारण उन्होंने सामाजिक कुरीतियों पर करारा प्रहार किया। उन्होंने जाति प्रथा को अमानवीय और राष्ट्रीयता का विरोधी घोषित किया। बलि प्रथा, सती प्रथा के विरोध में जो उन्होंने प्रयास किया, उसका भारतीय समाज सदैव ऋणी रहेगा। केवल इतना ही नहीं उन्होंने विधवा–विवाह और स्त्री–पुरुष के समानाधिकार का समर्थन दृढ़ता के साथ किया।

भारत की शिक्षा प्रणाली के परिवर्तन को उन्होंने भारतीय समाज के हित में समझा। यही कारण है कि उन्होंने अंग्रेजों की शिक्षा प्रणाली के प्रचार–प्रसार का समर्थन ही नहीं किया बल्कि उचित योग भी दिया। वस्तुतः 19वीं शती के पूर्वार्द्ध तक अंग्रेजों ने जो कुछ किया, वह ऐतिहासिक दृष्टि से प्रगतिशील कहा जा सकता है। पाश्चात्य संस्कृति को स्वीकार करते हुए भारतीय संस्कृति को नवीन वैज्ञानिक आधार प्रदान किया।

ब्रह्म समाज की बौद्धिक अनुभूति, विशुद्ध अध्यात्मवाद और समाज सेवा के कारण लोग आकृष्ट हुए। ब्रह्म समाज को आगे बढ़ाने में देवेन्द्रनाथ टैगोर (1819–1905) और केशवचन्द्र सेन (1838–84) का भी अपना विशेष योगदान रहा है। देवेन्द्रनाथ टैगोर को वेदों की अपौरुषेयता पर विश्वास नहीं था। और उनकी आस्था अन्तःप्रज्ञा पर अधिक थी। केशवचन्द्र सेन बहुत कुछ प्रयोगवाद के समर्थक रहे हैं। ब्रह्म धर्म के प्रचार के लिए उन्होंने दूर–दूर की यात्राएँ की और उन्हीं की प्रेरणा से मद्रास में वेद समाज और बम्बई में प्रार्थना समाज की भी स्थापना हुई। ब्रह्म समाज में केशवचन्द्र सेन के पश्चात् कोई भी ऐसा व्यक्ति नहीं हुआ जो शिक्षित समाज को प्रभावित कर पाता।

3.5.2 प्रार्थना समाज

इस समाज के उन्नायक 19वीं शताब्दी के चोटी के बुद्धिजीवी, विधिवेत्ता और मेधावी व्यक्ति महादेव गोविन्द रानाडे थे। उन्हीं के प्रभाव से 1867 ई. में प्रार्थना समाज की स्थापना हुई। रानाडे ने चालीस वर्षों तक सामाजिक रूढ़ियों और अंधविश्वासों के विरुद्ध संघर्ष किया। उन्होंने धार्मिक और सामाजिक समस्याओं पर तर्कपूर्ण ढंग से विचार किया। वे संकीर्ण विचारधारा को कभी भी प्रश्रय नहीं देते थे। देश और समाज की कोई भी ऐसी समस्या नहीं थी, जिसकी ओर उनका ध्यान न गया हो। वे प्रगति और विकास के पक्षपाती थे। ईश्वर को सार्वभौम और स्रष्टा मानते थे एवं आत्मा की अमरता में उन्हें पूर्ण विश्वास था। वे रामानुजाचार्य के द्वैतवाद के समर्थक और शंकराचार्य के अद्वैतवादी के कट्टर विरोधी थे किन्तु वे प्रतिक्रियावादी कभी नहीं थे और न ही उनमें किसी प्रकार का पूर्वाग्रह ही था।

रानाडे के मन में अतीत के प्रति आदर था किन्तु उसे उसी रूप में प्रतिष्ठित करना उन्हें कतई स्वीकार न था। वे मृत को मृत मानकर चलने वाले व्यक्ति थे। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा कि मृत अतीत को कभी भी जीवित नहीं किया जा सकता क्योंकि समाज जीवित अवयवों का संघटन है। समाज में परिवर्तन की प्रक्रिया बराबर चलती रहती है और चलती रहेगी तथा उसे चलती रहना भी चाहिए अन्यथा समाज मुर्दा हो जायेगा।

रानाडे मनुष्य की समानता के पक्षधर थे और उन्होंने जाति–पाति के विरोध में अन्तर्जातीय विवाह का समर्थन किया तथा स्त्री शिक्षा पर विशेष बल दिया। यद्यपि वे पाश्चात्य विचारधारा से प्रभावित थे लेकिन उन्होंने उसे आँख मूंद कर नहीं स्वीकारा बल्कि जो कुछ स्वीकारा उस पर तर्क–वितर्क करके ही स्वीकारा। अस्तु वे भारतीय समाज को नवीन वैज्ञानिक प्रणाली के अनुरूप ढालने का प्रयास आजीवन करते रहे।

3.5.3 रामकृष्ण परमहंस मिशन

इसकी स्थापना विवेकानन्द ने की। वे रामकृष्ण परमहंस के योग्य और होनहार शिष्य थे। रामकृष्ण परमहंस अपने सम्पूर्ण व्यक्तित्व में परमहंस थे। परमहंस के संबंध में कहा जाता है–इस गरीब, अनपढ़, गंवार, रोगी, अर्धमूर्तिपूजक, मित्रहीन हिन्द भक्त ने बंगाल को बुरी तरह हिला दिया। विवेकानन्द ने उन्हें बाहर से भक्त और अन्दर से ज्ञानी कहा है। परमहंस ने सभी धर्मों को ईश्वर के पास पहुँचाने का विविध मार्ग माना और ईश्वर की अलौकिक सत्ता में विश्वास व्यक्त करके आध्यात्मिक जीवन बिताने की प्रेरणा दी। उन्होंने भी तुलसीदास की भांति निर्गुण–सगुण, द्वैत–अद्वैत, मूर्त–अमूर्त, पौरस्त्य–पाश्चात्य आदि सभी तत्वों में समन्वय स्थापित किया। उनके मन में माता, भक्त, भगवान साकार ब्रह्मोपासक, निराकार, ब्रह्मोपासक सभी के प्रति आदर की भावना विद्यमान थी। स्वामी विवेकानन्द का मुख्य प्रयोजन रामकृष्ण के उपदेशों का प्रचार करना था। किन्तु सामाजिक कार्यों में उनकी गहरी रुचि थी। मानवीय समता के विश्वासी होने के कारण उन्होंने जाति सम्प्रदाय, छुआछूत आदि का विरोध किया। गरीबों के प्रति उनकी सहानुभूति प्रगाढ़ थी। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा–'पूजा के सभी उपकरणों को फेंक दो–शंख, घंटा–घड़ियाल, दीप को प्रतिभा के सम्मुख डाल दो–वैयक्तिक मुक्ति के लिए की गयी साधना, शास्त्रों के अध्ययन का अहंकार छोड़ दो। गाँव–गाँव जाओ और गरीबों की सेवा में अपने आप को निछावर कर दो।' शिक्षितों और उच्च वर्ग को सम्बोधित करके कहा–'जब तक देश में हजारों लोग अज्ञानी और भूखे हैं तो मैं प्रत्येक शिक्षित वर्ग को धोखेबाज कहूँगा। गरीबों के पैसे से पढ़कर भी वे उनकी ओर तनिक भी ध्यान नहीं देते। भारत को केवल जनता से आशा करनी चाहिए। उच्च वर्ग शारीरिक और नैतिक दृष्टि से मर चुका है। धर्म वह है जो शारीरिक, बौद्धिक और आध्यात्मिक शक्ति दे, जो आत्म–सम्मान और राष्ट्रीय गौरव प्रदान करने में सहायता करे। धर्मगत ध्यान यदि व्यक्ति को प्रमादी और निष्क्रिय बनाता है तो उसे त्याग देना चाहिए। तुम्हारे राम–कृष्ण की चिन्ता कौन करता है? तुम्हारी भक्ति और मुक्ति को कौन देखता है? तम्हारे धर्म–ग्रंथों की प्रवाह कौन करता है?.......यदि मैं अपने देशवासियों को कर्म योग में दीक्षित कर सकूँ और उसके लिए मुझे हजारों बार नरक में जाना पड़े तो मुझे प्रसन्नता ही होगी।'

स्वामी विवेकानन्द ने भारत की सांस्कृतिक श्रेष्ठता, आध्यात्मिक चिन्तन की ऊँचाई को, हीन भावना से ग्रस्त भारतवासियों के सम्मुख रखा और आध्यात्मिक स्तर पर मनुष्य की समता, एकता, बन्धुत्व और स्वतंत्रता की ओर ध्यान आकृष्ट किया तो पश्चिम की भौतिकता से चमत्कृत भारतीयों को पहली बार एहसास हुआ कि हमारी अपनी परंपरा में भी कुछ ऐसी वस्तुएँ हैं जिन्हें हम विश्व के सम्मुख गौरव के साथ रख सकते हैं।

3.5.4 आर्य समाज

1867 ई. में दयानन्द सरस्वती ने बम्बई में आर्य समाज की स्थापना की। वे असाधारण व्यक्तित्व के धनी व्यक्ति थे और संस्कृत के विद्वान, वाग्मी तथा अत्यन्त मेधावी थे। आर्य समाज के लिए उन्होंने वेदों को आधार बनाया। उनका मत है वेद शाश्वत और अपौरुषेय हैं, वैदिक धर्म ही सत्य और सार्वभौम है तथा दूसरे धर्म अधुरे हैं। अतः आर्य समाज का कर्तव्य है कि अन्य धर्मावलम्बियों को हिन्दू धर्म में ही दीक्षित करें।

सामाजिक और नैतिक मूल्यों को ध्यान में रखकर आर्य समाज ने एक आचार संहिता तैयार की। इस आचार संहिता के अनुसार जाति–भेद का विरोध, मनुष्य–मनुष्य की समानता का समर्थन, स्त्री–पुरुष की असमानता का विरोध, विधवा विवाह का समर्थन और बाल विवाह का विरोध किया गया।

दयानन्द सरस्वती जी ने अनेकेश्वरवाद, मूर्तिपूजा, बहु–विवाह, ब्राह्मण धर्मान्तगर्त कर्मकांड का विरोध किया तथा एकेश्वर की आराधना की प्रेरणा दी। अपने 'सत्य प्रकाश' में स्वधर्म, स्वभाषा और स्वदेश प्रेम का नारा लगाकर धर्म और राष्ट्र का अटूट सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयास किया। भारतीय समाज को एकसूत्र में बांधने के लिए उन्होंने विविध राष्ट्र मूलक सुधारों का प्रचार एवं प्रसार किया और पुरानी रूढ़ियों से बचाने का भरसक प्रयास किया। उन्होंने प्राणों की निन्दा की, इस्लाम और इसाई धर्म का विरोध किया। आर्य समाज जहाँ एक ओर प्रगतिशील था वहीं दूसरी ओर प्रतिक्रियावादी भी। जहाँ तक मानवीय समता, अस्पृश्यता आदि का सम्बन्ध है, इसे प्रगतिशील कहा जा सकता है किन्तु मुसलमानों के प्रति जो इसका आक्रामक रुख था वह प्रतिगामी प्रकृति का सूचक है। यद्यपि दयानन्द सरस्वती वैदिक धर्म के व्याख्याता थे फिर भी पश्चिमी शिक्षा प्रणाली के समर्थक थे क्योंकि उन्हें मालूम था कि भौतिक उन्नति के लिए पाश्चात्य ज्ञान–विज्ञान की जिला अत्यन्त आवश्यक है। यही कारण था कि उन्होंने 1886 ई. में दयानन्द एंग्लो वैदिक कॉलेज की स्थापना की। अपने हिन्दूवादी दृष्टिकोण के बावजूद आर्य समाज ने राष्ट्रीय विचारधारा को आगे बढ़ाने में आश्चर्यजनक योगदान दिया है। इसका प्रभाव उत्तर भारत के आचार–विचार, रहन–सहन, साहित्य, शिक्षा आदि पर पड़ा। आधुनिक हिंदी साहित्य पर आर्य समाज का प्रत्यक्ष एवं परोक्ष दोनों से व्यापक प्रभाव पड़ा है। यही कारण कि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने 'स्वर्ग में विचार सभा का अधिवेशन' में दयानन्द सरस्वती की प्रशंसा की है।

इन सबके अतिरिक्त अनेक संस्थाओं और व्यक्तियों ने तत्कालीन समाज, धर्म, और संस्कृति को जन–मानस तक शुद्ध रूप में पहुँचाने का प्रयास किया है। 1861 ई. में आगरा में राधा स्वामी सतसंग की स्थापना शिवदयाल जी ने की। शोषित–पीड़ित मानव की सेवा–शुश्रूषा करना ही इनका भी मुख्य उद्देश्य था।

3.5.5 गांधीवादी विचारधारा

गांधीवादी विचारधारा ने भी आधुनिक युगीन भारतीय विचारधारा को बहुत प्रभावित किया। 'महात्मा गांधी' बीसवीं शताब्दी के अर्ध भाग में भारतवर्ष को नेतृत्व देने वाली एक महान हस्ती का नाम है। गांधी जी की विचारधारा की उल्लेखनीय विशेषता यह है कि उनका चिंतन आधुनिक युगीन अधिकांश विचारधाराओं की तरह किसी तर्क प्रणाली पर आधारित न होकर आत्मानुभूति, आध्यात्मिकता तथा आत्मशक्ति पर आधारित है। आचार्य विनोबा भावे का कहना है कि गांधी जी समाज की परंपराओं को परिपक्व एवं विकसित करना चाहते हैं। इसीलिए वे परिश्रम की समानता, होड़ के अभाव तथा आनुवंशिक संस्कारों से लाभ उठाने वाली शिक्षण योजनाओं का प्रस्ताव रखते हैं। सर्वोदय ही उनका सामाजिक आदर्श रहा।

उनके जीवन का आदर्श सत्याग्रह रहा और शासनादर्श राम राज्य रहा। समाज के सभी व्यक्तियों और वर्गों की समान उन्नति ही गांधीवाद का लक्ष्य रहा। सत्य और अहिंसा के स्तम्भों पर गांधी जी राम राज्य के भवन निर्माण का आधार रखना चाहते थे। सत्य ही उनकी दृष्टि में ईश्वर का दूसरा नाम था। सत्य के साक्षात्कार से ही वे समबुद्धि की प्राप्ति मानते हैं। अहिंसा सत्य का दूसरा पक्ष है। प्रेम और वैराग्य के समन्वय से अहिंसा की पृष्ठभूमि बनती है और उसके लिए आत्म शुद्धि आवश्यक है। आत्म शुद्धि से ही आत्मा को शांति भी मिलती है और उसी से समाज का कल्याण संभव है। गांधी जी ने कला के बाह्य विकास के लिए भी आंतरिक विकास पर बल दिया। जो कला आत्मा के प्रदर्शन की शिक्षा नहीं देती वह कला तुच्छ है। सच्ची कला तो वही है जो सत्य की अभिव्यक्ति में सहायक हो ऊर्ध्ववगामिनी प्रकृति में सहायक हो। हिंदी के आधुनिक युगीन साहित्य तथा साहित्यकारों पर भी इस विचारधारा का बहुत प्रभाव पड़ा। गांधी जी का जीवन दर्शन इन साहित्यकारों के सृजन में ढलने लगा। सभी विधाओं में इन्हें देखा जा सकता है। प्रेमचंद, सुदर्शन, मैथिलीशरण गुप्त, प्रसाद, रामनरेश त्रिपाठी, पंत, माखनलाल चतुर्वेदी, सोहन लाल द्विवेदी, भवानी प्रसाद मिश्र आदि अनेक साहित्यकारों पर इनके प्रभाव को देखा जा सकता है।

3.5.6 प्रगतिवाद

हिंदी साहित्य के क्षेत्र में प्रचलित एवं विख्यात 'प्रगतिवाद' यथार्थवाद की विचार प्रणाली का ही एक विकसित रूप माना जाता है। 20वीं शताब्दी के तीसरे दशक में आरंभ होने वाले इस साहित्यिक आंदोलन ने सन् 1936 में मुंशी प्रेमचंद की अध्यक्षता में अखिल भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ का एक अधिवेशन किया। तभी से प्रगतिवाद का प्रचार आलोचनात्मक तथा रचनात्मक साहित्य के क्षेत्र में बहुत बढ़ने लगा। छायावाद के बाद की काव्यधारा 'प्रगतिवाद' के नाम से ही जानी जाती है। प्रगतिवाद का मूल उद्देश्य सामाजिक यथार्थ के आधार पर उस सामाजिक चेतना का जागरण करना था जो छायावाद युग में हासोन्मुख थी। समाज के उपेक्षित वर्गों यथा—कृषक, श्रमिक तथा अछूत वर्गों में सामाजिक चेतना के जागरण ही प्रगतिवादी लेखकों का उद्देश्य रहा। इस विचारधारा के विकास में राहुल सांकृत्यायन, मन्मथनाथ गुप्त, रांगेय राघव, यशपाल तथा रामविलास शर्मा आदि ने पर्याप्त योग दिया। 'प्रगति' से इनका तात्पर्य है जन स्तर पर चेतना जागरण। 1938 और उसके बाद की प्रगतिवादी कृतियों में जिस वर्ग संघर्ष पर मानवतावाद तथा वैयक्तिक उद्घोष का रूप देखने को मिलता है उसकी वैचारिक झलक हमें प्रसाद, निराला तथा महादेवी वर्मा के साहित्य में भी देखने को मिलती है। प्रसाद के 'आँसू' का उत्तरार्द्ध मानव की विषमता और वेदना का द्योतक है। महादेवी की रचनाओं में करुणा का आदर्श प्रेरक मानवतावादी मनोभाव की ही अभिव्यक्ति है। निराला का 'भिक्षुक', 'तोड़ती पत्थर' तथा 'बादल राग' और पंत की 'युगांत' आदि में प्रगतिवाद की भूमिका को सहज ही देखा जा सकता है।

'भारतीय प्रगतिशील लेखक मंच' की स्थापना सन् 1935 में डॉ. मुल्कराज आनंन्द, सज्जाद ज़हीर तथा भवानी भट्टाचार्य आदि भारतीय लेखकों ने लंदन में की थी और उसकी प्रेरणा सन् 1935 में भारतीय लेखकों ने पेरिस में संस्थापित 'प्रगतिशील लेखकों अंतर्राष्ट्रीय संघ' से मिली थी जिसके प्रथम सभापति अंग्रेज़ी के प्रसिद्ध उपन्यासकार श्री ई.एम. फार्स्टर थे। इसके संगठन में मैक्सिम गोर्की का भी हाथ रहा। इसका उद्देश्य था समाजवादी शक्तियों के प्रसार और फासिस्ट विरोधी शक्तियों के प्रसार को रोकना। हिंदी में जैसा कि पहले कहा गया इस प्रगतिशील लेखक संघ का पहला अधिवेशन प्रेमचंद की अध्यक्षता में सन् 1936 में लखनऊ में हुआ। इसमें समाज के नये रूप के साहित्य में प्रतिबिंबित करने, वैज्ञानिक युक्तिवाद के साहित्य में उतारने तथा प्रगतिशील विचारधारा के गीत देने पर बल दिया गया।

सन् 1938 में कलकत्ता में इस संघ का दूसरा अधिवेशन हुआ। इसमें देश के आर्थिक, सामाजिक और साहित्यिक परिवेश पर प्रकाश डालते हुए लेखकों को उनके प्रति सजग होने की प्रेरणा दी गई। सन् 1942 में संघ का तीसरा अधिवेशन दिल्ली में हुआ। इस अधिवेशन में बढ़ते हुए फासिज्म का विरोध मुख्य मुद्दा रहा। फासिज्म की विजय ने प्रगतिशील विचारों के विकास का मार्ग बंद कर दिया था। इस संघ का चौथा अधिवेशन सन् 1943 में बम्बई में हुआ, जिसकी अध्यक्षता 'डांगे' ने की। इसमें राष्ट्र के मनोबल को सुदृढ़ बनाने के लिए जनता के साहस एवं संकल्प को मजबूती प्रदान करने का उद्देश्य रखा गया। रचनात्मक कार्यों की प्रेरणा इसमें दी गई। संघ का पाँचवा अधिवेशन 1950 में पुनः बंबई में हुआ। इसका संचालन डॉ. राम विलास शर्मा ने किया था। नगर में इस अधिवशेन पर प्रतिबंध लगा दिया गया था। संघ का अंतिम और छठा अधिवेशन सन् 1953 में दिल्ली में हुआ जिसमें विश्व संघ के स्वरूप को व्यापक बनाने का निश्चय किया गया। अतः प्रगतिशील लेखक संघ ने भी अपने कार्यकाल में भारतीय आधुनिक लेखकों को बहुत प्रभावित किया। इस संघ ने इसी तरह से कई सम्मेलन भी किए। पूरे भारत के अलग–अलग राज्यों में भी प्रगतिशील लेखकों की बैठकें होती रहीं। काशी में भी प्रगतिशील लेखकों के दो महत्वपूर्ण अधिवेशन हुए जिसमें– प्रथम के सभापति अंबिका प्रसाद वाजपेयी थे तथा दूसरे के सभापति थे– नंद दुलारे वाजपेयी जी। प्रथम अधिवेशन में केंद्रीय भाषा अथवा राष्ट्र भाषा के अस्तित्व पर बल दिया गया जबकि दूसरे में प्रगतिशील लेखक संघ को एक साहित्यिक संस्था बताते हुए उसे जातीय संकीर्णता, सांप्रदायिकता और राजनीतिक दलबंदी से दूर रहने पर बल दिया गया।

प्रगतिशील लेखकों के इस सम्मेलनों, विचारों और धारणाओं का प्रभाव हिंदी साहित्य पर व्यापक रूप में पड़ा। छायावादी कवि निराला और पंत के साहित्य में प्रगति के इस स्वर को देखा जा सकता है। 'रुपाभ', 'जागरण' तथा 'हंस' आदि पत्रिकाओं ने भी इसी स्वर को बुलंद किया। 'रुपाभ' का संपादन पंत जी तथा पं. नरेन्द्र शर्मा ने किया। 'जागरण' के संपादकों में आचार्य नरेन्द्र देव, प्रेमचंद तथा सम्पूर्णानंद जी उल्लेखनीय हैं। 'हंस' का संपादन प्रेमचंद जी ने किया। इनके माध्यम से अनेक प्रगतिशील लेखकों को साहित्य क्षेत्र में आने का अवसर मिला।

3.6 वैज्ञानिक दृष्टिकोण तथा आदर्शवादी जीवन–दर्शन

आधुनिक युग की वैचारिक पृष्ठभूमि का एक महत्वपूर्ण पक्ष है–सांस्कृतिक दृष्टि से भारत में वैज्ञानिक दृष्टिकोण का उदय। विज्ञान के नए–नए आविष्कारों ने समाज के विभिन्न वर्गों विश्वास को नष्ट किया। अशिक्षित वर्ग भले ही युगीन अंधविश्वासों की जकड़ से न छूट सका हो किंतु शिक्षित तथा मानसिक रूप से प्रबुद्ध लोगों ने जीवन की सत्यता को स्वीकारा। राजा राममोहन राय, दयानन्द सरस्वती तथा महात्मा गांधी आदि समाज सुधारकों ने बौद्धिकता के द्वार पर जो दस्तक दी थी उससे नए भारत का भाग्योदय हुआ। समाज के लिए कोढ़ बनी घातक सती प्रथा, बाल–विवाह, अस्पृश्यता तथा धार्मिक कर्मकांड जाति के उन्मूलन की प्रेरणा इन लोकनायकों ने दी। अब जनता भाग्य के भरोसे खामोश बैठने के स्थान पर कर्मठता तथा पुरुषार्थ पर भरोसा करने लगी। आदर्श और कल्पना का स्थान अब यथार्थवाद लेने लगा था। मार्क्स, फ्रायड, डार्विन, बरट्रेंट रसल तथा एंगेल्स आदि की विचारधाराओं ने जहाँ एक ओर कर्म में आस्था रखने की राह दिखाई वहीं अनेक पारंपरिक अंधविश्वासों से मुक्ति दिलाकर वैज्ञानिक दृष्टिकोण भी प्रदान किया।

भारतीय जीवन दर्शन में अब श्रद्धा और धर्म के साथ–साथ बौद्धिकता और तर्क का भी समावेश हो गया। ईश्वर के भरोसे सब कुछ छोड़ देने के स्थान पर अब मानव को अपनी

कर्मनिष्ठा एवं शक्ति पर विश्वास होने लगा। प्राकृतिक दुर्घटनाओं से बचने के लिए अब ईश्वर की उपासना ही पर्याप्त न रही, मानव का सामर्थ्य भी अब केंद्र में आ गया। इस युग के साहित्य में इन मूल्यों एवं विचारों को सहज ही देखा जा सकता है। मानवतावादी विचारधारा इस युग के साहित्य में पर्याप्त मात्रा में देखी जा सकती है। साहित्यकारों ने मानव की महानता का वर्णन भी खुलकर साहित्य में किया।

भारतीय चिंतन में परंपरागत आदर्शवादी जीवन–दर्शन को महत्व दिया गया। इनका दृष्टिकोण भावना प्रधान रहा। राष्ट्रीय स्वातंत्र्य–चेतना तथा सांस्कृतिक निष्ठा आदि के इस वैचारिक–आधार को भी साहित्य में अभिव्यक्त होते देखा जा सकता है। उल्लेखनीय विशेषता यह है कि भारतीय आधुनिक युग की वैचारिक पृष्ठभूमि में पाश्चात्य विचारों का बौद्धिक एवं भारतीय विचारों का भावनात्मक मिश्रण मिलता है। यही बुद्धि एवं हृदय का मिश्रण है जिसे आनन्द की प्राप्ति का आदर्श माना जाता है।

बोध प्रश्न– 3

निम्नलिखित प्रश्नो के उत्तर संक्षेप में दें।

1. ब्रह्म समाज की स्थापना किसने और क्यों की थी? लगभग सात–आठ पंक्तियों में लिखिए।

....

....

....

2. प्रार्थना समाज का मूल वैचारिक आधार क्या रहा? सात–आठ पंक्तियों में लिखिए।

....

....

....

....

....

....

3. 'राम कृष्ण मिशन' की आधुनिक युग के वैचारिक आधार को क्या देन है? दस पंक्तियों में लिखिए।

....

....

....

....

....

....

4. 'आर्य समाज' की सामाजिक भूमिका क्या है? आठ–दस पंक्तियों में स्पष्ट कीजिए।

....

....

....

....

....

....

5. गांधीवादी विचारधारा की विशिष्टता क्या थी और उसने किन–किन साहित्यकारों को प्रभावित किया? पाँच पंक्तियों में लिखिए।

....

....

....

....

....

....

6. प्रगतिवाद की 'वैचारिक देन' क्या है? उसने कौन–कौन सी नई धारणाएँ साहित्य और समाज को प्रदान की? दस पंक्तियों में लिखिए।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

7. i) निम्नलिखित वाक्यों में से एक वाक्य सही है। उसे लिखिए।

क) केशवचंद सेन प्रयोगवाद के समर्थक थे।

ख) गोविन्द रानाडे को आत्मा की अमरता पर पूर्ण विश्वास नहीं था।

ग) स्वामी विवेकानन्द मानव समता के पक्षपाती नहीं थे।

घ) रामकृष्ण परमहंस विवेकानन्द के शिष्य थे।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

ii) निम्नलिखित समाज सुधारकों में से किसे आधुनिक भारत की नींव का प्रथम पत्थर कहा जाता है –

गोविन्द रानाडे, स्थामी विवेकानन्द, दयानंद सरस्वती, राजाराम मोहनराय।

iii) नीचे कुछ सन् दिए हुए हैं उनमे से बताइए कि प्रार्थना समाज स्थापना कब हुई–

1868 ई., 1867 ई., 1910 ई., 1828 ई.

iv) निम्नलिखित वाक्य किस महान दार्शनिक का है –

'यदि मैं अपने से देशवासियों को कर्मयोग में दीक्षित कर सकूँ और उसके लिए यदि मुझे हज़ारों बार नरक में जाना पड़े, तो मुझे प्रसन्नता होगी।'

3.7 सारांश

- यह बात सच है कि अंग्रेजों ने भारत में नयी अर्थव्यवस्था, औद्योगिकता संचार सुविधा, प्रेस अपने निजी स्वार्थ के लिए स्थापित किया, किन्तु यह इनकार नहीं किया जा सकता कि इससे भारत और भारतवासियों का हित भी था। पूंजीवादी समाज की भौतिकता के कारण धर्म सुधारकों को इहलौकिक आकांक्षाओं का वाहक बनने के लिए बाध्य होना पड़ा। उन्हें एक ओर विदेशियों के समक्ष अपने धर्म एवं संस्कृति की वकालत करनी पड़ी तो दूसरी ओर अपने देशवासियों को धर्म का नया अर्थ प्रस्तुत करना अत्यन्त आवश्यक हो गया। पुराणपंथी और समाज सुधारक दोनों ने अपने–अपने मत का अपने–अपने ढंग से धर्मशास्त्रों का पन्ना पकड़ा। राजाराम मोहनराय को सती प्रथा को उन्मूलित करने के लिए धर्मशास्त्रों की यदि आवश्यकता हुई तो विद्यासागर ने सिद्ध किया कि धर्मशास्त्रों में वैधव्य का कोई विधान नहीं है, एवं दयानन्द सरस्वती को सामाजिक सुधारों को वैध प्रमाणित करने के लिए वेदों की ओर उन्मुख होना पड़ा।
- इस प्रकार परंपरावादी और धर्म सुधारक दोनों भारत के अतीत के गौरव को जागृत करने में सफल हुए तथा भारतवासियों को आत्म–सम्मान का बोध कराया। दोनों ने पाश्चात्य शिक्षा पद्धति का समर्थन किया तथा नई संस्थाओं की स्थापना भी की। एवं पुरानी शिक्षा संस्थाओं के रूप में तत्कालीन आवश्यकतानुसार परिवर्तन किया। इससे स्पष्ट है कि आधुनिक ज्ञान–विज्ञान ने मनुष्य को कुछ सीमा तक बुद्धि सम्मत भी बनाया।
- इन वैचारिक आन्दोलनों ने भारतीय समाज, संस्कृति, धर्म और साहित्य में काफी परिवर्तन ला दिया। अब साहित्यकार अपने चारों ओर के जीवन में, परिस्थिति से, इतना अधिक और इतने प्रत्यक्ष रूप में प्रभावित हुआ कि इससे पूर्व कभी न हुआ था।

3.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

बीसवीं शताब्दी– हिन्दी साहित्य : नए संदर्भ– डा. लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय, हिंदी साहित्य भवन, प्रा. लि., इलाहाबाद।

आधुनिक साहित्य की भूमिका : डा. लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद।

आधुनिक हिंदी साहित्य की विचारधारा पर पाश्चात्य प्रभाव– डॉ. श्रीकृष्ण पुरोहित, उमा प्रकाशन, उदयपुर।

यथार्थवाद– डॉ. शिवकुमार मिश्र, प्रकाशन–दी मैकमिलन कंपनी ऑफ इंडिया, नई दिल्ली।

हिंदी का आधुनिक साहित्य– डॉ. सत्यकाम वर्मा, प्रकाशन–भारतीय साहित्य मंदिर, दिल्ली

हिंदी साहित्य की प्रवृत्तियाँ– डॉ. जयकिशन प्रसाद, प्रकाशन–विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा।

हिंदी कवियों में मार्क्सवादी चेतना– डॉ. जनेश्वर वर्मा, प्रकाशन–ग्रंथम कानपुर।

आधुनिक हिंदी साहित्य का इतिहास– डॉ. बच्चन सिंह, प्रकाशन–लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।

3.9 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) i) देखिए, भाग 3.2.1

   ii) देखिए, 3.2.2

2) देखिए, 3.2.3

3) देखिए, 3.2.4

4) अ–2, ब–3, स–1

बोध प्रश्न 2

1) देखिए, भाग 3.3.2

2) देखिए, भाग 3.3.2

3) देखिए, भाग 3.3.3

4) देखिए, भाग 3.3.4

5) देखिए, भाग 3.3.6

6) देखिए, भाग 3.3.8

7) देखिए, भाग 3.3.7

बोध प्रश्न 3

1) देखिए, भाग 3.5.1

2) देखिए, भाग 3.5.2

3) देखिए, भाग 3.5.3.

4) देखिए, भाग 3.5.4

5) देखिए, भाग 3.5.5

6) देखिए, भाग 3.5.6

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

7) क) वाक्य संख्या–3

ख) राजा राममोहन राय

ग) 1867 ई.

घ) स्वामी विवेकानंद

अभ्यास 1

1) i) नीत्शे

ii) क्रियात्मक शक्ति

iii) मद्रास

iv) जनार्दन भट्ट

2) i) जन–समूह को शिक्षित करने के लिए प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा को प्रोत्साहन दिया गया।

ii) उच्च शिक्षा के प्रोत्साहन हेतु विश्वविद्यालयों की स्थापना की गई।

3) महात्मा गांधी की मानवतावादी भावना के प्रमुख रूप हैं

अहिंसा, सत्याग्रह, अछूतोद्धार, हिंदू–मुस्लिम एक्य, आर्थिक समन्वय, ग्रामोद्धार और जमींदारी–विरोध।

इकाई 4 राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन का विकास

इकाई की रूपरेखा

4.0 उद्देश्य
4.1. प्रस्तावना
4.2 स्वाधीनता आंदोलन की पृष्ठभूमि
4.2.1 आधुनिक भारतीय राष्ट्रवाद से पहले
4.2.2 आधुनिक भारतीय राष्ट्रवाद का उदय
4.3 राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन का विकास
4.3.1 पहला चरण 1857 से 1905 तक
4.3.2 दूसरा चरण 1905 से 1919 तक
4.3.3 तीसरा चरण 1919 से 1947 तक
4.4 स्वाधीनता आंदोलन का व्यापक परिप्रेक्ष्य
4.4.1 संदर्भ : संस्कृति और समाज
4.4.2 संदर्भ : आधुनिक भारतीय साहित्य
4.5 मूल्यांकन
4.6 सारांश
4.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें
4.8 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

4.0 उद्देश्य

इस इकाई में हमने राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन का परिचय दिया है। इसमें स्वाधीनता आंदोलन के महत्व से तथा संस्कृति और समाज पर उसके व्यापक प्रभाव से आपको परिचित कराया जाएगा। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- भारतीय राष्ट्रवाद के उदय की पृष्ठभूमि से परिचित हो सकेंगे/सकेंगी;
- पराधीन भारत के लोगों की आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक स्थिति को समझ सकेंगी/सकेंगे;
- अंग्रेजों द्वारा भारत के आर्थिक शोषण के प्रभाव को स्पष्ट कर सकेंगे/सकेंगी;
- स्वाधीनता आन्दोलन के विकास–क्रम को तथा विकास–क्रम में आने वाले विभिन्न सामयिक कार्यक्रमों और आन्दोलनों को बता सकेंगी/सकेंगे;
- स्वाधीनता आन्दोलन की महत्वपूर्ण घटनाओं से परिचित हो सकेंगी/सकेंगे;
- स्वाधीनता आन्दोलन में हिस्सेदारी निभाने वाले महत्वपूर्ण व्यक्तियों, संगठनों की भूमिका का ठीक–ठाक आकलन कर सकेंगी/सकेंगे; और
- आधुनिक भारतीय साहित्य पर स्वाधीनता आन्दोलन के प्रभाव को समझ सकेंगी/सकेंगे और उसका मूल्यांकन कर सकेंगी/सकेंगे।

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

4.1 प्रस्तावना

इस इकाई में आप राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन के विकास का विभिन्न चरणों में अध्ययन करेंगे। राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन से संबंधित इस इकाई में हमनें 1857 के बाद के इतिहास का परिचय दिया है। 1857 से 1947 के बीच के इस आंदोलन को मुख्यतः तीन चरणों में विभाजित किया जा सकता है :

पहला चरण : 1857 से 1905 तक

दूसरा चरण : 1905 से 1919 तक

तीसरा चरण : 1919 से 1947 तक

इस अवधि में ब्रिटिश उपनिवेशवाद और अंग्रेजों द्वारा भारतीयों के शोषण के विरुद्ध राष्ट्रवादी व्यक्तियों और संगठनों द्वारा आन्दोलन चलाये गये। भारत की जनता में स्वतंत्रता के लिए नयी जागृति पैदा हुई। इन आन्दोलनों के हिंसक–अहिंसक दोनों रास्ते थे लेकिन आन्दोलन का मुख्य स्वर अहिंसा के पक्ष में था। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना और गांधी जी के नेतृत्व से इसी स्वर को बल मिला।

आपके लिए यह जानना आवश्यक है कि राष्ट्रीय स्वाधीनता आन्दोलन की पृष्ठभूमि क्या थी। आधुनिक भारतीय राष्ट्रवाद के उदय से पहले क्या स्थितियाँ थीं। उभारने वाले कारण क्या थे। हमने इस इकाई में ऊपर बताए गए आंदोलन के तीनों चरणों का भी संक्षिप्त लेखा–जोखा पेश किया है।

स्वाधीनता आंदोलन का प्रभाव हमारे समाज और संस्कृति पर किस रूप में पड़ा। इस पर भी इकाई में विचार किया गया है। इस परिप्रेक्ष्य में आधुनिक भारतीय साहित्य के विकास में राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन के प्रभाव पर भी रोशनी डाली गई है। अंत में स्वाधीनता आंदोलन के महत्व तथा उसके अवदान पर विचार किया गया है। आशा है इकाई को पढ़ने से आपको राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन के विकास को समझ सकेंगे।

4.2 स्वाधीनता आन्दोलन की पृष्ठभूमि

इस भाग में हम भारत में अंग्रेजों का राज कैसे स्थापित हुआ। इस राज का मूल चरित्र क्या था और इसने भारत का किस तरह शोषण किया, इस पर विचार करेंगे।

4.2.1 आधुनिक भारतीय राष्ट्रवाद से पहले

1707 ई. में औरंगजेब की मृत्यु के बाद से ही मुगल साम्राज्य लड़खड़ाने लगा था। शीघ्र ही उसने अपनी शक्ति और वैभव को खो दिया। अमीरों द्वारा कठपुतली बादशाह सिंहासन पर बैठाये, उतारे जाते थे। इस कमजोरी का लाभ उठाकर क्षेत्रीय और प्रांतीय शासकों ने अपनी स्वतंत्रता घोषित कर दी। इस प्रकार शक्ति का विकेन्द्रीकरण हो गया। इन शक्तियों में आपसी संगठन के अभाव में बाहरी आक्रमणों के समय उनके लिए गंभीर खतरा उपस्थित हो गया। इसी समय विभिन्न यूरोपीय कम्पनियों (पुर्तगाली, डच, अंग्रेज, फ्रांसीसी) का व्यापारी वर्ग के रूप में भारत में आगमन हुआ। अन्ततः सभी पर ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कम्पनी का वर्चस्व स्थापित हो गया। धीरे–धीरे कम्पनी का लोभ बढ़ता गया और उसने स्थानीय शासकों की कमजोरी और आपसी ईर्ष्या का लाभ उठाते हुए उनके शासन में हस्तक्षेप करना आरंभ कर दिया।

1757 के प्लासी युद्ध और 1764 के बक्सर युद्ध में भारतीय शक्तियों के पराजित होने के बाद से ही भारत में अंग्रेजी व्यापारिक संस्था ईस्ट इंडिया कम्पनी का एक राजनीतिक शक्ति के रूप में उदय हुआ। धीरे–धीरे समस्त भारतीय शक्तियों को समाप्त करती हुई वह पूरे भारत की शासक बन गयी। सम्पूर्ण रूप में भारत का शासक हो जाने के बाद भी ब्रिटिशों का मूल चरित्र विदेशी ही रहा। उन्होंने न भारत को अपना देश माना, न उसके विकास के लिए ठोस प्रयत्न किये। इसके पूर्व जिन तुर्कों ने भारत को जीता था वे यहाँ के निवासी हुए और इन्होंने इस देश को बनाने सँवारने में सीधी रुचि ली। ब्रिटिश शासकों ने अपने आर्थिक लाभों को ही प्राथमिकता दी और भारतीय किसानों, शिल्पकारों, दस्तकारों का अतिशय शोषण किया।

4.2.2 आधुनिक भारतीय राष्ट्रवाद का उदय

आधुनिक भारतीय राष्ट्रवाद का जन्म ब्रिटिश आधिपत्य की चुनौती के रूप में हम अंग्रेजों द्वारा शासित होना ही भारत के आर्थिक पिछड़ेपन का आधार बनता गया स्वाधीनता आन्दोलन का आधार मुख्यतः यही तथ्य और संदर्भ था। विदेशी शासन भारत के आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, बौद्धिक और राजनीतिक विकास में प्रमुख बाधक तत्व बन चुका था। किसानों की उपज का एक बड़ा हिस्सा लगान के नाम पर ले लिया जाता था। इस कार्य में अंग्रेजों के सहयोगी व जमींदार, भूस्वामी, व्यापारी और सूदखोर थे जो किसानों का शोषण करते ओर धोखा देकर उनकी जमीन हथिया लेते। किसानों के अंसतोष को पुलिस और सेना द्वारा दबा दिया जाता था। नवशिक्षित भारतीयों का उभरता वर्ग अपने देश की राजनीतिक–आर्थिक स्थिति को समझने के लिए नये–नये प्राप्त आधुनिक ज्ञान का प्रयोग कर रहा था। 1857 में जिन लोगों ने ब्रिटिश शासन का समर्थन इस आशा में किया था कि वह भारत को आधुनिक तथा औद्योगिक देश बनायेगा, उन्हें भी अब निराश होना पड़ा। भाषण, प्रेस तथा व्यक्ति की स्वतंत्रता पर प्रतिबंध लगते जा रहे थे। अंग्रेजों ने भारतीयों को स्वशासन की दृष्टि से अयोग्य घोषित कर दिया। साम्राज्यवादी सरकार की व्यापार, चुंगी, कर तथा यातायात संबंधी नीतियाँ नये तथा कमजोर भारतीय पूंजीपति वर्ग के विकास में बाधक थीं। उन्हें अधिक सुविधा प्राप्त विदेशी पूँजीपतियों से कड़ी प्रतिस्पर्धा करनी पड़ती थी। भारत में विदेशी शासन का अंत तक समर्थक जमींदार, भूस्वामी तथा राजे–महाराजाओं का वह वर्ग बना रहा जिनके हित विदेशी शासकों के हितों से सम्बन्धित थे। इन्हीं परिस्थितियों में आधुनिक भारतीय राष्ट्रवाद की सच्ची भावना का विकास हुआ। जनता के हृदय में देशभक्ति की भावना का उभार इन्हीं स्थितियों के दबाव से संभव हुआ।

बोध प्रश्न–1

नोटः नीचे दिये प्रश्नों का सही उत्तर दीजिए और अपने उत्तर इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से मिलाइए।

1. अंग्रेजों के भारत–आगमन का मूल या प्राथमिक उद्‌देश्य क्या था :

   क) उपनिवेश बनाना

   ख) व्यापार करना

   ग) शासन करना

   घ) भारतीयों की सहायता करना ( )

2. आधुनिक भारतीय राष्ट्रवाद का जन्म किस रूप में हुआ ?

   क) सांस्कृतिक चेतना के उभार के रूप में

   ख) ब्रिटिश आधिपत्य की चुनौती के रूप में

   ग) सुधारवाद की प्रेरणा के रूप में ( )

3. नवशिक्षित भारतीयों का वर्ग नये–नये प्राप्त आधुनिक ज्ञान का प्रयोग किसलिये कर रहा था?

   क) सांस्कृतिक चेतना के प्रचार–प्रसार के लिए।

   ख) अपनी स्वतंत्रता की अनुभूति के लिए।

   ग) अपने देश की राजनीतिक–आर्थिक वास्तविकता को समझने के लिए। ( )

4.3 राष्ट्रीय स्वाधीनता आन्दोलन का विकास

वैसे तो 1757 ई. से ही भारत में अंग्रेजों के आधिपत्य के विरुद्ध संघर्ष आरंभ हो गया था। सन्यासी, फकीर आंदोलनों तथा किसानों के अन्य आंदोलनों ने अंग्रेजों के आधिपत्य को समय–समय पर चुनौती दी पर ये आंदोलन न तो अपने चरित्र में राष्ट्रीय थे और न ही उनके लक्ष्य स्वतंत्रता प्राप्त करना था, वरन् वे स्वतः स्फूर्त विरोध आंदोलन थे। लेकिन इनका महत्व यह है कि इनसे साबित होता है कि भारतीयों ने अंग्रेजों का प्रभुत्व कभी स्वीकार नहीं किया।

4.3.1 पहला चरण 1857 से 1905 तक

मार्क्स एवं एंगेल्स ने 1857 के भारतीय विप्लव का अध्ययन करते हुए माना था कि यह विप्लव उत्पीड़ित राष्ट्रों के उपनिवेशवाद विरोधी संघर्ष का अभिन्न अंग था। 19 वीं शताब्दी में भारत का एकीकरण हो चुका था और वह एक राष्ट्र के रूप में उभर चुका था। इसलिए भारतीय जनता में राष्ट्रवादी भावना का विकास स्वाभाविक था। अंग्रेजों ने धीरे–धीरे पूरे देश में सरकार की एक समान आधुनिक प्रणाली लागू कर दी थी। ग्रामीण आत्मनिर्भर अर्थव्यवस्था के विनाश और अखिल भारतीय स्तर पर उद्योग तथा व्यापार का प्रसार हो जाने से देश के भिन्न–भिन्न भागों में रहने वाले लोगों के आर्थिक हित परस्पर जुड़ गये थे। रेल, तार तथा केन्द्रीकृत डाक व्यवस्था ने भी देश की जनता और नेतृत्व सूत्रों के आपसी संपर्क को प्रोत्साहित किया। शिक्षा के आधुनिक पश्चिमी रूप के प्रचार प्रसार के कारण भारतीयों ने बुद्धिसंगत आधुनिक, धर्मनिरपेक्ष, जनतांत्रिक तथा राष्ट्रवादी दृष्टिकोण अपनाया। रूसो, जान स्टुअर्टमिल, तथा अन्य पाश्चात्य विचारक उनके राजनीतिक मार्गदर्शक बन गये। विदेशी दासता के अपमान की पीड़ा भरी अनुभूति इसी आधुनिक शिक्षित वर्ग को हुई। आधुनिक शिक्षा प्रणाली ने भारतीयों को इस दृष्टि से तैयार किया कि वे राष्ट्रीय आन्दोलन का नेतृत्व कर सकें और उसे जनतांत्रिक आधार दे सकें। इस आधुनिक शिक्षा और शिक्षा माध्यम अंग्रेजी के साथ भारतीय जनता का दुहरा सम्बन्ध बना। एक ओर अंग्रेजी विभिन्न क्षेत्रों की जनता को जोड़ने में सहायक हुई, दूसरी ओर शिक्षित नगर जनों और ग्रामीण अशिक्षित या अल्पशिक्षित जनों के बीच व्यवधान पैदा करने लगी। वस्तुतः साधारण जनता में आधुनिक विचारों का प्रसार विकासमान भारतीय भाषाओं, उनमें विकसित हो रहे साहित्य तथा भारतीय भाषाओं के लोकप्रिय संचार माध्यम (प्रेस) द्वारा संभव हुआ। उन्नीसवीं सदी उत्तरार्द्ध के पत्रों ने सरकारी नीतियों की नियमित आलोचना के लिए उपयुक्त मंच सुलभ

किया। इस समय लिखे जा रहे राष्ट्रीय साहित्य ने भी राष्ट्रीय चेतना के प्रसार में योगदान दिया। बंगला में बंकिमचंद्र, रवींद्रनाथ ठाकुर, मराठी में विष्णुशास्त्री चिपलुणकर, तमिल में सुब्रमन्यमभारती, उर्दू में अल्ताफ हुसैन हाली तथा हिन्दी में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का योगदान इस दृष्टि से ऐतिहासिक महत्व का है।

उन्नीसवीं सदी का उत्तरार्द्ध राष्ट्रवादी चेतना के क्रमिक विकास और संगठित राष्ट्रीय आन्दोलन के आरंभिक उदय का दौर है। राजा राममोहन राय ऐसे पहले भारतीय नेता थे जिन्होंने राजनैतिक सुधार के लिए आन्दोलन का सूत्रपात किया। उन्होंने प्रेस की स्वतंत्रता, जूरियों द्वारा मुकदमों की सुनवाई, कार्यपालिका और न्यायपालिका के अलगाव, उच्चतर पदों पर भारतीयों की नियुक्ति तथा भारत में औद्योगिक विकास के लिए संघर्ष किया। स्वाधीनता, जनतंत्र, राष्ट्रीयता उनकी सुधार चेतना के प्रमुख मुद्दे थे। भारत में पहली राजनीतिक संस्था 1838 में कलकत्ता में 'लैंड होल्डर्स सोसायटी' नाम से बनी। इस तरह की अन्य संस्थाएं थीं–'ब्रिटिश इंडिया सोसायटी' 'ब्रिटिश इंडियन एसोसिएशन' मद्रास नेटिव एसोसिएशन'। इन सभी पर अभिजात वर्ग का प्रभुत्व था। उन्होंने ब्रितानी भारतीय शासन के सामने राजनीतिक आर्थिक मांगे रखीं। जैसे प्रशासनिक सेवाओं में अधिक संख्या में भारतीयों की नियुक्ति आदि। 1858 के बाद के दौर में शिक्षित भारतीय भारत में ब्रिटिश नीतियों के मुखर आलोचक बन गये। 1866 में लंदन में दादाभाई नौरोजी ने भारतीय प्रश्नों पर विचार विमर्श करने और ब्रितानी जनता के पत्र को प्रभावित करने के उद्देश्य से 'ईस्ट इंडिया एसोसिएशन' की स्थापना की। भारत के बड़े नगरों में उसकी शाखाएँ स्थापित की गयीं। दादाभाई नौरोजी ने अपना पूरा जीवन राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रति समर्पित कर दिया। अपने अर्थशास्त्रीय अध्ययन में उन्होंने दिखाया कि भारत की गरीबी का कारण अंग्रेजों द्वारा उसका शोषण और यहाँ का धन ब्रिटेन भेजना था। भारतीय धन के विदेश जाने की वही पीड़ा भारतेन्दु हरिश्चंद्र जैसे लेखकों ने अनुभव की। स्वदेशी के सिद्धांत का प्रथम प्रयोग 19वीं शताब्दी के सातवें दशक में भारतीय उद्योग को ब्रितानी उत्पादकों के हमले से बचाने की प्रणाली के रूप में सामने आया। सुरेन्द्र नाथ बैनर्जी और आनंद मोहन बोस के नेतृत्व में 1876 में 'इंडियन एसोसिएशन' का गठन हुआ। 1870 में जस्टिस रानाडे, गणेश वासुदेव जोशी, एस.एच चिपुलुणकर तथा अन्य लोगों ने 'पूना सार्वजनिक सभा' की स्थापना की।

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना

विदेशी शासन और शोषण के विरुद्ध राष्ट्रीय स्तर पर एक अखिल भारतीय राजनीतिक संगठन की स्थापना का समय आ चुका था। भारतीय नागरिक सेवा के अवकाश प्राप्त अधिकारी ए.ओ. ह्यूम ने प्रमुख भारतीय नेताओं के समर्थन से 1885 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के पहले अधिवेशन का आयोजन किया जिसकी अध्यक्षता वोमेश चंद्र बैनर्जी ने की। राष्ट्रीय कांग्रेस के घोषित उद्देश्य थे : देश के विभिन्न भागों के राष्ट्रवादी राजनीतिक कार्यकर्ताओं के बीच मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध विकसित करना, जाति, धर्म, प्रांत के भेद से परे राष्ट्रीय एकता की भावना विकसित करना, जनप्रिय मांगों को सरकार के सामने रखना देश में जनमत को प्रशिक्षित और संगठित करना। कहा जाता है कि ह्यूम का उद्देश्य था राष्ट्रीय कांग्रेस को प्रोत्साहन देते हुए शिक्षित भारतीयों और किसानों के विरोध अथवा असंतुष्ट मानसिकता को शांत रखना। पर भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस को उत्तरोत्तर भारतीय जनता की राष्ट्रीय भावाना के अनुरूप अपनी गतिविधियाँ निर्धारित करनी थीं।

प्रारंभिक दौर के राष्ट्रवादियों ने साम्राज्यवाद का आर्थिक विश्लेषण करते हुए आर्थिक शोषण के प्रतिरोध का संकल्प किया। भारतीय उद्योगों को बढ़ावा देने के लिए स्वदेशी अर्थात् भारतीय मालों के उपयोग तथा विदेशी चीजों के बहिष्कार की मांग की गयी। 1896 में पूना

तथा महाराष्ट्र के अन्य नगरों में विदेशी वस्त्रों की होली जलायी गयी। किसानों पर करों का बोझ कम करने, मालगुजारी घटाने, नमक कर समाप्त करने तथा बागान मजदूरों के काम की परिस्थितियों में सुधार लाने के लिए प्रशासन पर लगातार दबाव डाला गया।

1885 से 1892 तक भारतीय राष्ट्रवादी, विधायी परिषदों के प्रसार और सुधार की मांग करते रहे। फलस्वरूप 1892 में भारतीय परिषद कानून पारित करना पड़ा। आगे ब्रिटिश साम्राज्य के अन्दर रह कर ही स्वशासन का दावा पेश किया गया। कांग्रेस के मंच से इसकी पहल गोखले और नौरोजी ने की। आर्थिक दृष्टि से उच्च पदों पर यूरोपीय एकाधिकार को भी चुनौती दी गयी। 1897 में बम्बई की सरकार ने बालगंगाधर तिलक तथा अन्य नेताओं और समाचार पत्र–संपादकों को सरकार के विरुद्ध असंतोष को बढ़ावा देने के जुर्म में गिरफ्तार कर लिया। मुकदमा चलाकर उन्हें कैद की लम्बी सजाएँ दी गयीं। नाट् बंधु के रूप में विख्यात पूना के दो नेताओं को बिना किसी मुकदमे के अंडमान भेज दिया गया। इस तरह के दमन को देशव्यापी विरोध का सामना करना पड़ा। बाल गंगाधर तिलक की छवि महाराष्ट्र से निकलकर अखिल भारतीय नेता की हो गयी। जनता ने उन्हें 'लोकमान्य' की उपाधि दी।

1905 तक भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन पर नरमपंथी राष्ट्रवादियों का ही प्रभुत्व था। नरमपंथियों की राजनीतिक कार्य पद्धति कानून की सीमा में रहकर संवैधानिक आन्दोलन चलाने की थी। वे भारतीय जनता में राजनीतिक चेतना और राष्ट्रीय भावना को विकसित करते हुए एक शक्तिशाली जनमत तैयार करना चाहते थे। इसी क्रम में भारतीय पक्ष को सामने रखने के लिए प्रमुख भारतीयों के दल ब्रिटेन भेजे गये। 1889 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की एक ब्रिटिश समिति बनायी गयी। 1890 से 'इंडिया' नामक पत्र का प्रकाशन आरंभ हुआ। सब मिलाकर फिलहाल योजना ब्रिटिश शासन के चरित्र के रूपांतरण की ही थी जो भारतीय जनता को आधुनिक विकास के रास्ते पर ले जा सके।

प्रारंभिक दौर के राष्ट्रीय आन्दोलन की बुनियादी कमजोरी उसके सामाजिक आधार की संकीर्णता में थी। जनता व्यापक रूप से आन्दोलन के प्रति आकृष्ट नहीं हुई थी। उसका प्रभाव क्षेत्र नगरों तक और अधिक प्रबुद्ध या शिक्षित वर्ग तक ही सीमित था। नरमपंथी नेताओं ने जनता के सामाजिक–सांस्कृतिक–राजनैतिक पिछड़ेपन को ही देखा। वे यह देख नहीं सके कि जनता के पास ही साम्राज्यवाद विरोधी लम्बा संघर्ष छेड़ने की अकूत संकल्पशक्ति थी। पर आगे कांग्रेस ब्रिटिश अधिकारियों के हाथों की कठपुतली बनने के लिए तैयार न थी। आरंभिक राष्ट्रीय आन्दोलन ने अपनी सीमाओं में भारतीय जनता को राष्ट्रीय जागृति के लिए तैयार किया। जनतंत्र, नागरिक स्वतंत्रता, धर्मनिरपेक्षता तथा राष्ट्रवाद के विचारों को लोकप्रिय बनाया, भारत में ब्रिटिश उपनिवेशवाद के चरित्र को निर्ममतापूर्वक उजागर किया। उन्होंने जो जमीन बनायी उसी पर आगे राष्ट्रीय आन्दोलन और अधिक विकसित हुआ।

4.3.2 दूसरा चरण 1905 से 1919 तक

उन्नीसवीं सदी के अंत तक भारतीय राष्ट्रवादियों का आत्मविश्वास बहुत बढ़ गया था। तिलक, अरविंद घोष और विपिन चंद पाल ने राष्ट्रवादियों का आह्वान किया कि वे भारत की जनता के संघर्षशील चरित्र को पहचानें। स्पष्ट रूप से अनुभव किया जा रहा था कि अब राष्ट्रीय आन्दोलन को शिक्षित वर्ग से निकलकर बृहत्तर जनता तक फैल जाना चाहिए। शिक्षित भारतीयों की संख्या और बेरोजगारी में वृद्धि होने से यही शिक्षित वर्ग उग्र राष्ट्रवाद का प्रबल अनुयायी सिद्ध हुआ। आयरलैंड, मिश्र, तुर्की और जापान के क्रांतिकारी आन्दोलनों ने भारतीयों को विश्वास दिया कि यदि जनता एकजुट और बलिदान के लिए तैयार हो तो वह शक्तिशाली निरंकुश सरकारों के लिए चुनौती बन सकती है।

उग्र राष्ट्रवाद का अस्तित्व : राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रारंभ से उग्र राष्ट्रवाद का एक सम्प्रदाय देश में मौजूद था जिसके प्रतिनिधि बंगाल में राजनारायण बोस और अश्विनी कुमार दत्त तथा महाराष्ट्र में विष्णुशास्त्री चिपलुणकर जैसे नेता थे। इस सम्प्रदाय के सबसे महत्वपूर्ण नेता थे बालगंगाधर तिलक जिन्होंने अपना पूरा जीवन राष्ट्रीय स्वाधीनता आन्दोलन के प्रति समर्पित कर दिया था। न्यू इंग्लिश स्कूल (बाद में फर्ग्यूसन कॉलेज) की स्थापना, अंग्रेजी में 'मराठा' तथा मराठी में 'केसरी' नामक पत्रों का प्रकाशन 'गणपति' और 'शिवाजी' जैसे उत्सवों का आयोजन विशेष रणनीति के अंग थे। 1896–97 में उन्होंने महाराष्ट्र के अकालपीड़ित किसानों को संगठित किया कि वे मालगुजारी न चुकायें। विपिन चंद्र पाल, अरविन्द घोष, लाला लाजपत राय उग्र राष्ट्रवाद को प्रोत्साहित करने वालों में थे। 1905 तक भारत में अनेक ऐसे नेता थे जो स्वभाव से ही उग्र असहिष्णु तथा विद्रोही थे।

बंगाल का विभाजन : 1905 में बंगाल के विभाजन के साथ ही भारत के राष्ट्रीय आंदोलन का दूसरा चरण प्रारंभ होता है। 20 जुलाई 1905–कर्जन के आदेश से बंगाल बँट चुका था। वास्तविक उद्‌देश्य था बंगाल में राष्ट्रवाद के प्रसार को नियंत्रित करना। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस और बंगाल के राष्ट्रवादियों ने इस विभाजन का डटकर विरोध किया। बंगाल की समस्त जनता विरोध में उठ खड़ी हुई। बंगाल के राष्ट्रीय नेताओं के प्रयत्न से बंगभंग विरोधी–आन्दोलन के साथ स्वदेशी आन्दोलन और बहिष्कार आन्दोलन में तेजी आयी। रवीन्द्र नाथ ठाकुर के प्रसिद्ध गीत 'आमार सोनार बांग्ला' की यही पृष्ठभूमि है जिसे बंगाल की जनता सड़कों पर गाती। उल्लेखनीय है कि 1971 में बंगला देश ने इसी को अपना राष्ट्रीय गीत स्वीकार किया। 'बन्देमातरम' (बंकिमचंद्र चट्‌टोपाध्याय) रातों रात बंगाल में लोकप्रिय हो गया। वही राष्ट्रीय आन्दोलन के आभार के दौर में राष्ट्रगान बना। स्वदेशी के पक्ष में आत्मनिर्भरता का मंत्र फूंकने वालों में प्रमुख थे रवीन्द्रनाथ ठाकुर, रजनीकांत सेन, सैयद अबू मुहम्मद, मुकंददास आदि। ब्रिटिश शासन की दमन नीति में भी तेजी आ चुकी थी। लाला लाजपत राय, अश्विनीकुमार दत्त जैसे नेताओं को देश से निष्कासित कर दिया गया। 1908 में तिलक को भी देश निकाला दिया गया। वे मांडले भेजे गये। उग्र राष्ट्रवादियों ने स्वदेशी और विभाजन विरोधी आन्दोलन को राष्ट्रव्यापी जन आन्दोलन बनाने का प्रयत्न किया। अरबिन्द घोष ने कहा–'राजनीतिक स्वंतत्रता किसी भी राष्ट्र की प्राणवायु है।' अब भारत की पूर्ण स्वतंत्रता राष्ट्रीय आन्दोलन का मुख्य लक्ष्य थी। भारत के राष्ट्रीय स्वाधीनता आन्दोलन का यह एक क्रांतिकारी मोड़ था।

क्रांतिकारी संगठनों की भूमिका : 1905 के बाद बंगाल के 'सन्ध्या' और 'युगान्तर' तथा महाराष्ट्र के 'काल' आदि समाचार पत्र क्रान्तिकारी आतंकवाद को समर्थन देने लगे थे। 1908 में खुदीराम बोस तथा प्रफुल्ल चन्द्र चाकी ने मुजफ्फरपुर में जज फिंग्सफोर्ड के घर में एक बम फेंका। प्रफुल्ल चाकी ने स्वयं को गोली मार ली। खुदीराम को फाँसी दे दी गयी। क्रांतिकारियों की गुप्त संस्थाओं में प्रमुख थी– 1906 में बारीन्द्र घोष द्वारा गठित 'अनुशीलन समिति'। घोष ने दिल्ली में वायसराय हाडिंग पर भी बम फेंका। लंदन में श्याम जी कृष्णवर्मा, विनायक दामोदर सावरकर और लाला हरदयाल ने क्रांतिकारी गतिविधियों का संचालन किया।

विभाजन के विरोध में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने बंगाल के स्वदेशी आन्दोलन और बहिष्कार आन्दोलन का समर्थन किया। नरमपंथी और गरमपंथी राष्ट्रवादियों के मतभेद प्रकट हुए। शासन को इसका लाभ मिल रहा था। गरमपंथियों के दमन में तेजी आयी। नरमपंथियों को अपनी तरफ मिलाने की कोशिश की गयी। कुछ संवैधानिक सुधारों की घोषणा भी नरमपंथियों को अनुकूल करने के लिए की गयी। 1911 बंगभंग को रद्द करके पश्चिमी और

पूर्वी बंगाल को फिर एक कर दिया गया। बिहार और उड़ीसा नामक दो प्रांत अलग बना दिये गये। केन्द्र सरकार की राजधानी कलकत्ता से दिल्ली स्थानान्तरित कर दी गयी।

देश में बढ़ रही राष्ट्रवादी भावना के प्रसार के कारण कांग्रेस द्वारा 1916 के लखनऊ अधिवेशन में कांग्रेस के दोनों गुटों को फिर निकट लाने की कोशिश की गयी। कांग्रेस मुस्लिम लीग को भी एक दूसरे के निकट लाने के लिए तिलक और मुहम्मद अली जिन्ना ने प्रयत्न किये। शिक्षित मुस्लिम युवक उग्र राष्ट्रवाद की दिशा में आगे बढ़ रहे थे। 1914 में सरकार ने अबुलकलाम आजाद के पत्र 'अल–निलाल' और मौलाना मुहम्मद अली के 'कामरेड' को बंद कर दिया। कुछ सुधारों की फिर घोषणा की गयी पर भारतीय राष्ट्रवाद उससे संतुष्ट न था।

यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि राष्ट्रवाद की मुख्यधारा के साथ–साथ साम्प्रदायिकता के लक्षण भी जहाँ–तहाँ दिखाई दे रहे थे। 1857 के विद्रोह में हिन्दू–मुसलमान साथ–साथ लड़े थे। इधर ब्रिटिश अधिकारियों ने धार्मिक आधार पर उन्हें बाँटने की कोशिश की। 1880 के आसपास सैयद अहमद खान ने अपने पूर्ववर्ती प्रगतिशील विचारों को छोड़कर घोषणा की कि हिन्दुओं और मुसलमानों के राजनीतिक हित एक दूसरे से अलग हैं। शिक्षा, व्यापार उद्योग में मुसलमानों के राजनीतिक हित एक दूसरे से अलग हैं। शिक्षा, व्यापर, उद्योग में मुसलमानों का पिछड़ापन भी अलगाववादी प्रवृत्ति के लिए एक प्रमुख कारण था। साम्प्रदायिक इतिहासकार भी भारतीय इतिहास के मध्यकाल की व्याख्या 'मुस्लिम काल' के रूप में कर रहे थे और इस प्रकार भारतीय साँझी संस्कृति के विरुद्ध अलगाववाद को बढ़ावा दे रहे थे। यह भी कम दुर्भाग्यपूर्ण नहीं है कि उग्र राष्ट्रवादियों के वक्तव्य अतिरिक्त 'हिन्दू रंग' लिये हुए थे। तिलक ने शिवाजी और गणपति उत्सवों को प्रतिष्ठा दी। आतंकवादी 'काली' के समक्ष शपथ लेते थे। धर्म और राजनीति का यह मिश्रण मुसलमानों में भ्रम फैला सकता था। फिर भी हसरत मोहानी और अबुल कलाम आजाद जैसे मुस्लिम बुद्धिजीवी राष्ट्रीय आन्दोलन में शरीक थे क्योंकि उसका मुख्य चरित्र धर्मनिरपेक्ष ही बना रहा। गांधी जी, चित्तरंजन दास, मोतीलाल नेहरू, जवाहरलाल नेहरू, अबुलकलाम आजाद, खान अब्दुल गफ्फार खान, सुभाषचंद्र बोस, सरदार पटेल, राजेन्द्र प्रसाद, चक्रवर्ती राजगोपालचारी के आ जाने पर राष्ट्रीय आन्दोलन अधिक मजबूत और अधिक धर्मनिरपेक्ष हुआ। फिर भी साम्प्रदायिकता निर्मूल न हुई। इसी समय कतिपय हिन्दू सम्प्रदायवादी मध्यकाल में मुसलमानों द्वारा हिन्दुओं के उत्पीड़न का प्रश्न उठा रहे थे। बिहार तथा संयुक्त प्रांत में भाषा के सवाल को साम्प्रदायिक रंग देने की कोशिश की जा रही थी। 1909 में पंजाब हिन्दू सभा की स्थापना इसी साम्प्रदायिकता की एक कड़ी है।

स्वराज्य मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है : 1915–16 में दो होम रूल लीगों की स्थापना हुई जिनमें एक के नेता थे लोकमान्य तिलक और दूसरे की श्रीमती एनी बेसेंट और एस. सब्रमण्यम अय्यर। उन्होंने पूरे देश में यह मांग प्रचारित की, कि युद्ध के बाद भारत को स्वशासन का अधिकार दिया जाए। इसी आन्दोलन के दौरान तिलक ने अपना प्रसिद्ध नारा दिया : स्वराज्य मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है। कांग्रेस की निष्क्रियता से खिन्न अनेक नरमपंथी भी इस उग्र आंदोलन में शामिल हो गये। 1913 में अमरीका, कनाडा में बसे भारतीय क्रांतिकारियों ने 'गदर पार्टी' की स्थापना की जिसके प्रमुख नेताओं में थे–लाला हरदयाल, मुहम्मद बरकतुल्लाह, भगवान सिंह, रामचंद्र। गदरपंथियों ने सुदूर पूर्व, दक्षिण पूर्वी एशिया और सम्पूर्ण भारत में सैनिकों से सम्पर्क करके अनेक रेजीमेन्टों को विद्रोह के लिए तैयार किया। पंजाब में सशस्त्र विद्रोह के लिए 21 फरवरी 1915 की तिथि निश्चित की गयी। दुर्भाग्य से इस योजना का पता ब्रिटिश अधिकारियों को पहले ही लग गया। उन्होंने व्यापक स्तर पर गिरफ्तारियाँ करके कैद या फांसी की सजा दी। 1915 में एक असफल क्रांतिकारी

प्रयास में जतीन मुखर्जी पुलिस मुठभेड़ में मारे गये। इस समय भारत से बाहर क्रांतिकारी गतिविधियों का संचालन करने वालों में प्रमुख थे–रासबिहारी बोस, राजा महेन्द्र प्रताप, भाई परमानंद, बाबा गुरमुख सिंह आदि। उन्होंने समाजवादियों और साम्राज्य विरोधी शक्तियों का समर्थन भारत की स्वतंत्रता के लिए प्राप्त किया। राजनीति से दूर रहने वाली 'सरस्वती' (संपादक : महावीर प्रसाद द्विवेदी) पत्रिका ने इसी दौर में दुनिया के अनेक देशों में जारी स्वाधीनता संग्राम से सम्बन्धित टिप्पणियाँ प्रकाशित की।

4.3.3 तीसरा चरण 1919 से 1947 तक

प्रथम विश्व युद्ध (1914–18) के दौरान विदेशी आयात बंद हो जाने के कारण जिन भारतीय उद्योगों को बहुत प्रोत्साहन मिला था, वे युद्ध बंद होने के बाद घाटे के कारण बंद होने लगे। अब फिर से विदेशी पूँजी का भारत में निवेश बड़े पैमाने पर होने लगा। भारतीय समाज के सभी वर्गों को आर्थिक कठिनाइयों का अनुभव हो रहा था। प्रथम महायुद्ध के बाद मित्र राष्ट्रों ने न केवल अपने उपनिवेशों को स्वतंत्रता देने का वचन भुला दिया, बल्कि जर्मनी और तुर्की के जीते गये क्षेत्रों को आपस में बाँटकर उपनिवेशवाद को बढ़ावा ही दिया। इस दौर में उपनिवेशों की जनता के मन से गोरों की श्रेष्ठता का डर दूर होने लगा। 1917 में लेनिन के नेतृत्व में रूस में हुई बोल्शेविक क्रांति के द्वारा भी राष्ट्रीय आन्दोलनों को काफी प्रेरणा मिली। जार का तख्ता पलटकर विश्व के प्रथम समाजवादी राज्य की स्थापना की गयी थी। इस क्रांति को जनता के भीतर छिपी अथाह शक्ति से सम्बद्ध करके ही देखा गया। अब भारत के साथ एशिया और अफ्रीका के देशों में भी राष्ट्रवादी आन्दोलन तेजी से आगे बढ़ा।

सरकार विरोधी भावनाओं में हो रही वृद्धि से निपटने के लिए ब्रिटिश सरकार के छूट और दमन नीति के अंतर्गत 'मांटेग्यू चेम्सफोर्ड' सुधारों का उपयोग किया। 1919 का भारत सरकार अधिनियम बनाया गया। इसके अन्तर्गत प्रांतीय विधायी परिषद का आकार बढ़ाने, उसके अधिकांश सदस्यों के निर्वाचन तथा दुहरी शासन प्रणाली के अंतर्गत प्रांतों को अधिक अधिकार देने का प्रावधान था। पर कांग्रेस ने सुधार के ऐसे प्रस्तावों को 'निराशाजनक' बताकर प्रभावी स्वशासन की माँग रखी। सरकार ने सुधार का प्रस्ताव रखने के साथ ही दमन की कार्रवाई भी जारी रखी। मार्च 1919 का रौलेट ऐक्ट इसका उदाहरण था जिससे सरकार को अधिकार दे दिया कि वह किसी भी भारतीय को बिना मुकदमा चलाये जेल में बंद कर सके। इसके विरुद्ध उपजे असंतोष ने व्यापक आन्दोलन का रूप ले लिया। इसी समय महात्मा गांधी भारतीय राजनीतिक आन्दोलन में उभर कर सामने आये और शीघ्र ही उनके हाथों में राष्ट्रीय आन्दोलन का नेतृत्व आ गया। इसके पहले उन्होंने दक्षिण अफ्रीका में नस्लवाद से संघर्ष करते हुए असहयोग और सत्याग्रह जैसे नये अस्त्रों का आविष्कार तथा प्रयोग किया था जिसे भारत में अंग्रेज शासकों के विरुद्ध आजमाने की घड़ी आ गयी थी। गांधी जी पहली बार भारतीय किसानों को राष्ट्रीय आन्दोलन की मुख्यधारा में ला सके। अब समूची जनता आन्दोलन में शामिल थी।

गांधी जी के नेतृत्व में रौलेट ऐक्ट का विरोध करने के लिए फरवरी 1919 में सत्याग्रह सभा का गठन हुआ जिसके सदस्यों द्वारा कानून का उल्लंघन करने, गिरफ्तारी देने और जेल जाने की शपथ ली गयी। इसी समय खादी भी ब्रिटिश शासन के विरोध का प्रतीक बनी। मार्च–अप्रैल 1919 में आन्दोलन में और तेजी आयी। गांधी जी ने 6 अप्रैल 1919 को बड़े पैमाने पर हड़ताल का आह्वान किया। सरकार ने इस व्यापक जन प्रतिरोध का सामना करने के लिए आधुनिक इतिहास का जघन्यतम अपराध किया। 13 अप्रैल 1919 को अमृतसर (पंजाब) में जनता रौलेट ऐक्ट का विरोध करने वाले सैफुद्दीन किचलू जैसे अपने लोकप्रिय नेताओं की गिरफ्तारी का विरोध करने के उद्देश्य से बड़ी संख्या में (जिसमें स्त्रियों बच्चों

की संख्या कम न थी) जलियाँवाला बाग में एकत्र हुई। अमृतसर के सैनिक कमांडर जनरल डायर ने बाग को घेर कर सैनिक टुकड़ी को भीड़ पर राइफलों मशीनगनों से गोली बरसाने का आदेश दिया। यह सबसे बर्बर हत्याकांड था। पंजाब में मार्शल लॉ लगाकर और भी बर्बर अत्याचार किये गये। विरोध में कवि रवीन्द्र नाथ ठाकुर ने सरकार द्वारा दी गयी 'नाइट' की उपाधि लौटा दी।

गांधी जी की राजनीतिक गतिविधियाँ इस बीच राष्ट्रीय आन्दोलन की दिशा निर्धारित करने वाली थीं। 1917 में गांधी जी ने सत्याग्रह का पहला प्रयोग चम्पारन, बिहार में किया था जहाँ नील उत्पादक किसान अपने हित तथा अधिकारों के लिए संघर्ष कर रहे थे। गांधी जी ने अहमदाबाद में मजदूर आन्दोलन का नेतृत्व किया। गुजरात के खेड़ा जिले में किसानों की फसल नष्ट हो जाने पर लगान न देने के लिए तैयार किया। इसी संघर्ष के दौरान सरदार बल्लभभाई पटेल गांधी जी के अनुयायी बने। गांधी जी जनता के जीवन से अपनी जीवन पद्धति को एकाकार कर चुके थे। उनके उद्देश्यों में हिन्दू मुस्लिम एकता, छुआछूत विरोधी संघर्ष, स्त्रियों की सामाजिक स्थिति में सुधार जैसे संकल्प शामिल थे। इस नयी विचारधारा का प्रभाव साहित्य और संस्कृति पर व्यापक रूप से देखा गया।

साम्राज्यवाद के आलोचक अली बंधुओं (मुहम्मद अली तथा शौकत अली), मौलाना आजाद, हसरत मोहानी के नेतृत्व में गठित खिलाफत कमेटी ने देशव्यापी आन्दोलन छेड़ा। हिन्दू मुस्लिम एकता के लिए इसे महत्वपूर्ण अवसर मानकर गांधी सहित अनेक कांग्रेसी नेताओं ने इसमें हिस्सेदारी निभायी। इसी ने आगे अहिंसक असहयोग आन्दोलन का रूप लिया। कांग्रेस को अब विदेशी शासन से मुक्ति के राष्ट्रीय संघर्ष में ऐसी संस्थाओं की स्थापना का औचित्य भी समझ में आया जो राष्ट्रीय विचारधारा को व्यापक प्रसार दे सकते थे। इसी दृष्टि से जामिया मिल्लिया इस्लामिया, बिहार, काशी तथा गुजरात विद्यापीठों की स्थापना की गयी।

चौरी चौरा कांड (1922) असहयोग आन्दोलन की ही कड़ी थी पर क्योंकि इसमें हिंसा हुई और क्रूद्ध भीड़ द्वारा थाने में आग लगा देने से 22 पुलिसकर्मी मारे गये अतः गांधी जी ने उन गतिविधियों पर रोक लगा दी जिनसे कानून का उल्लंघन होता था। युवा राष्ट्रवादियों में अधिकांश गांधी जी की रणनीति से संतुष्ट न थे। पहला असहयोग और नागरिक अवज्ञा आन्दोलन इसी तरह समाप्त हुआ।

10 मार्च 1922 को गांधी जी गिरफ्तार किये गये। 6 साल कैद की सजा हुई। खिलाफत आन्दोलन भी प्रासंगिक नहीं रह गया। जहाँ उसने असहयोग आन्दोलन को जन्म दिया, वहीं राजनीति में धार्मिक चेतना और आगे धार्मिक संकीर्णता के प्रवेश को रोक न सका। यद्यपि प्रकट रूप में ये आन्दोलन असफल रहे, पर इन्हीं के प्रभाव से आन्दोलन में किसान, दस्तकार, स्त्रियाँ अर्थात् भारतीय समाज के सभी वर्ग शामिल हुए।

स्वराज्यवादी : चितरंजन दास और मोतीलाल नेहरू अनुभव कर रहे थे कि राष्ट्रवादियों को विधानमंडलों का बहिष्कार समाप्त कर उनमें भाग लेना चाहिए और उनके संचालन में बाधा डालनी चाहिए। 'अपरिवर्तनशील' कहे जाने वाले सरदार पटेल, डा. अंसारी तथा डॉ. राजेन्द्र प्रसाद दलील दे रहे थे कि इससे राष्ट्रवादी उत्साह कम होगा और जनता की भागीदारी में उदासीनता आयेगी। कांग्रेस के विरोध के बावजूद दिसम्बर 1922 में 'स्वराज्य पार्टी' की स्थापना की गयी। नवम्बर 23 में केन्द्रीय विधानसभा के चुनावों में स्वराज्यवादियों ने 101 में से 42 सीटें जीतीं। मार्च 1925 में वे विट्ठलभाई पटेल को केन्द्रीय विधान सभा का अध्यक्ष चुनवाने में भी सफल हुए। विदेशी सरकार की निरंकुश नीतियों में बदलाव न आने से उन्हें विधानसभा का त्याग करना पड़ा।

उधर साम्प्रदायिक शक्तियाँ राजनीति में उभरने लगी थीं। दंगों की राजनीति के विरोध में गांधी जी ने मौलाना मुहम्मद अली के घर दिल्ली में 21 दिनों का उपवास (1924) किया। प्रभाव न देखकर वे राजनीति से सन्यास लेने पर विवश थे। 1927 में 'साइमन कमीशन' की घोषणा हुई। इसी समय मार्क्सवाद या समाजवादी विचारधारा का प्रभाव बढ़ा। कांग्रेस के भीतर जवाहरलाल नेहरू और सुभाष चंद्र बोस के नेतृत्व में जो 'वामपंथ' उभरा उसने साम्राज्यवाद विरोधी संघर्ष के साथ पूंजीपतियों और जमींदारों के आंतरिक वर्गीय शोषण पर सवाल भी उठाया। मानवेन्द्रनाथ राय कम्युनिस्ट इंटरनेशनल (मास्को) के प्रथम भारतीय सदस्य थे। 1924 में सरकार ने मुजफ्फर अहमद, श्रीपाद अमृत डांगे और कुछ अन्य लोगों पर कम्युनिस्ट विचारों के प्रचार का आरोप लगाकर 'कानपुर' षडयंत्र का मुकदमा चलाया। 1925 में कम्युनिस्ट पार्टी का विधिवत गठन हुआ। 1928 में गुजरात के बारदोली में किसानों ने कर न देने के लिए पटेल के नेतृत्व में सत्याग्रह चलाया। अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस के नेतृत्व में मजदूर संघों का तेजी से विकास हुआ। सबसे बड़ी हड़ताल बम्बई के कपड़ा मिलों में हुई। इस तरह क्रांतिकारी आन्दोलन पुनः सक्रिय हो उठा। अक्तूबर 1924 में सशस्त्र क्रांति के उद्देश्य से एक संगठन 'हिंदुस्तान प्रजातंत्र संघ' नाम से स्थापित हुआ। सरकार ने इस पर कड़ा प्रतिबंध लगाते हुए बड़ी संख्या में आतंकवादी – युवकों को गिरफ्तार कर उन पर 'काकोरी षडयंत्र केस' (1925) चलाया। राम प्रसाद बिस्मिल और अशफाकल्लाह सहित चार लोगों को फांसी दी गयी। जेल से लिखी हुई बिस्मिल की आत्मकथा एक मार्मिक दस्तावेज है। समाजवादी विचारों से प्रभावित क्रांतिकारियों ने 1928 में चंद्रशेखर आजाद के नेतृत्व में अपने संगठन को नया नाम दिया : 'हिंदुस्तान समाजवादी प्रजातंत्र संघ'। 30 अक्तूबर 1928 को साइमन कमीशन का विरोध करते हुए लाला लाजपत राय शहीद हुए। प्रतिशोध में 17 दिसम्बर 1928 को भगतसिंह, सुखदेव और राजगुरु ने लाठी चार्ज का नेतृत्व करने वाले ब्रिटिश पुलिस अधिकारी जनरल सांडर्स को गोलियों से भुन दिया। 8 अप्रैल 1929 को भगतसिंह और बटुकेश्वर दत्त ने केन्द्रीय विधान सभा में एक बम फोड़ा जिसका उद्देश्य सिर्फ 'बहरों को सुनाना' था, किसी की हत्या करना नहीं। उन्होंने जानबूझ कर अपने को गिरफ्तार कराया। वे अदालत का इस्तेमाल क्रांतिकारी विचारों के प्रचार मंच के रूप में करना चाहते थे। चटगांव (बंगाल) में अप्रैल 1930 में मास्टर सूर्यसेन के नेतृत्व में क्रांतिकारियों ने सरकारी शस्त्रागार पर छापा मारा। इस आन्दोलन में स्त्रियाँ भी शरीक थीं। देशव्यापी जनविरोध के बावजूद भगतसिंह, सुखेदव ओर राजगुरु को 23 मार्च 1931 को फांसी दी गयी। जेल से लिखे अंतिम पत्रों में भगतसिंह ने समाजवाद में अपनी आस्था प्रकट की और धर्मनिरपेक्षता का समर्थन किया। उल्लेखनीय है कि 1926 में पंजाब में भगतसिंह ने 'नौजवान भारत सभा' की स्थापना की थी जिसके उद्देश्यों में साम्प्रदायिक शक्तियों का बहिष्कार भी सम्मिलित था। चंद्रशेखर आजाद 27 फरवरी 1931 को इलाहाबाद के एक पार्क में पुलिस का सामना करते हुए मारे गये। सूर्यसेन को 1933 में गिरफ्तार कर फाँसी दी गयी। अनेक क्रांतिकारियों को लम्बी सजाएँ देकर अंडमान के 'सेलुलर जेल' में भेज दिया गया। मेरठ षड़यंत्र केस (1929) में पहले ही कई नेताओं को गिरफ्तार किया जा चुका था। दिसम्बर 1928 में कांग्रेस के कलकत्ता अधिवेशन में गांधी जी पुनः सक्रिय राजनीति से जुड़े। जवाहरलाल नेहरू की अध्यक्षता वाले 1929 के लाहौर अधिवेशन में 'पूर्ण स्वराज्य' को कांग्रेस का लक्ष्य घोषित किया गया। 31 दिसम्बर 1929 को पहली बार स्वाधीनता का नवस्वीकृत तिरंगा झंडा फहराया गया और 26 जनवरी 1930 को पहला स्वाधीनता दिवस घोषित किया गया।

सविनय अवज्ञा आन्दोलन (1930) : दूसरा सविनय अवज्ञा आन्दोलन 12 मार्च 1930 को गांधी जी की प्रसिद्ध दांडी यात्रा के साथ शुरू हुआ। गांधी जी अपने 78 अनुयायियों के साथ गुजरात के साबरमती आश्रम से 200 किलोमीटर की पैदल यात्रा कर समुद्रतट पर स्थित

दांडी ग्राम पहुंचे और 6 अप्रैल 1930 को मुट्ठी भर नमक बनाकर 'नमक कानून' तोड़ा। यह जन विद्रोह का प्रतीक था। स्त्रियों ने विदेशी वस्त्रों का बहिष्कार किया और शराब बेचने वाली दुकानों पर धरना दिया। अब आन्दोलन भारत की उत्तर पश्चिम सीमा पर पठानों तक भी पहुंचा। खान अब्दुल गफ्फार खाँ (सीमांत गांधी) के नेतृत्व में पठानों ने 'खुदाई खिदमतगार' संगठन बना लिया। 'लाल कुर्तीवाला' यह संगठन अहिंसा और स्वाधीनता संघर्ष के प्रति समर्पित था। आन्दोलन की चमक पूर्वी हिस्सों तक भी पहुंची। नागालैंड की वीर बाला रानी गिगल् ने 13 वर्ष की अल्पायु में गांधी जी की प्रेरणा से ब्रिटिश शासन का विरोध किया। 1932 में इस वीरांगना को आजीवन कारावास की सजा दी गयी। उसे अंधेरी काल कोठरी से मुक्ति मिली.....1947 में ही.......भारत के स्वतंत्र होने पर।

आन्दोलन के उभार के दौर में कांग्रेस को गैर कानूनी घोषित कर दिया गया। समाचार पत्रों पर कड़ा सेंसर लगा कर उनकी स्वतंत्रता सीमित की गयी। मार्च 1931 में गांधी जी और वायसराय लार्ड इर्विन के बीच समझौते के फलस्वरूप कांग्रेस सविनय अवज्ञा आन्दोलन रोकने पर सहमत हो गयी। गांधी जी दूसरे गोलमेज सम्मेलन में भाग लेने 1931 में इंग्लैंड गये पर उनकी जोरदार अपील के बावजूद ब्रिटिश सरकार ने भारत को 'डोमिनियम स्टेट्स' का दर्जा देने से इनकार कर दिया। इधर भारत में विश्वव्यापी मंदी के फलस्वरूप कृषि पैदावारों के मूल्य गिर गये। दिसम्बर 1930 में कांग्रेस ने 'न लगान न टैक्स' का अभियान चलाया। सरकारी दमन जारी था। सविनय अवज्ञा आन्दोलन फिर कमजोर हुआ। कांग्रेस ने मई 1934 में उसे वापस ले लिया। गांधी जी फिर सक्रिय राजनीति से अलग हुए। राजनैतिक कार्यकर्ताओं में निराशा फैली।

1932 में कांग्रेस की उपस्थिति के बगैर लंदन में तीसरा गोलमेज सम्मेलन हुआ। 1935 के भारत सरकार अधिनियम में एक भारतीय संघ में प्रांतीय स्वतंत्रता और केन्द्र में द्वि–सदनात्मक विधायिका की व्यवस्था थी। जुलाई 1937 में ग्यारह में से सात प्रांतों में कांग्रेसी मंत्रिमंडल बने। कांग्रेस ने दो प्रांतों में सांझी सरकारें बनायीं। 1938 में कांग्रेस रूसी पद्धति पर आर्थिक योजना का विचार स्वीकार किया। 1942 में गांधी जी ने घोषणा की–'जमीन उनकी है जो उस पर मेहनत करते हैं।' यहाँ कुछ और तथ्य उल्लेखनीय हैं–1934 में आचार्य नरेन्द्र देव और जय प्रकाश नारायण ने कांग्रेस समाजवादी पार्टी का गठन किया। 1935 के बाद कम्युनिस्ट पार्टी का नेतृत्व और सांस्कृतिक क्षेत्र में कम्युनिस्ट विचारों का प्रचार प्रसार पूरन चंद्र जोशी के हाथ में आया। 1936 में अखिल भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ स्थापित हुआ। 1938 में–सुभाष चंद्र बोस कांग्रेस के अध्यक्ष चुने गये। वर्किंग कमेटी में विरोध के कारण उन्होंने 1939 में इस्तीफा दिया और 'फारवर्ड ब्लॉक' की स्थापना की। 1936 में लखनऊ में स्वामी सहजानंद सरस्वती की अध्यक्षता में पहला अखिल भारतीय किसान सम्मेलन हुआ। प्रेमचंद, निराला जैसे लेखक किसान आन्दोलन की भूमिका को महत्वपूर्ण बता रहे थे।

सितंम्बर 1939 में दूसरा विश्वयुद्ध शुरू हुआ। हिटलर के नेतृत्व में नाजी जर्मनी ने पौलेंड पर आक्रमण कर दिया। भारत की विदेशी सरकार राष्ट्रीय कांग्रेस के परामर्श के बिना ही युद्ध में शामिल हो गयी। प्रतिक्रिया में सभी कांग्रेसी मंत्रिमंडलों ने इस्तीफा दे दिया। अक्तूबर 1940 में गांधी जी ने व्यक्तिगत सत्याग्रह चलाने का आग्रह किया। इसमें विनोबा भावे आगे आये। दिसम्बर 1941 में अमरीका पर आक्रमण कर जापन भी जर्मनी–इटली की ओर से युद्ध में शामिल हो गया। शीघ्र ही उसने फिलीपीन, हिंद–चीन, इंडोनेशिया, मलाया और बर्मा पर अधिकार कर लिया। और मार्च 1942 में रंगून पर अधिकार करके युद्ध को भारत की सीमाओं तक पहुंचा दिया। कांग्रेसी नेताओं ने जापानी आक्रमण की निंदा करते हुए कहा कि यदि ब्रिटेन तत्काल प्रभावी शक्ति भारतीयों को सौंप दे और युद्ध के बाद पूर्ण

स्वाधीनता का वचन दे तो वे भारत की रक्षा के लिए सहयोग देने को तैयार हैं। ब्रिटिश सरकार ने क्रिप्स के नेतृत्व में मार्च 1942 में एक मिशन भारत भेजा पर क्रिप्स मिशन और कांग्रेस के बीच बातचीत विफल हुई।

भारत छोड़ो आन्दोलन 1942

1942 में जापान की जीत के भय से जनता में चिंता व्याप्त थी पर गांधी जी का तेवर अधिक उग्र हुआ। अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की 8 अगस्त 1942 को बम्बई में हुई बैठक में प्रसिद्ध 'भारत छोड़ो' प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया। गांधी जी ने 'करो या मरो' का नारा दिया और कहा–'मैं पूर्ण स्वाधीनता से कम किसी चीज से संतुष्ट होने वाला नहीं हूँ।' 9 अगस्त 1942 को गांधी जी तथा अन्य बड़े नेता गिरफ्तार कर लिये गये। कांग्रेस फिर गैरकानूनी घोषित हुई। जन आन्दोलन पूरे देश में तीव्रतर हो गया। स्कूलों कॉलेजों में हड़तालें, व्यापक प्रदर्शन, फायरिंग, दमन–चक्र और तेज हुआ। संयुक्तप्रांत, बिहार, बंगाल, उड़ीसा, आंध्र, तमिलनाडु, महाराष्ट्र के अनेक भागों में ब्रिटिश शासन प्रभावहीन हो गया। क्रांतिकारियों ने अनेक जगहों पर समानांतर सरकारें बना ली। इस जन विद्रोह के मुख्य आधार थे–छात्र, मजूदर और किसान। आन्दोलन को अब भी निर्मम दमन चक्र चलाकर दबा दिया गया पर अब इतना साफ था कि जनता की इच्छा के बिना शासन चला पाना ब्रिटिश सरकार के लिए असंभव है।

मार्च 1941 में सुभाषचंद्र बोस सोवियत संघ, जर्मनी होते हुए 1943 में जापान पहुँचे ताकि जापानी सहायता प्राप्त कर ब्रिटिश शासन के विरुद्ध संघर्ष चला सकें। उन्होंने रास बिहारी बोस की मदद से सिंगापुर में 'आजाद हिन्द फौज' गठित की और 'जयहिन्द' का मंत्र दिया। बर्मा से भारत पर आक्रमण करते हुए उन्होंने जापान का साथ दिया। आजाद हिन्द फौज को आशा थी कि वे स्वतंत्र भारत की अस्थायी सरकार का प्रमुख सुभाष चंद्र बोस को बनाकर भारत में मुक्तिदाताओं के रूप में प्रवेश करेंगे। 1945 में जापान की हार के बाद आजाद हिन्द फौज भी पराजित हुई और सुभाष बोस टोकियो जाते हुए एक वायुयान दुर्घटना के शिकार हो गये।

अप्रैल 1945 में यूरोप में युद्ध समाप्त होने के बाद भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन ने एक नये दौर में प्रवेश किया। सरकार ने लालकिला दिल्ली में आजाद हिन्द फौज के तीन अधिकारियों शाहनवाज खां, गुरुदयाल सिंह ढिल्लो और प्रेम सहगल पर देशद्रोह का आरोप लगा कर उन्हें अपराधी घोषित किया। उनकी रिहाई के लिए विशाल जन प्रदर्शन हुए। फरवरी 1946 में बम्बई में भारतीय नौ सेना का प्रसिद्ध विद्रोह हुआ। ब्रिटेन के स्थान पर उभरी नई शक्तियों अमरीका, सोवियत संघ ने भारत की स्वतंत्रता का समर्थन किया। ब्रिटेन में भी लेबर पार्टी सत्ता में आयी जिसके अनेक सदस्य कांग्रेस की मांगों के समर्थक थे। अंग्रेजों ने जून 1948 तक भारत छोड़ने का निश्चय किया। 1946 के बाद ही हिन्दू–मुसलमानों के बीच साम्प्रदायिक दंगे भड़क उठे। मार्च 1947 में लार्ड माउंटबैटन भारत के वायसराय बनकर आये। उन्होंने दोनों सम्प्रदायों के नेताओं से बातचीत के क्रम में अन्ततः यह हल निकाला कि भारत स्वतंत्र तो होगा पर खंडित होकर। भारत के साथ ही पाकिस्तान एक स्वतंत्र राष्ट्र होगा। देशी रजवाड़ों को किसी भी देश में सम्मिलित होने की छूट दी गयी। गृहमंत्री सरदार वल्लभ भाई पटेल की कूटनीति के कारण अनेक देशी राज्यों ने भारत का अंग बने रहना ही स्वीकार किया।

अन्ततः भारत ने 15 अगस्त 1947 को पहला स्वतंत्रता दिवस मनाया। यह एक लम्बे संघर्ष का अन्त था और समस्याओं से घिरे एक नये युग का आरंभ। 14 अगस्त की आधी रात को जवाहरलाल नेहरू ने ऐतिहासिक सम्बोधन में कहा था–'मध्यरात्रि को जब बारह का घंटा

बजेगा और सारी दुनिया सो रही होगी तब भारत नये जीवन और स्वतंत्रता की ओर अग्रसर होगा...। आज हम एक दुर्भाग्यपूर्ण अवधि को समाप्त कर रहे हैं.....भारत को अपने महत्व की अनुभूति हो रही है। आज हम जिस उपलब्धि की खुशी मना रहे हैं वह निरन्तर प्रयासों का फल है......।'

बोध प्रश्न–2

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दें।

1. 1866 और 1876 के बीच स्थापित तीन संगठनों के नाम लिखिए जिनका स्वाधीनता आन्दोलन के इतिहास में विशेष महत्व है :

   क) ....

   ख) ....

   ग) ....

2. राष्ट्रवादियों ने साम्राज्यवाद के किस पक्ष के विश्लेषण पर सबसे पहले जोर दिया? (√) का चिन्ह लगायें :

   क) सामाजिक

   ख) आर्थिक

   ग) नैतिक

3. बंगाल को विभाजित करने के पीछे ब्रिटिश सरकार का क्या उद्देश्य था? रिक्तस्थान में लिखें :

   ....

   ....

4. 'राजनीतिक स्वतंत्रता किसी भी राष्ट्र की प्राणवायु है' किसका कथन है? (अ) से निर्दिष्ट करें:

   क) रवीन्द्रनाथ ठाकुर

   ख) भगत सिंह

   ग) अरविन्द घोष

   घ) बंकिम चंद्र

5. खिलाफत आन्दोलन के तीन प्रमुख नेताओं के नाम बताइए:

   क) ....

   ख) ....

   ग) ....

6. समाजवादी विचारों से प्रभावित क्रान्तिकारियों का संगठन इनमें से कौन सा था?

   क) अभिनव भारती

ख) हिन्दुस्तान समाजवादी प्रजातंत्र संघ

ग) हिन्दुस्तान प्रजातंत्र संघ

घ) गदर पार्टी

7. स्वाधीनता का नवस्वीकृत तिरंगा झंडा पहली बार कब फहराया गया ? सही (अ) के चिन्ह से निर्दिष्ट करें :

क) 1942

ख) 1929

ग) 1947

8. निम्नलिखित संगठन/सम्मेलन का स्थापना समय लिखिए :

क) अखिल भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ..

ख) पहला अखिल भारतीय किसान–सम्मेलन...

ग) आजाद हिन्द फौज..

अभ्यास

1) कांग्रेस की स्थापना का उद्देश्य क्या था और क्या अंग्रेज उस उद्देश्य में सफल हुए?

....

....

....

....

....

2) स्वतंत्रता आंदोलन में समाजवादी विचारों का प्रवेश कब हुआ और उसने क्या प्रभाव डाला?

....

....

....

....

4.4 स्वाधीनता आंदोलन का व्यापक परिप्रेक्ष्य

स्वाधीनता आंदोलन महज एक राजनीतिक आंदोलन नहीं था। इसने हमारे जीवन के प्रायः सभी पक्षों पर गहरा असर छोड़ा। राजनीति के साथ–साथ सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और साहित्यिक प्रश्नों पर भी इस अवधि में गहरा मंथन चला और हमने इन सभी क्षेत्रों में नयी दिशाएँ ग्रहण की, नये आदर्श स्वीकार किये। आइए, स्वाधीनता आंदोलन के इस व्यापक परिप्रेक्ष्य पर विचार करें।

4.4.1 संदर्भ : संस्कृति और समाज

स्वाधीनता संघर्ष तथा नव जागरण के परिप्रेक्ष्य में आधुनिक भारतीय संस्कृति का विश्लेषण करने वालों ने यूरोप के आधुनिक सांस्कृतिक जागरण और भारतीय सांस्कृतिक जागरण में यह मौलिक भेद बताया है कि यहाँ का सांस्कृतिक जागरण औपनिवेशिक मानसिकता से टकराकर ही विकसित हुआ। पहले चरण के सांस्कृतिक जागरण में अस्मिता की तलाश मुख्य थी। फिर उसी ने राजनीतिक जागरण के लिए जमीन तैयार की। भारत में संस्कृति और राजनीति के बीच सकर्मक सम्बन्ध बना। रवीन्द्रनाथ ठाकुर भारत के आधुनिक पुनर्जागरण को पश्चिम की आधुनिक दृष्टि से जोड़कर देखते थे पर यहाँ के स्वाधीनता आन्दोलन तथा सांस्कृतिक जागरण में घनिष्ठ सम्बन्ध भी मानते थे। अठारहवीं शताब्दी के बाद जब भारत के राजाओं का प्रभुत्व समाप्त हो गया और वे अंग्रेजों के साम्राज्यवादी शासन में आ गये, भारतीय कला के लिए बहुत संभावनाएँ शेष न थीं। चित्रकला, मूर्तिशिल्प, स्थापत्य अब बहुत कुछ खंडहरों में स्मृति चिन्ह की तरह थे। विदेशी शासन में जो शैक्षणिक संस्थाएं बनीं वे ब्रिटिश रायल एकेडेमी को ही आदर्श मानती थीं। 19वीं शताब्दी के अंत में जब भारत एक राष्ट्र के रूप में उभरा तो कला की शैलियों में राष्ट्रीय आकांक्षाओं के अनुरूप परिवर्तन घटित हुआ। कला की लोकोन्मुख और स्थानीयता इसी के उदाहरण हैं। 19वीं शताब्दी में अजन्ता के भित्तिचित्रों, अजन्ता के गुफा मंदिरों के मूर्तिशिल्प का पता चला। नंदलाल बोस जैसे चित्रकारों ने उनसे सीधी प्रेरणा ली। दक्षिण में राजा रवि वर्मा भारतीय पौराणिक कथाओं को अपनी चित्रकला में ढाल रहे थे। बंगला शैली (रवींद्रनाथ, अवनीन्द्रनाथ ठाकुर) की कला का इतिहास स्वाधीन चेतना के स्पर्श से भरा पुरा है। अमृता शेरगिल की स्थानीयता आधुनिकता को एक नया परिप्रेक्ष्य देती है।

राष्ट्रीय स्वाधीनता आन्दोलन से जो मूल्य विकसित हुए उनका संस्कृति और समाज रचना पर व्यापक प्रभाव पड़ा। वे मूल्य थे–साम्राज्यवाद–उपनिवेशवाद–विरोध, राष्ट्रीयता देशप्रेम, आर्थिक सामाजिक शोषण का विरोध, जनतंत्र, समाजवाद, साम्प्रदायिकता–विरोधी धर्मनिरपेक्ष चेतना। भारतेन्दु के समय में स्वाधीन चेतना की अभिव्यक्ति के लिए व्यंग्य प्रधान अभिव्यक्ति–रूपों या शैलियों का उपयोग किया गया। आगे स्वच्छन्दतावाद, देश–प्रेम, प्रकृति प्रेम, राष्ट्रीयता से लगाव को महत्वपूर्ण मानकर शैली और अंतर्वस्तु के रूप में उभरा। हिन्दी छायावादी कवियों में प्रसाद, पंत, निराला में अपने ढंग की स्वाधीन चेतना मौजूद है। प्रसाद के नाट्यगीत (हिमाद्री तुंग श्रृंग से प्रबुद्ध शुद्ध भारती या अरुण यह मधुमय देश हमारा) इसी स्वाधीन चेतना को व्यक्त करते हैं पंत ने 'भारत माता ग्रामवासिनी' लिखकर ग्रामीण संस्कृति के बीच इस स्वाधीन चेतना का मूर्त रूप देखा। निराला के यहाँ स्वाधीन होने का अर्थ ही है निर्भय होना। यह दृष्टि स्वाधीनता–संघर्ष के अनुभवों से ही विकसित हुई थी। 'भारति जय विजय करे' कविता भारती के दुहरे रूपों को व्यक्त करती है जिसमें एक 'सरस्वती' वाला रूप भी है। जागरण की चेतना इसी स्वाधीन चेतना का सहजीवी भाव है। 'जागो फिर एक बार' जैसी कविताएँ इसे प्रभावित करती हैं। प्रकृति में भी प्रभाती विषय कविताएँ इसी जागरण का संकेत देती हैं। स्वाधीनता संघर्ष के क्रम में किसानों का संघर्ष, सत्याग्रह आदि संदर्भ के उपन्यासों से भरे पड़े हैं।

स्वाधीनता की चेतना को पूरे समाज तक फैलाने के प्रयत्न में लेखक राजनीतिक कार्यकर्त्ता इतिहासकार, पत्रकार, समाज वैज्ञानिक साथ थे। 'स्वदेश', 'कर्मवीर' 'प्रताप' जैसी पत्रिकाएँ इस चेतना को वृहत्तर पाठक समुदाय तक ले जाने के प्रयत्न में शामिल थीं नर्तक उदय शंकर भी स्वाधीन चेतना की अभिव्यक्ति के लिए कवि पंत के साथ एक नये तरह का संवाद स्थापित कर रहे थे। लोकगायकों ने लोकगीतों में बार–बार आन्दोलन का स्वर भरा।

4.4.2 संदर्भ : आधुनिक भारतीय साहित्य

उन्नीसवीं शताब्दी के अंत और बीसवीं शताब्दी के आरंभ में असमिया के लक्ष्मीनाथ बेजुबरूआ, हेमचंद्र गोस्वामी जैसे लेखक उसी राष्ट्रीय चेतना को वहन कर रहे थे जिसके अपने समय के नवजागरण से गहरा सम्बन्ध था। रवींद्रनाथ का उदय इन्हीं परिस्थितियों के बीच हुआ पर वे परम्परा के अधिक गहरे साहचर्य में स्वाधीन चेतना की अधिक आधुनिक परिकल्पना को रूप और आकार दे सके। 'निर्झरेर स्वप्न भंग' कविता इसी मानसिकता को व्यक्त करती है।

गुजराती साहित्य में गांधी जी के राजनीतिक संघर्ष की छाप अधिक गहरी है। अफ्रीका से गांधी जी की वापसी के साथ पूरे भारतीय मानस में जो उद्वेलन था उसकी गहरी छाप गुजराती के आधुनिक साहित्य में है। रूसी क्रांति जैसी घटनाओं ने भी इस राष्ट्रीय भावना को उभारने में योग दिया। झवेर चंद मेघाणी, पन्नालाल पटेल की कृतियाँ अपने भीतर इसी चेतना को छिपाये हुए हैं। मैथिलीशरणगुप्त, माखनलाल चतुर्वेदी, दिनकर, नवीन, सुभद्राकुमारी चौहान की कविताएँ स्वाधीनता आन्दोलन में प्रकट जन आकांक्षाओं को व्यक्त करती हैं। क्रांति या विप्लव का स्वर इनमें साफ सुना जा सकता है। ईमानदार और कट्टिमनी के उपन्यासों में 'भारत छोड़ो' आन्दोलन की गूंज मौजूद है। विश्वमानवता का संदेश भी यहीं इसी आन्दोलन की प्रेरणा से उभरा। वल्लतोल, कुमारा आशान की मलयालम रचनाएँ इसी चेतना से अनुप्राणित हैं। तमिल के सुब्रमण्यम भारतीय इस चेतना के प्रमुख संदेशवाहकों में हैं। केशवसुत की कविताएँ, हरिनारायण आप्टे के उपन्यास इस स्वाधीन चेतना को व्यक्त करने में सक्षम हैं। उड़िया कथाकार फकीर मोहन सेनापति ने 'छः बीघा जमीन' नामक उपन्यास में बुनकरों और किसानों की जिन्दगी से परिचित कराते हुए एक युग की सामाजिक वास्तविकता की ओर ध्यान आकृष्ट किया। ब्रिटिश उपनिवेशवाद और पश्चिम के प्रभाव से पंजाब अधिक समय तक मुक्त रह सका अतः नव जागरण की चेतना भी वहाँ देर से आयी। भाई वीर सिंह जैसे कवि इस चेतना के वाहक बने। हाली का 'मुसद्दस' उदाहरण है कि राष्ट्रीय चेतना सामाजिक जागृति से घुली मिली चीज है। स्वाधीनता आन्दोलन का क्योंकि अपने आप में एक अखिल भारतीय संदर्भ है इसलिए स्वाभाविक है कि उसका प्रतिबिम्ब समूचे भारतीय साहित्य में मौजूद है।

बोध प्रश्न –3

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दें।

1. यूरोप के आधुनिक सांस्कृतिक जागरण और भारतीय सांस्कृतिक जागरण में मौलिक भेद क्या है? रिक्त स्थान में लिखें।

   ....

   ....

   ....

2. राष्ट्रीय स्वाधीनता आन्दोलन से विकसित ऐसे मूल्यों का उल्लेख करें जिनका आधुनिक भारतीय समाज और संस्कृति पर व्यापक प्रभाव पड़ा :

   क) ....

   ख) ....

   ग) ....

   घ) ....

3. स्वाधीन चेतना को अभिव्यक्ति देने वाले, निम्नलिखित भाषाओं के, एक–एक प्रतिनिधि तथा महत्वपूर्ण लेखक का नामोल्लेख करें :

   क) बंगला ....

   ख) तमिल ....

   ग) गुजराती ....

   घ) हिन्दी ....

4. निम्नलिखित रचनाओं के लेखकों के नाम लिखें :

   क) निर्झरेर स्वप्न भंग : ....

   ख) छह बीघा जमीन : ....

अभ्यास

3. राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन का हमारे सांस्कृतिक जीवन पर क्या प्रभाव पड़ा?

   ....

   ....

   ....

4.5 मूल्यांकन

इस इकाई को अंत तक पढ़ते हुए हम अनुभव कर सकते हैं कि भारतीय साहित्य में आधुनिकता का उदय अचानक नहीं हुआ। स्वाधीनता आन्दोलन के अभाव में हमारी इस ठेठ देसी आधुनिक दृष्टि की कल्पना नहीं की जा सकती। स्वाधीनता आन्दोलन के समानान्तर ही साहित्य में आधुनिक दृष्टि के लिए, आधुनिकता की पहचान और प्रतिष्ठा के लिए संघर्ष चलता रहा है। यह एक सच्चाई है कि स्वाधीनता आन्दोलन का परिप्रेक्ष्य व्यापक था। यह संघर्ष कई स्तरों, कई मोर्चों पर चल रहा था। समाज के सभी वर्गों, समुदायों की हिस्सेदारी इसमें बढ़ती गयी। स्त्री शिक्षा के प्रचार–प्रसार के साथ ही स्त्रियाँ इस आन्दोलन में आगे आयीं। इससे सामंती संबंध रचना पर स्पष्ट प्रभाव पड़ा। साहित्य और संस्कृति के क्षेत्र में इसने हमारे कलाबोध और सौन्दर्यबोध को प्रभावित किया। छात्र, किसान, मजदूर आगे चलकर ये सभी आन्दोलन को तेज करने में सहायक हुए। इस व्यापक आन्दोलन के मूल में था उपनिवेशवाद विरोध। यह आन्दोलन आधुनिक धर्मनिरपेक्ष जनतांत्रिक राष्ट्रवादी दृष्टिकोण का परिणाम था। स्वाधीनता आन्दोलन ने भारतीय साहित्य की अपनी अस्मिता की पहचान करायी। बंकिम, रवींद्रनाथ, सुब्रमण्यम भारती, प्रेमचंद का साहित्य इसी आन्दोलन से ऊर्जा और स्फूर्ति ग्रहण कर रहा था। इस आन्दोलन में गांधी जी का प्रवेश एक नये युग के उदय का संकेत है। गांधी जी व्यक्तित्व आन्दोलन को जन चरित्री बनाने में दूर तक प्रेरक सिद्ध हुआ।

बोध प्रश्न–4

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दें।

1. भारतीय आधुनिकता को प्रभावित करने वाला सबसे महत्वपूर्ण संदर्भ क्या है?

....

....

2. स्वाधीनता आंदोलन में शिक्षित स्त्रियों के आगे आने से साहित्य पर क्या प्रभाव पड़ा?

....

....

3. भारतीय स्वाधीनता आंदोलन की जड़ें कहाँ थीं?

....

....

अभ्यास

4. राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन से हम क्या–क्या सीख सकते हैं?

....

....

....

....

4.6 सारांश

- इस इकाई में आपने राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन के इतिहास से परिचय प्राप्त किया। आपने जाना कि भारत में अंग्रेजों का शासन किन परिस्थितियों में स्थापित हुआ। 1857 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम का क्या महत्व है और भारतीयों ने कांग्रेस की स्थापना से पूर्व अपने अधिकारों के लिए कौन–कौन से संगठन बनाए। आधुनिक भारतीय राष्ट्रवाद की यह पृष्ठभूमि है।

- 1885 में कांग्रेस की स्थापना के साथ स्वाधीनता के लिए संगठित प्रयास शुरू हुआ। आरंभ में कांग्रेस के नेताओं ने अंग्रेजों के प्रति नरम रूख अपनाकर अपने अधिकारों के लिए संघर्ष किया परंतु उसकी असफलता देखकर बालगंगाधर तिलक जैसे नेताओं ने संघर्ष का उग्र रास्ता अपनाया। भारतीय राष्ट्रवाद की रीढ़ तोड़ने के लिए अंग्रेजों ने 1905 में बंगाल का विभाजन कर दिया लेकिन जनता के लगातार प्रतिरोध के कारण 1911 में विभाजन समाप्त करना पड़ा।

- स्वतंत्रता आंदोलन में महात्मा गांधी का आगमन एक महत्वपूर्ण घटना है जिन्होंने स्वतंत्रता के आंदोलन को मध्यवर्ग से निकालकर आम जनता तक पहुँचाया। गांधी जी के नेतृत्व में भारतीय जनता स्वतंत्रता के लिए संघर्ष करती रही और अंग्रेज अपना दमन चक्र चलाते रहे। 1919 के जलियांवाला बाग का हत्याकांड अंग्रेजों के दमन की पराकाष्ठा था।

- कांग्रेस के जन आंदोलनों के साथ–साथ आजादी के लिए क्रांतिकारी गतिविधियाँ भी जारी रहीं। भगत सिंह, चन्द्रशेखर आजाद, अशफाकुल्ला खां इनमें अग्रणी थे। 1930 के आसपास ही सोवियत क्रांति के प्रभाव में समाजवादियों और कम्युनिस्टों का प्रभाव बढ़ा। किसानों, छात्रों, मजदूरों के अखिल भारतीय संगठन बने। कांग्रेस की नीतियों में भी वामपंथी रूझान पैदा हुआ।

- द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद विश्व के बदलने राजनीतिक परिदृश्य तथा जन आंदोलनों के व्यापक होते स्वरूप के कारण ब्रिटेन भारत को स्वतंत्रता देने के लिए विवश हुआ यह स्वतंत्रता देश को विभाजन के साथ मिली।
- राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन ने हमारे सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और साहित्यिक जीवन पर भी गहरा असर डाला। इस दौर के साहित्य और कला पर, विभिन्न अनुशासनों पर और हमारे संपूर्ण सोच पर स्वाधीनता आंदोलन का व्यापक प्रभाव पड़ा। आशा है इकाई को पढ़कर आप उपर्युक्त सभी पहलुओं को अपने शब्दों में व्यक्त कर सकेंगे।

4.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

विपन चंद्र, अमलेश त्रिपाठी, बरूण डे : स्वतंत्रता संग्राम, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया

विपन चंद्र : भारत का स्वाधीनता संघर्ष, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन विदेशालय दिल्ली विश्वविद्यालय

रामलखनशुक्ल (संपादन) : आधुनिक भारत का इतिहास, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय दिल्ली विश्वविद्यालय

ए.आर. देसाई : भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि, मैकमिलन इंडिया लि. दिल्ली

रजनी पाम दत्त : आज का भारत, पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस

4.8 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

बोध प्रश्न–1

1) (ख)

2) (ख)

3) (ग)

बोध प्रश्न–2

1) क) ईस्ट इंडिया एसोसिएशन,

   ख) इंडियन एसोसिएशन,

   ग) पूना सार्वजनिक सभा

2) ख)

3) राष्ट्रवाद के प्रसार को नियंत्रित करना।

4) ग

5) क) मुहम्मद अली, ख) मौलाना आजाद, ग) हसरत मोहानी

6) ख

7) ख

8) क) 1936, ख) 1936, ग) 1943

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

बोध प्रश्न–3

1) भारत का सांस्कृतिक जागरण औपनिवेशिक मानसिकता से टकराकर ही विकसित हुआ।

2) क) साम्राज्यवाद–उपनिवेशवाद विरोध, ख) जनतंत्र, ग) समाजवाद, घ) राष्ट्रीयता

3) क) रवींद्रनाथ ठाकुर, ख) सुब्रमण्यम भारती, ग) झवेरचंद मेघाणी, घ) मैथिलीशरण गुप्त

4) क) रवींद्रनाथ ठाकुर, ख) फकीर मोहन सेनापति

बोध प्रश्न–4

1) स्वाधीनता आंदोलन

2) साहित्य के सौंदर्यबोध और संबंध भावना पर प्रभाव पड़ा।

3) अपनी भूमि और अपनी जनता में।

अभ्यास

1) कांग्रेस की स्थापना के पीछे अंग्रेजों का उद्‌देश्य राष्ट्रीय कांग्रेस को प्रोत्साहन देते हुए शिक्षित भारतीयों के विरोध को शांत रखना परंतु अंग्रेज इस प्रयास में सफल नहीं हुए। आरंभ में अंग्रेजी सत्ता से वे अपने अधिकारों के लिए आवेदन करते रहे परंतु बीसवीं सदी के आरंभ से ही कांग्रेस एक व्यापक जन आंदोलन का रूप लेने लगी।

2) 1917 की सफल बोल्शेविक क्रांति का असर सारी दुनिया पर पड़ा। भारत में भी 1930 के आसपास समाजवादी विचारों का प्रभाव दिखाई देने लगता है। 1925 में कम्युनिस्ट पार्टी की स्थापना हुई। कांग्रेस में समाजवादी मंच बना। किसानों, मजदूरों, छात्रों के अखिल भारतीय संगठन बने। इनका असर कांग्रेस की नीतियों पर भी पड़ा। कांग्रेस ने पहली बार सामंत विरोधी भूस्वामी विरोधी प्रस्ताव पारित किये। रियासतों में चलने वाले जन आंदोलन को समर्थन दिया। समाजवादी राज्य स्थापित करने की बातें कांग्रेस मंचों से की जाने लगी।

3) देखिए उपभाग 4.4.1

4) स्वयं लिखिए।

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

इकाई 5 नवजागरण और राष्ट्रीय चेतना का विकास

इकाई की रूपरेखा

5.0 उद्देश्य

5.1 प्रस्तावना

5.2 भारतीय नवजागरण की पृष्ठभूमि

5.3 नवजागरण की अवधारणा

5.3.1 नवजागरण और पुनर्जागरण

5.3.2 नवजागरण, पुनरुत्थान और सामाजिक सुधार

5.4 यूरोपीय नवजागरण की विशेषता

5.5 भारतीय परिस्थितियों में नवजागरण की स्थिति

5.5.1 मध्ययुगीनता की समाप्ति

5.5.2 औपनिवेशिक पराधीनता और पूंजीवादी विकास

5.5.3 ब्रिटिश शासन और अंग्रेजी शिक्षा

5.6 विभिन्न धार्मिक–सामाजिक सुधार आंदोलनों की भूमिका

5.7 राष्ट्रीय चेतना से अभिप्राय

5.7.1 एक राष्ट्र के रूप में भारत का विकास

5.7.2 उपनिवेशवाद के विरुद्ध संघर्ष

5.8 नवजागरण और राष्ट्रीय चेतना का अंतःसंबंध

5.9 सारांश

5.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

5.11 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

5.0 उद्देश्य

इस इकाई में हम नवजागरण के स्वरूप और भारतीय नवजागरण की विशेषताओं के साथ ही राष्ट्र और राष्ट्रीय चेतना के स्वरूप से भी आपको परिचित करवाएंगे। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- नवजागरण और पुनरुत्थान में अंतर बता सकेंगे/सकेंगी;
- नवजागरण और पुनर्जागरण का आशय स्पष्ट कर सकेंगे/सकेंगी;
- यूरोपीय नवजागरण और भारतीय नवजागरण में परिस्थितिगत अंतर कर सकेंगी/सकेंगे;
- आधुनिकता और मध्ययुगीनता के अंतर को बता सकेंगी/सकेंगे;
- नवजागरण के प्रमुख कारणों को बता सकेंगी/सकेंगे;
- राष्ट्रीयता के उदय के कारणों को स्पष्ट कर सकेंगी/सकेंगे;
- राष्ट्र और राष्ट्रीय चेतना के स्वरूप को स्पष्ट कर सकेंगी/सकेंगे; और
- नवजागरण और राष्ट्रीयता की चेतना में समानता और अंतर को बता सकेंगी/सकेंगे।

5.1 प्रस्तावना

इस इकाई में नवजागरण और राष्ट्रीय चेतना के विकास से आपको परिचित करवाया जाएगा। इसमें आप भारतीय नवजागरण की पृष्ठभूमि, नवजागरण की अवधारणा, नवजागरण और पुर्नजागरण के अंतर तथा पुनरुत्थान और सामाजिक सुधार का आशय भी समझेंगे। भारतीय नवजागरण को तब तक नहीं समझा जा सकता जब तक कि हम यूरोपीय नवजागरण की विशेषताओं से परिचित न हों। इस इकाई में हमने उन परिस्थितियों पर भी विचार किया है जिनके बीच नवजागरण और राष्ट्रीय चेतना का विकास हुआ। मध्ययुगीनता से आधुनिकता का अंतर, पूंजीवादी विकास, औपनिवेशिक पराधीनता का उल्लेख इसी संदर्भ में किया गया है। नवजागरण में विभिन्न धार्मिक–सामाजिक सुधार आंदोलनों की भूमिका पर भी विचार किया गया है। भारत में राष्ट्रीय चेतना का विकास कैसे हुआ और नवजागरण तथा राष्ट्रीय चेतना के अंतःसंबंध पर भी इकाई में विचार किया गया है। इकाई आपको नवजागरण और राष्ट्रीय चेतना को समझने में मददगार होगी।

5.2 भारतीय नवजागरण की पृष्ठभूमि

19वीं शताब्दी में सारे देश में नवजागरण की जो लहर उठी थी उसने एक आंदोलन का रूप धारण कर लिया था। हर आंदोलन की जड़ अपने सामाजिक आधार में होती है, जिस आधार को समझे बिना आंदोलन की मूलभूत विशेषता को सही ढंग से नहीं समझा जा सकता। अंग्रेजों के आने से पहले भारतीय समाज में पूंजीवादी तत्वों का उदय अवश्य हो चुका था लेकिन वे इतने शक्तिशाली नहीं बन सके थे कि मध्यकालीन सामंती ढाँचे को बदल पाते तथा मानव संबंधों और नये जीवन मूल्यों को सामने लाते। इसमें तत्कालीन आत्मनिर्भर ग्राम–व्यवस्था भी बाधक थी। उसके माध्यम से सामंती सामाजिक संबंधों और उसके मूल्यों–मानदंडों की कारगर ढंग से रक्षा हो रही थी। पूरा समाज कर्म फल, भाग्यवाद, पुनर्जन्म, बहुदेववाद, मूर्ति पूजा, सती प्रथा, बाल विवाह जैसी कुरीतियों से ग्रस्त था। इससे पहले कि भारतीय व्यावसायिक पूंजीवादी तत्व शक्ति संचित कर इसके विरुद्ध खड़े होते, इनसे कहीं अधिक शक्तिशाली विदेशी पूंजीवादी शक्तियां देश के रंगमंच पर आ गयीं। इन्होंने पहले तो व्यापार का सहारा लिया, जिसमें भारत का बना माल विदेशों में बेचना और विदेशों का माल यहां बेचना ही मुख्य कार्य था। लेकिन ब्रिटिश पूंजीपतियों के दबाव से यह अधिक दिन नहीं चल सका। फलस्वरूप भारत के उद्योग धंधों को नष्ट करने और उसे कच्चे माल का निर्यात करने तथा तैयार माल की मण्डी बनाने की प्रक्रिया का आरंभ हुआ। बाजार के इस नये दबाव से यहां कि आत्मनिर्भर ग्राम व्यवस्था छिन्न–भिन्न हुई।

उपर्युक्त परिस्थितियों में भारतीय नवजागरण का आरंभ हुआ जो मुख्यतः धार्मिक और सामाजिक सुधार के रूप में सामने आया। अतः इसका स्वरूप यूरोप के तमाम देशों से भिन्न दिखायी देता है। यहां सामंतीय तत्वों और पूंजीवादी शक्तियों के बीच वैसा सीधा संघर्ष नहीं हो पाया जैसा कि यूरोप में हुआ। औद्योगिक मजदूर वर्ग का अभाव और ब्रिटिश शासन सत्ता की नीतियाँ भी इसमें मुख्य रूप से बाधक सिद्ध हुई।

5.3 नवजागरण की अवधारणा

नवजागरण एक ऐतिहासिक अवधारणा है, जिसका संबंध आधुनिक काल की उस नयी चेतना से है जो मध्यकालीन चेतना से गुणात्मक रूप से भिन्न है। इसे अच्छी तरह समझने

के लिए जरूरी है कि इससे मिलते–जुलते या इसके विरोध में पड़ने वाले कुछ शब्दों के अथर्गत अंतर की जानकारी भी आपको दी जाए। इस दृष्टि से नवजागरण (रिनेसां), पुनर्जागरण, पुनरुत्थान, सुधार आदि शब्दों के अर्थगत अंतर पर ध्यान रखना आपके लिए जरूरी है।

5.3.1 नवजागरण और पुनर्जागरण

भारतीय संदर्भ में कुछ विद्वानों ने आधुनिक काल के नवजागरण को पुनर्जागरण की संज्ञा दी है। उनके अनुसार भारत का भक्ति आंदोलन नवजागरण का सूचक था, अतः आधुनिक काल में घटित होने वाला जागरण उसी की अगली कड़ी के रूप में पुनर्जागरण है। यह सही है कि भक्ति का आंदोलन एक व्यापक सांस्कृतिक जागरण का परिचायक था, जिसमें जनसाधारण की सृजन शक्ति मध्यकालीन जकड़नों को तोड़कर विकसित होने लगी थी। लेकिन यह सारा विकास मध्यकालीन सामंतवादी व्यवस्था के भीतर ही घटित हुआ था, अतः लोगों के चिंतन और संवेदना की बहुत सारी कमजोरियों को दूर करने में यह कामयाब नहीं हो सका। फलस्वरूप तत्कालीन व्यवस्था ने इसके प्रगतिशील तत्वों को कुण्ठित करते हुए इसे अपने अंदर पचा लिया। इसके साथ ही इसकी सबसे बड़ी कमजोरी थी–इसका ईश्वर केंद्रित स्वरूप और धर्म पर पूर्णतः निर्भरता। क्योंकि धार्मिक भावना सामाजिक समस्याओं के तर्कसंगत विश्लेषण और विवेक सम्मत समाधान के लिए अक्षम होती है, अतः भक्ति आंदोलन एक धार्मिक जागरण बनकर रह गया, उसे नवजागरण की संज्ञा नहीं दी जा सकती। इसकी आधारगत कमजोरी की ओर संकेत करते हुए श्री के.दामोदरन ने लिखा है, 'इसका कारण यह था कि कारीगर, व्यापारी और दस्तकार, जो इस आंदोलन के मुख्यतः आधार थे, अब भी कमजोर और असंगठित थे। और, इससे पहले कि उदीयमान पूंजीपति वर्ग एक वर्ग के रूप में अपना पूर्ण विकास प्राप्त करे। ब्रिटिश पूंजीपतियों ने देश को जीतकर अपने कब्जे में कर लिया और उसे ब्रिटिश साम्राज्य का अंग बना लिया।' (भारतीय चिंतन परम्परा, पृ. 337) इससे पहली बात जो स्पष्ट होकर हमारे सामने आती है वह यह है कि भक्ति आंदोलन को नवजागरण की संज्ञा नहीं दी जा सकती। उन्नीसवीं शताब्दी के नवजागरण के लिए उसने एक सम्पन्न विरासत की भूमिका अवश्य अदा की है। इससे दूसरा तथ्य हमारे सामने आता है कि नवजागरण मध्यकालीन सामंतवाद विरोधी अवधारणा है, जिसका सूत्रधार उदीयमान पूंजीपति वर्ग है। अतः उन्नीसवीं सदी के नवजागरण को पुनर्जागरण की संज्ञा न देकर नवजागरण कहना ही अधिक उचित है।

5.3.2 नवजागरण, पुनरूत्थान और सामाजिक सुधार

नवजागरण और पुनर्जागरण जैसे शब्दों के अर्थगत अंतर की जानकारी के साथ ही आपको नवजागरण और पुनरूत्थान के अंतर की जानकारी भी जरूरी है। ये दोनों शब्द वैचारिक दृष्टि से परस्पर विरोधी भावों के सूचक हैं। नवजागरण में जहाँ एक नये, तर्कसंगत, विवेक–सम्मत और युग की आवश्यकताओं के अनुरूप व्यापक सुधार की भावना पर अधिक जोर होता है, वहाँ पुनरूत्थान में अतीत की पुनप्रतिष्ठा को अधिक महत्व दिया जाता है। भारतीय संदर्भ में 19वीं शताब्दी के नवजागरण में धार्मिक–सामाजिक सुधार आंदोलनों की महत्वपर्ण भूमिका रही है। लेकिन इन आंदोलनों में नवजागरण और पुनरूत्थान के तत्व प्रायः मिले–जुले दिखायी देते हैं। यही नहीं, सामाजिक सुधार और धार्मिक पुनरूत्थान को लेकर उस आंदोलन में विवाद की स्थिति भी रही है, जो आज भी दिखायी देती है। सुधार की प्रवृत्ति और पुनरुत्थान में अंतर करते हुए लाला लाजपतराय ने कहा था, 'इन शब्दों–सुधार और पुनरूत्थान–में यदि कोई वास्तविक महत्व है तो वह सामाजिक मामलों में पथ–प्रदर्शन

के लिए सुधारवादी और पुनरूत्थानवादी क्रमशः जिस अधिकार या अधिकारों से प्रेरणा ग्रहण करते हैं, उसमें या उनमें निहित है। सुधारवादी तर्क और योरोपीय समाज के अनुभव पर अधिक निर्भर करते हैं, जब कि पुनरूत्थानवादी शास्त्रों, अतीत के इतिहास तथा जनता की उन परम्पराओं तथा देश की उन संस्थाओं की ओर अधिक उन्मुख हैं, जो उस समय प्रचलित थीं, जब यह राष्ट्र गौरव के शिखर पर था।'

यहाँ लाजपतराय ने दो विरोधी प्रवत्तियों की ओर संकेत अवश्य किया है, लेकिन उनका यह कहना सही नहीं है कि सुधारवादी देश की गौरवशाली परम्परा की उपेक्षा करते थे। अतीत और वर्तमान में सामंजस्य स्थापित करने के लिए वे वेद और शास्त्रों की शिक्षाओं से पर्याप्त सहायता लेते थे। अपने को हिन्दू और हिन्दू धर्म का अनुयायी मानते हुए भी वे इस्लाम और ईसाई धर्म के विरोधी नहीं थे। यहाँ तक कि वे सभी धर्मों के समन्वय द्वारा एक विश्व धर्म का स्वप्न देखते थे। देश में नवजागरण की स्वस्थ परम्परा का सूत्रपात इस कोटि के सुधारकों द्वारा ही हुआ। इनके महत्व को रेखांकित करते हए श्री के. दामोदरन ने लिखा है, 'मोटे तौर पर कहा जाए तो उनकी विचार पद्धति में मानवतावाद को अधिक बल दिया जा रहा था और वे मनुष्य और मनुष्य के बीच भेदभाव समाप्त करने के इच्छुक थे। किन्तु अपने इन प्रयत्नों में वे पश्चिमी विज्ञान और उसके साथ जुड़े हुए तर्कयुक्त दृष्टिकोण को भी आत्मसात करना चाहते थे। राजा राममोहन राय के बाद इस नये दृष्टिकोण के दृढ़ प्रचारक महादेव गोविन्द रानाडे थे।' **(भारतीय चिंतन परम्परा, पृ. 381)**।

रानाडे ने पुनरूत्थानवादियों की आलोचना करते हुए कथा था, 'आखिर हम किस चीज का पुनरूत्थान करें? ... क्या हम पुत्रों को उत्पन्न करने की बारह विधियों अथवा विवाह की आठ विधियों का पुनरूत्थान करें, जिसमें लड़की को जबर्दस्ती उठा ले जाना सही माना जाता था तथा मिश्रित और अनैतिक संभोग को स्वीकार किया जाता था? .... क्या हम उस उन्मुक्तता का पुनरूत्थान करें, जो विवाह के बंधनों के मामले में ऋषियों और ऋषि–पत्नियों के बीच व्याप्त थी? क्या हम वर्ष–प्रति वर्ष बलि दिये जाने वाले पशुओं के अम्बारों को फिर खड़ा करके बलि प्रथा का पुनरूत्थान करें, जिसमें देवताओं के प्रसादन के लिए मनुष्यों की बलि चढ़ाने में भी संकोच नहीं किया जाता था।' इस तरह के दर्जनों प्रश्न उपस्थित करने के बाद रानाडे ने कहा है कि 'इन उदाहरणों से स्पष्ट हो जाना चाहिए कि पुरानी प्रथाओं और रस्म–रिवाजों का पुनरूत्थान करने से हमारा कल्याण नहीं होगा, न ही यह व्यावहारिक रूप से संभव ही है।' **(भारतीय चिंतन परम्परा पृ. 382–83 से उद्धृत)** इससे पुनरूत्थान के तहत अतीत की पुनर्प्रतिष्ठा की स्थिति स्पष्ट हो जाती है, जो आगे चलकर हिन्दू और मुस्लिम पुनरूत्थानवाद के रूप में नवजागरण और स्वस्थ राष्ट्रीय चेतना के विकास में बाधक बनी है। यहाँ आपके सामने लाला लाजपत राय और महादेव गोविन्द रानाडे के दो लम्बे उदाहरण और उनकी व्याख्या इसलिए प्रस्तुत की गयी है कि आप नवजागरण और पुनरूत्थान के मूल आशय को अच्छी तरह समझ जाएँ और दोनों में आसानी से अंतर कर सकें। जहाँ तक नवजागरण की अवधारणा का प्रश्न है, वह सामाजिक विकास के एक ऐतिहासिक मोड़ की सूचक है, जिसे मध्यकाल से आधुनिक काल में संक्रमण की स्थिति माना जा सकता है। मध्यकालीन सामंती सामाजिक संबंधों के विघटन और नवीन पूंजीवादी सामाजिक संबंधों के संघटन की प्रक्रिया में इसका आरंभ होता है। अतः नवजागरण का सूत्र संचालन प्रायः नवोदित पूंजीवादी शक्तियों और उनकी प्रभाव छाया में विकसित होने वाले चिंतकों के हाथ में होता है। यूरोप में यह मूलतः सामंत विरोधी जागरण रहा है, जब कि भारत इसे सामंतवाद विरोधी के साथ ही साम्राज्य–विरोधी स्वरूप प्राप्त हुआ है। विद्वानों ने इसकी तीन प्रमुख विशेषताओं की ओर संकेत किया है–इसका धर्मनिरपेक्ष स्वरूप, मानवतावादी विश्व दृष्टि और प्राचीन संस्कृति पर इसकी निर्भरता। अपने निरपेक्ष स्वरूप के कारण

नवजागरण कालीन चिंतन का केन्द्र ईश्वर के स्थान पर बना। इस मानव–केन्द्रित चिंतन में धर्म को व्यक्ति का निजी मामला घोषित करते हुए धर्मान्धता का विरोध किया गया। इस चिंतनधारा के उदीयमान पूंजीवादी विचारधारा की प्रभाव छाया में उसके विकास की आवश्यकताओं के अनरूप राजतंत्र, सामंतवाद और तमाम सारे सामंतवादी सड़े–गले मूल्यों–मान्यताओं के विरुद्ध कठोर संघर्ष किया। इस प्रक्रिया में उसने अंधविश्वास, भाग्यवाद, परलोकवाद और तमाम सारी अतार्किक सामाजिक–धार्मिक रूढ़ियों का भी विरोध का प्रयास किया। फलस्वरूप एक मानवतावादी विश्वदृष्टि के विकास में सहायता मिली।

नवजागरण की मानवतावादी विश्व दृष्टि के तहत मानव को, व्यक्ति मनुष्य को, विश्व का केन्द्र घोषित किया गया। उसके अनुभव, उसकी मानवीय गरिमा, उसका जीवन मानव–चिंतन का प्रमुख विषय बना। व्यक्ति की स्वतंत्रता, मानव मात्र की समानता, भाईचारे की भावना, सामाजिक जीवन और उसकी विभिन्न गतिविधियों को तथ्यों के अनुरूप तर्क के आधार पर समझने–परखने की वैज्ञानिक दृष्टि और सामाजिक उत्थान के प्रति आस्था जैसे स्वस्थ पूंजीवादी मूल्य नवजागरण की मानवतावादी उपलब्धियाँ हैं। मानवतावादी विश्वदृष्टि के तहत स्वतंत्रता और समानता को एक व्यापक आधार मिला। समाज में व्यक्ति की स्वतंत्रता के साथ ही परिवार में नारी की मुक्ति, नारी–पुरुष की समानता, आर्थिक क्षेत्र में सबको विकास के समान अवसर, सांस्कृतिक क्षेत्र में सबके विकास की समान सुविधाएँ, शिक्षा के समान अवसर आदि जैसे जनतांत्रिक मूल्य नवजागरण द्वारा प्रतिष्ठित हुए।

जहाँ तक प्राचीन संस्कृति पर नवजागरणकालीन संस्कृति की निर्भरता का प्रश्न है, इस पर विचार करते हुए पर्याप्त सावधानी की जरूरत है। आपको यह पहले ही बताया जा चुका है कि नवजागरण मध्यकालीन पतनशील सामंतवाद–विरोधी और आधुनिक पूंजीवादी युग की नयी अवधारणा है। मध्यकाल में भी प्राचीन सांस्कृतिक विरासत को व्यापक रूप से, ग्रहण किया गया था। लेकिन अपने पतनशील दौर में उसे इतना विकृत, जड़ और मानव–विरोधी बना दिया गया था कि उसने सामाजिक विकास के मार्ग को पूरी तरह अवरुद्ध कर दिया था। इसका विरोध करने के बावजूद नवजागरणकालीन चिंतकों ने अपनी नयी विश्वदृष्टि की पुष्टि के लिए प्राचीनता की विरासत का भरपूर उपयोग भी किया। इस क्रम में मध्यकालीन श्रेष्ठतम उपलब्धियों से भी प्रेरणा ली गयी। यह सही है कि 'अतीत की ओर चलो' (बैक टु द नेचर) या 'नेक जंगली' (बोनोबुल सेवेज) जैसी रूसों की मान्यताएँ और 'वेदों की ओर लौटो' जैसी स्वामी दयानन्द की मान्यताओं में पुनरूत्थान (रिवाइवलिज्म) की एक छाया अवश्य मिलती है। लेकिन नवजागरण प्राचीन संस्कृति या पुरातन का पुनरूत्थान नहीं था। नवजागरणकालीन मानवतावादियों ने अपनी नयी व्याख्या द्वारा प्राचीन विरासत का पुनरूद्धार किया और अपने युग की नयी परिस्थितियों और आवश्यकताओं के अनुरूप उसे एक नया रूप दिया। अतः नवजागरण की संस्कृति प्राचीनता की ओर प्रत्यागमन नहीं थी। उसमें प्राचीन और नवीन दोनों असाधारण रूप से जुड़े हुए थे और इस योग से निर्मित एक सर्वथा भिन्न और नयी वस्तु के रूप में वह हमारे सामने आती है।

बोध प्रश्न –1

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दें –

1. आधुनिक भारतीय नवजागरण को किस आंदोलन के संदर्भ में पुनर्जागरण माना गया?

   क) समाज सुधार आंदोलन

   ख) भक्ति आंदोलन

ग) भक्ति आंदोलन

घ) पुनरूत्थान आंदोलन

2. अतीत की पुनर्प्रतिष्ठा का आग्रह था :

क) भक्त कवियों में

ख) पूंजीपतियों में

ग) पुनरूत्थानवादियों में

घ) नास्तिकों में

3. वेदों की ओर लौटो का आहवान किसने किया?

....

....

....

अभ्यास

1) नवजागरण और पुनर्जागरण के अंतर को स्पष्ट कीजिए।

....

....

....

....

2) नवजागरण और पुनरूत्थान के अंतर को स्पष्ट कीजिए।

....

....

....

....

5.4 यूरोपीय नवजागरण की विशेषता

भारतीय नवजागरण की विशेषताओं को समझने के लिए आवश्यक है कि आपको संक्षेप में यूरोपीय नवजागरण से भी परिचित करवाया जाए। यूरोप का इतिहास इस तथ्य का स्पष्ट साक्षी है कि पश्चिमी यूरोप का नवजागरण मध्यकाल और आधुनिक काल के मध्य एक संक्रमण का काल था। इसमें सामंतवादी व्यवस्था और उदीयमान पूंजीवादी शक्तियों के बीच सीधी टक्कर हुई थी। चौदहवीं शताब्दी के आरंभिक दौर में इटली के उत्तरी और मध्यवर्ती क्षेत्रों में पूंजीवादी तत्व सबसे पहले प्रकट हुए। वहाँ के सौदागरों की बढ़ती हुई व्यापारिक गतिविधियों में अवरोध उत्पन्न करने वाली एक शक्ति परम्परागत सामंतवादी व्यवस्था थी। लेकिन यह व्यवस्था पूरी तरह अपने विघटन के कगार पर पहुँच चुकी थी। यहाँ के शहरी क्षेत्रों में सौदागरों और सामंतों के बीच भीषण संघर्ष हुआ, जिसमें सामंतों का प्रायः सफाया हो गया। इस प्रक्रिया में सामंती सामाजिक संबंधों को दृढ़ बनाने वाली शक्ति चर्च और

पादरी वर्ग की परलोकमुखी नैतिकता और तमाम सारी मध्यकालीन रूढ़ियों, धार्मिक अंधविश्वासों के विरुद्ध भी संघर्ष हुआ। साधारण जनता को इनके बंधन से मुक्ति मिली, जिससे नये चिंतक, कवि–कलाकार सामने आए। उन्होंने अपने को और अपने आसपास की दुनिया को बंधन मुक्त होकर देखा। इससे उसकी मानवीय विकास संबंधी दृष्टि, सौंदर्य–शास्त्रीय अभिरुचियाँ, अतीत को परखने और वर्तमान को समझने की दृष्टि में व्यापक बदलाव आया। सामंतयुगीन जड़ता, निराशावाद और भ्रामक आध्यात्मिक भटकनों से मुक्त होकर लौकिक विज्ञान, लौकिक साहित्य और कला का उदय हुआ। इस नयी मूल्य–व्यवस्था में मनुष्य समूचे चिंतन और क्रियाकलाप का केन्द्र बना। उसका अनुभव, उसकी आशा, आकांक्षा, भूख–प्यास अर्थात् उसका सांसारिक जीवन साहित्य और कला के मुख्य विषय बने।

इटली में पन्द्रहवीं शती के अंत और सोलहवीं शती के उदय तक चलने वाले अनेक युद्धों की वजह से इटली की मानवतावादी संस्कृति का संपर्क यूरोप के अन्य देशों से हुआ। फ्रांस, नीदरलैंड, जर्मनी, इंग्लैंड, स्पेन आदि जैसे यूरोपीय देशों में राष्ट्रीयता के विकास के साथ नवजागरण का मार्ग सुगम हो गया। इन सभी देशों के लिए इटली की मानवतावादी संस्कृति एक प्रेरक आदर्श बनी। इस दृष्टि से 14–15वीं शती का फ्रांसीसी क्रांति का विशेष महत्व है। फ्रांस के साथ ही जर्मनी की क्रांति का स्वरूप भी भू–स्वामित्व को लेकर किसानों और भूस्वामी सामंतों का संघर्ष था। अपनी आंशिक सफलता के बावजूद इन दीर्घकालान किसान युद्धों ने मानवतावादी संस्कृति के विकास की ठोस पृष्टभमि तैयार की। आगे चलकर राष्ट्रवाद की तीव्र लहर के साथ उदीयमान पूंजीवादी व्यक्तियों के नेतृत्व में किसान–मजदूर जनता ने सामंतवाद विरोधी संघर्ष में ऐतिहासिक सफलता हासिल की। फलस्वरूप नवजागरणकालीन संस्कृति को एक ठोस आधार प्राप्त हुआ। राष्ट्रीय चेतना के प्रभाव ने इसे एक जनतांत्रिक स्वरूप प्रदान किया।

यूरोपीय नवजागरण में समय और विशेषता की दृष्टि से एकरूपता नहीं मिलेगी। सांस्कृतिक विरासत, भौतिक और ऐतिहासिक विकास तथा राष्ट्रीय परम्परा की दृष्टि से इनकी भिन्नता और विशिष्टता इन देशों के नवजागरण में प्रतिबिंबित हुई। इटली के नवजागरण में आरंभ से ही व्यक्ति की स्वतंत्रता और व्यक्तित्व के स्वतंत्र निर्माण के आग्रह के साथ मध्यकालीन परलोकवाद या वैराग्यवाद का विरोध प्रमुख रहा है, जबकि फ्रांस के नवजागरण में फ्रांसीसी राष्ट्रवाद का स्वर प्रमुख है। वह ऐसा राष्ट्रवाद था जो समूचे यूरोप को मध्यकालीन सामंतीय सांस्कृतिक बंधनों से मुक्त करने को आतुर था। जबकि ब्रिटेन के नवजागरण की परिस्थिति और प्रकृति फ्रांस से एकदम भिन्न थी। इस भिन्नता पर प्रकाश डालते हुए डा. रामविलास शर्मा ने लिखा है, 'ब्रिटेन का औद्योगिक पूंजीपति वर्ग अपनी क्रांतिकारिता के लिए कभी विख्यात नहीं रहा। उसने पग–पग पर किसानों और मजदूरों के विरुद्ध जमींदारो से समझौता किया। सामंत विरोधी क्रांति फ्रांस में हुई जहां बड़ी–बड़ी जमींदारियां तोड़ दी गई और जमीन किसानों में बांट दी गयी। सामंत विरोधी क्रांति ब्रिटेन में नहीं हुई, जहां बड़ी–बड़ी जमींदारियां कायम रहीं, और 18वीं शती में उनमें सैकड़ों एकड़ नयी जमीन मिला दी गयी। ब्रिटेन में पूंजीपतियों ने जमींदारों से समझौता किया, क्रांति नहीं की। यही कारण है कि ब्रिटेन के पूंजीपतियों और जमींदारों ने फ्रांस की राज्य क्रांति का जोरदार विरोध किया। उन्होंने यूरोप के प्रतिक्रियावादी सामंत वर्ग से मिलकर फ्रांस को परास्त किया।' (महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिंदी नवजागरण, प. 10) वस्तुतः ब्रिटेन में व्यापारिक पूंजी का सबसे अधिक जोर था, वहाँ की राजसत्ता भी प्रायः भूस्वामियों के हाथ में थी। इसलिए आगे चलकर वहाँ जनतांत्रिक प्रणाली आरंभ होने पर भी राजतंत्र को प्रतीकात्मक रूप में बनाए रखा गया। 'हाउस ऑफ लार्ड्स' के रूप में भी सामंतों को प्रसन्न रखने का ही प्रयास वहाँ

किया गया। इस समूचे क्रम में इजारेदार व्यापारियों की भूमिका सबसे महत्वपूर्ण थी। ईस्ट इंडिया कंपनी ऐसे ही इजारेदार व्यापारियों की कम्पनी थी, जिसके प्रतिनिधियों ने व्यापार के माध्यम से भारत जैसे विशाल देश को पराधीनता की बेड़ियों से जकड़ लिया। इस तरह की पराधीनता और औपनिवेशिक गुलामी की परिस्थितियों में भारतीय नवजागरण आंदोलन विकसित हुआ। फलस्वरूप वहाँ के नवजागरण की विशेषताएँ यूरोप के अन्य देशों से पर्याप्त भिन्न है।

अपनी तमाम सारी भिन्नताओं के बावजूद यूरोपीय नवजागरण की कुछ सामान्य विशेषताएँ भी हैं, जिससे उसे एक निश्चित स्वरूप प्राप्त होता है। इसकी वजह से अलग–अलग देशों में वहाँ की लोक भाषाओं का साहित्यिक भाषा के रूप में उदय हुआ, सामंतवाद–विरोधी नयी जातीयता के आधार पर राष्ट्रीय चेतना का आविर्भाव हुआ और इन सबके कारण उसमें एक मानवतावादी विश्वदृष्टि उभर कर सामने आयी। आधुनिक इटालियन, जर्मन, स्पेनिश, इंग्लिश आदि भाषाओं को नया संस्कार मिला। नवजागरण की चेतना के पोषण और विस्तार में इनसे पर्याप्त सहायता मिली। नवजागरण आंदोलन मूलतः व्यक्ति मानव की स्वतंत्रता का आंदोलन था। फलस्वरूप इसका आरंभ बिंदु सामंतवादी मध्ययुगीन धर्मिक–सामाजिक रूढ़िवादिता का विरोध था। नवजागरण आंदोलन का सूत्रपात आधुनिक काल में व्यक्तिवाद को लेकर हुआ। इससे पूर्व यूरोप के जीवन पर चर्च छाया हुआ था। पोप, पादरी और उनके गिरिजाघर व्यक्ति की स्वतंत्रता पर कठोर अंकुश लगाए हुए थे। सम्राट–सामंत अपने दैवी अधिकारों की मान्यता की आड़ में साधारण जनता का क्रूर शोषण करते थे। इनके सहयोग धर्म तंत्र ने व्यक्ति मानव को दैवी चमत्कारों, अनेक सामाजिक रूढ़ियों और धार्मिक अंधविश्वासों की श्रृंखला में बांध रखा था। जब नवजागरण के सतय स्वतंत्रता की बात उठायी गयी तो उसका मतलब था कि व्यक्ति को उन श्रृंखलाओं से जिनमें सम्राटों–सामंतों ने, चर्च ने, धर्म ने, रूढ़ियों और अंधविश्वासों ने बांध रखा था–उससे मुक्त किया जाए। इसके लिए दैवी अधिकार के सिद्धांत को चुनौती देना अनिवार्य था। इसका प्रारंभिक प्रयास इटली में ही हुआ। आगे चलकर महान फ्रांसीसी क्रांति ने इसे चरमोत्कर्ष प्रदान किया। राजाओं के देवी अधिकार पूरी तरह नष्ट हो गए, जिसके फलस्वरूप यूरोप के अनेक देशों में लोकतांत्रिक प्रणाली स्थापित हुई। इस तरह यूरोपीय नवजागरण ने आधुनिक जनतंत्र को एक ठोस सांस्कृतिक आधार प्रदान किया।

यूरोपीय नवजागरण द्वारा निर्मित मानसिक स्वाधीनता के वातावरण में वैज्ञानिक प्रगति के साथ ही चिंतन के क्षेत्र में भी क्रांतिकारी परिवर्तन हुए। राजनीति एवं अर्थशास्त्र के क्षेत्र में मानव केन्द्रित नये सिद्धांत अस्तित्व में आए। साहित्य और कला के क्षेत्र में मानव केन्द्रित नये सौन्दर्यशास्त्र की रचना हुई। रूसो, वाल्टेयर, डिडरो जैसे मानवतावादी चिंतकों ने विवेक सम्मत एवं धर्मनिरपेक्ष मानवीय मूल्यों के रूप में स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व का नारा देकर यूरोपीय नवजागरण को एक ठोस आधार प्रदान किया।

5.5 भारतीय परिस्थितियों में नवजागरण की स्थिति

भारत की परिस्थितियाँ यूरोप से पर्याप्त भिन्न रही हैं। यहाँ आठवीं शती के बाद जिस मतवाद का सबसे अधिक प्रभाव बढ़ा वह इहलोक के परे का चिन्तन अर्थात् वेदांत दर्शन था। वेदांत में भौतिक जगत को माया, मानव शरीर को आत्मा का बन्दीगृह तथा जन्म–मरण के बंधनों से मुक्ति को मानव जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य बताया गया था। आत्म संयम, इन्द्रिय निग्रह, ब्रह्मचर्य, निष्कामता तथा वहम में ध्यान को मनुष्य का सर्वोच्च गुण समझा जाने लगा। इस प्रकार जब देश के महान चिंतक लौकिक जगत से परे परलोक के प्रश्नों का

समाधान ढूंढने में व्यस्त थे तब बहुसंख्यक समाज महत्वाकांक्षी राजाओं और उनके सहयोगी स्वार्थ परायण पण्डे–पुरोहितों के प्रभाव में आ गया। यहाँ के आम जन–जीवन में बहुप्रचारित कर्म–फल का सिद्धांत अपनी जड़ जमाए हुए था। वह सिद्धांत यह प्रतिपादित करता है कि वर्तमान जीवन के कष्ट हमारे पूर्वजन्म में किए गए पापों के फल हैं, इन्हें किसी भी मानवीय प्रयास से दूर नहीं किया जा सकता। इस मान्यता ने गरीब और उत्पीड़ित बहुसंख्यक समुदाय को अपने निष्ठुर भाग्य से समझौता करने के लिए मानसिक रूप से तैयार कर लिया। प्रचलित जाति–प्रथा एवं अस्पृश्यता का अमानवीय रूप और भी क्रूर बन गया। यूरोप के मध्ययुगीन अंधकार युग की तरह भारत में भी एक अंधकार युग जैसी स्थिति बनी।

चौदहवीं–पन्द्रहवीं शती के भक्ति आंदोलन ने सामाजिक–धार्मिक जड़ता एवं विषमताओं के विरुद्ध एक सार्थक विद्रोह अवश्य किया लेकिन कई कारणों से इसे सफलता नहीं मिली और अंततः यह एक धार्मिक सुधार आंदोलन ही बनकर रह गया। फिर भी इसमें नवजागरण के अनेक तत्व विद्यमान थे। इसके महत्व पर प्रकाश डालते हुए के. दामोदरन ने लिखा है, 'सांस्कृतिक क्षेत्र में इसने राष्ट्रीय नवजागरण का रूप धारण किया, सामाजिक विषयवस्तु में वह जाति–प्रथा के आधिपत्य और अन्यायों के विरुद्ध अत्यंत महत्वपूर्ण विद्रोह का द्योतक था। इस आंदोलन ने भारत में विभिन्न राष्ट्रीय इकाइयों के उदय को नया बल प्रदान किया, साथ ही राष्ट्रीय भाषाओं और उनके साहित्य की अभिवृद्धि का मार्ग भी प्रशस्त किया। इस प्रकार मध्य युग के इस महान् आंदोलन ने न केवल विभिन्न भाषाओं और विभिन्न धर्मों वाले जन समुदायों की एक सुसम्बद्ध भारतीय संस्कृति के विकास में मदद की, बल्कि सामंती दमन और उत्पीड़न के विरुद्ध संयुक्त संघर्ष चलाने का मार्ग भी प्रशस्त किया।' (भारतीय चिंतन परम्परा, पृ. 327) यह समस्त भारत में एक निश्चित उद्‌देश्य को लेकर चलने वाला आंदोलन था, जिसमें हिन्दू और मुसलमान दोनों ही शामिल थे। 'भारतीय नवजागरण की पृष्ठभूमि' शीर्षक के अंतर्गत आपको इस आंदोलन की असफलता के कारणों के संबंध में परिचित करा दिया गया है, इनमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण कारण है। व्यापारी, कारीगर, दस्तकार के रूप में आर्थिक आधार की कमजोरी। इससे पहले कि एक वर्ग के रूप में उदीयमान पूंजीपति वर्ग संगठित रूप से सामंती व्यवस्था को चुनौती देता, एक अधिक शक्तिशाली विदेशी पूंजीपति वर्ग अर्थात् ब्रिटिश पूंजीपतियों ने इस देश को ब्रिटिश साम्राज्य का अंग बना लिया। आगे हम भारत की विशिष्ट परिस्थितियों में नवजागरण की स्थिति की संक्षिप्त जानकारी आपको दे रहे हैं।

5.5.1 मध्ययुगीनता की समाप्ति

नवजागरण की एक महत्वपूर्ण विशेषता है आधुनिकता की शुरुआत और मध्ययुगीनता की समाप्ति। अंग्रेज जब यहाँ आए तो उस समय हमारी सांस्कृतिक विरासत में बहुत कुछ ऐसा था जो गला–सड़ा और जड़ हो चुका था। कर्मफल, भाग्यवाद, परलोकवाद, चमत्कारवाद, जातिवाद, जात–पांत पर आधारित ऊँच–नीच की भावना जैसी सामंतवादी विकृतियाँ हमारे सामाजिक–सांस्कृतिक जीवन पर हावी थीं। ब्रिटिश शासन काल में जब यहाँ पूंजीवाद का विकास होने लगा तो यहां की सामंतवादी व्यवस्था को चुनौती देने की संभावना अवश्य बनी। लेकिन ईस्ट इंडिया कंपनी और साम्राज्यवादी ढाँचे के अंदर यहाँ जिस प्रकार का पूंजीवाद पनपने लगा उसमें सामंतवादी व्यवस्था और उसके मूल्य–मानों से टक्कर लेने की क्षमता नहीं थी। ऐसा करना उसके हितों के भी विरुद्ध था। अतः देशी पूंजीवादी शक्तियों के उदय के बावजूद यहाँ मध्यकालीनता की समाप्ति और आधुनिकता का आरंभ देर से हुआ। इसका सूत्रपात राजा राममोहन राय के नेतृत्व में हुआ, जिन्हें आधुनिक भारत का पिता कहा जाता है।

राजा राममोहन राय ने मध्यकालीन सड़ी–गली धार्मिक–सामाजिक रूढ़ियों और अंधविश्वासों का जोरदार विरोध किया। बहुदेवोपासना, अवतारवाद, पुनर्जन्म, मूर्तिपूजा आदि जैसी मान्यताओं के विरोध के साथ ही समाज सुधार की भावना से प्रेरित होकर सती–प्रथा की समाप्ति और विधवा–विवाह को कानूनी मान्यता दिलाना, नारी शिक्षा को प्रोत्साहन देना, बाल–विवाह और जात–पांत, छुआछूत की मान्यता का विरोध करना, अंतर्जातीय विवाह की स्वीकृति आदि जैसे कार्यों के लिए उन्होंने कठोर संघर्ष किया। इसके लिए उन्होंने 1828 ई. में ब्रह्त समाज की स्थापना के साथ ही प्रचार–प्रसार के माध्यम के रूप में राष्ट्रीय पत्रकारिता को भी जन्म दिया। 1821 ई. में 'संवाद कौमुदी' (बंगला), 1822 ई. में मिरातउल अखबार (फारसी) और 1829 ई. में 'बंगदूत' (हिंदी) जैसी पत्रिकाएँ निकालीं। ये तीनों ही पत्र राष्ट्रीय नवजागरण के संदेशवाहक बने। बंगाल में राममोहन राय के साथ ही ईश्वरचंद्र विद्यासागर और आगे चलकर केशवचन्द्र सेन, देवेन्द्रनाथ ठाकुर आदि चिंतकों ने इस नये आंदोलन का नेतृत्व किया। महाराष्ट्र में महात्मा ज्योतिबा फुले, आगंरकर और आगे चलकर महादेव गोविन्द रानाडे आदि उदारवादी नेताओं ने नवजागरण की परम्परा को विकसित किया।

5.5.2 औपनिवेशिक पराधीनता और पूंजीवादी विकास

दुनिया के सबसे बड़े और शक्तिशाली साम्राज्य ब्रिटेन का गुलाम होने के कारण भारतीय नवजागरण का विकास अवरुद्ध रहा। ईस्ट इंडिया कम्पनी के शासन काल में सत्ताधारी वर्ग का उद्‌देश्य केवल व्यापारिक लाभ प्राप्त करना था। देश के नव निर्माण में उसकी कोई रुचि नहीं थी। 1857 के महा जन–विद्रोह के बाद ब्रिटिश शासकों की नीति में एक मौलिक परिवर्तन हआ। राष्ट्रीय स्वाधीनता के इस प्रथम संग्राम ने विदेशी सत्ता की नींव हिला दी थी। इसमें समूचे देश की एकता और विदेशी पराधीनता से मुक्ति का स्पष्ट उद्‌देश्य निहित था। धर्म और वर्ण की सीमाओं को तोड़ कर इसमें हिन्दुओं के साथ हजारों की संख्या में मुसलमान भी शामिल हुए थे। इसकी प्रमुख विशेषता की ओर संकेत करते हुए डा. रामविलास शर्मा ने लिखा है, 'इसका नेतृत्व उन किसानों ने किया जो (ब्रिटिश) फौज में सिपाहियों और सूबेदारों के रूप में काम कर रहे थे। अनेक छोटे–बड़े सामंत इनके सहायक थे, संग्राम के नेता नहीं। फौज के भीतर वाले किसानों के साथ गांवों के गैर–फौजी किसान थे, और इन दोनों ने मिलकर जो हथियारबंद लड़ाई चलाई, वैसी लड़ाई न तो सन् 1857 से पहले कभी चलाई गयी थी और न उसके बाद कभी चलाई गयी।' (महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिंदी नवजागरण) इस संग्राम की गंभीरता के फलस्वरूप ही ब्रिटिश शासकों को अपनी नीतियों में मौलिक परिवर्तन करना पड़ा। इसके पूर्व उनकी नीति आमतौर पर देशी राजे–रजवाड़ों और सामंत–सरदारों के खिलाफ थीं। क्योंकि उन्हें जीत कर समस्त भारत भूमि पर अधिकार करना उन्हें जरूरी लगा था। इसीलिए ब्रिटिश शासकों ने स्वयं द्वारा बनाए गए नये जमीदारों, बिचौलिए भारतीय व्यापारियों, कम्पनी राज पर निर्भर पढ़े–लिखे बाबुओं और भारतीय ईसाइयों को अपना सामाजिक आधार बनाया था। लेकिन 1857 के बाद उन्होंने भारतीय सामंतों को अपने शासन का सामाजिक आधार बनाया। अब देशी रियासतों को बनाए रखने की नीति अपनायी गयी, उनके मुखियों को प्रशासन में शामिल किया गया, उन्हें हर तरह की सुविधा और सुरक्षा प्रदान की गयी। इसके साथ ही जमींदारी और रैयतवारी भूमि व्यवस्था चालू कर भारत की आत्मनिर्भर ग्राम–व्यवस्था को पूरी तरह ध्वस्त किया। अब ब्रिटिश शासकों का प्रधान कार्य नवजात औद्योगिक पूंजीपति वर्ग और भारतीय जनता को अपने काबू में रखना रह गया।

इस संबंध में इस इकाई के आरंभ में ही आपको बताया गया है कि नव जागरण का अनिवार्य संबंध पूंजीवादी विकास के साथ है। विदेशियों की पराधीनता के अंतर्गत यहाँ होने वाले प्रतिबंधित पूंजीवादी विकास में वह क्षमता नहीं थी कि इस देश के सांस्कृतिक जीवन में व्याप्त पिछड़ेपन को दूर करने में सफल हो पाता। इसके विपरीत इस तरह के पूंजीवादी विकास के कारण यहाँ का नहीं विकृतियां पैदा हुई। असहाय पूंजीपति, वर्ग के साथ ही मध्यवर्ग के अधिकांश लोगों में ओछी स्वार्थपरता, अवसरवादिता, समझौता परस्ती, आपा–धापी का प्रभाव ही अधिक रहा। अपने आत्म सम्मान की रक्षा करने, पहलकदमी करने, बौद्धिक ईमानदारी और साहसिकता दिखाने, सामाजिक जीवन में सुधार लाने, वैज्ञानिक दृष्टि को विकसित करने वाली मध्यवर्गीय बेहतर प्रवृत्तियाँ यहाँ बहुत कम दिखायी दी।

ब्रिटिश साम्राज्यवादी शासन के विरुद्ध जब देश की स्वाधीनता की लड़ाई शुरू हुई तो इससे एक गुणात्मक परिवर्तन आया। देशी पूंजीपतियों के एक बड़े हिस्से ने भी जनतांत्रिक मूल्यों और आदर्शों का सहारा लेकर विदेशी शासनतंत्र के विरुद्ध मेहनतकश जनता को खड़ा करना शुरू किया। इससे समाज में नयी चेतना का उदय हुआ। ग्रामीण किसानों में जागृति के चिह्न प्रकट होने लगे। मध्यवर्ग के बहुत से लोगों में भी अवसरवादी कायरता के स्थान पर जनतांत्रिक आदर्शों के लिए जोखिम उठाने की प्रवृत्ति ने जोर पकड़ा। इस प्रकार ज्यों–ज्यों स्वतंत्रता आंदोलन का प्रभाव व्यापक होता गया, देश में नवजागरण की लहर भी तेज होती गयी। जब किसान–मजदूर वर्ग हिस्सेदारी इस आंदोलन में काफी बढ़ गयी तो हमारे जनतांत्रिक आदर्श अधिक ठोस और व्यापक होने लगे। हमारी प्राचीन सांस्कृतिक विरासत में जो कुछ रूढ़, सड़ा–गला और अप्रासंगिक हो चुका था, उसे छोड़ने के साथ ही वहां जो कुछ स्वस्थ और ग्राह्य था, उसे आत्मसात करते हुए नवविकसित जीवन मूल्यों के साथ उसे जोड़ने का महत्वपूर्ण कार्य भी आरंभ हुआ। हिंदी साहित्य के क्षेत्र में भारतेन्दु और उनके मण्डल के लेखकों से लेकर द्विवेदी युगीन पत्र–पत्रिकाओं के माध्यम से ये मूल्य समाज के एक बड़े हिस्से तक पहुँचे। छायावाद के प्रसाद, निराला, पंत आदि ने भी अपने ढंग से इन्हें आगे बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। प्रेमचंद की रचनाओं में स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व जैसे नवजागरण के मूल्यों के धर्मनिरपेक्ष स्वरूप का चरमोत्कर्ष हम देख सकते हैं। प्रगतिशील साहित्यान्दोलन ने इसे और अधिक विस्तृत और ठोस बनाने का प्रयास किया। ऐसा ही विकास हम बंगला, मराठी, तेलुगु, मलयालम, उर्दू, गुजराती आदि अन्य भारतीय भाषाओं में भी देख सकते हैं।

5.5.3 ब्रिटिश शासन और अंग्रेजी शिक्षा

बहुत से विदेशी और कुछ भारतीय विद्वानों की मान्यता है कि भारत में राष्ट्रीय जागरण का प्रमुख कारण ब्रिटिश शासन और अंग्रेजी की शिक्षा का प्रचार–प्रसार है। इस संबंध में औपनिवेशिक दासता के अंतर्गत आपको पहले ही बताया जा चुका है कि ब्रिटिश व्यापारिक पूंजीपतियों ने भारत पर इसलिए कब्जा नहीं किया था कि वे भारत में राष्ट्रीय जागरण लाना चाहते थे। अपने पूरे शासन काल में उनका उद्‌देश्य यही रहा है कि भारत जैसे कृषि प्रधान विशाल देश को कच्चे माल के निर्यात और ब्रिटेश में बने पक्के माल के आयात का बाजार बनाया जाए। यही उनका उद्‌देश्य था, जिसमें उनका आर्थिक लाभ भी निहित था। अतः उन्होंने जो भी प्रशासनिक सुधार किए, आर्थिक नीतियां निर्धारित की, अंग्रेजी भाषा को उच्च शिक्षा का माध्यम बनाया, आधुनिक विज्ञान की उपलब्धियों का सहारा लेकर रेल और संचार के माध्यमों का विकास किया, प्रेस की स्थापना की। इन सब कार्यों में उसका आर्थिक–भौतिक लाभ निहित था। लेकिन उनकी इच्छा के विरुद्ध इससे राष्ट्रीय एकता नवजागरण और राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलनों को भी सहायता मिली–इस बात से इन्कार नहीं किया जा

सकता। इन पर अलग–अलग विचार करके हम इसकी वास्तविकता को आसानी से समझ सकते हैं।

जहाँ तक ब्रिटिश शासन का प्रश्न है, कुछ विचारकों ने इस बात पर जोर दिया है कि भारत को एक देश और फिर एक राष्ट्र के रूप में विकसित करने में उसकी भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है। लेकिन यह मान्यता गलत है कि ब्रिटिश शासन की अनुपस्थिति में यहाँ राष्ट्रीय चेतना का विकास ही संभव नहीं था। राष्ट्रीयता और राष्ट्रीय नवजागरण का संबंध पूंजीवादी शक्तियों के उदय के साथ जुड़ा हुआ है। अंग्रेजों के न आने पर भी इन शक्तियों का उदय यहाँ होता और राष्ट्रीय चेतना का प्रसार होता। इस संबंध में श्री अयोध्या सिंह ने लिखा है, भारत में ब्रिटिश सौदागरों के आने के समय तक पूंजीवाद का जिस हद तक विकास हुआ था, उससे स्पष्ट है कि वह उन्नीसवीं सदी तक अवश्य ही शक्तिशाली हो जाता राजसत्ता या तो उसके हाथ में होती या उसपर उसका बहुत अधिक प्रभाव होता। वह साम्राज्यवादियों के अनुप्रवेश को रोकने के लिए देश के अन्य वर्गों को अपने नेतृत्व में गोलबंद करता।' भारत का मुक्ति संग्राम, पृ. 23)। इससे स्पष्ट है कि ब्रिटिश शासन ने पूरे देश को एक शासन सूत्र में अवश्य बांधा, लेकिन उसने देश के औद्योगीकरण के मार्ग में रोड़े ही अटकाए। उनकी अनुपस्थिति में औद्योगिक विकास की प्रक्रिया सहज और स्वाभाविक होती तथा यूरोप के बहुत सारे देशों की तरह सामंतवाद विरोधी आंदोलन की प्रक्रिया में यहां भी नवजागरण के मूलभूत तत्वों का अधिक ठोस और व्यापक ढंग से प्रचार–प्रसार होता।

जहां तक अंग्रेजी शिक्षा के महत्व का प्रश्न है, राष्ट्रीय चेतना के विकास में इसकी भूमिका से इंकार नहीं किया जा सकता। लेकिन इसके अभाव में राष्ट्रीय आंदोलन और नवजागरण की संस्कृति का विकास ही न होता–यह मानना एकदम गलत है। अंग्रेजी शिक्षा द्वारा ब्रिटिश साम्राज्यवादी भारत में प्रशासन और व्यापारिक फर्मों के लिए सस्ते क्लर्क और दूसरी तरह के कर्मचारी पैदा करना चाहते थे। मैकाले की उच्च शिक्षा का उद्देश्य एक ऐसा पढ़ा–लिखा समूह तैयार करना था, जो ब्रिटिश शासन का मजबूत आधार बन सके। इस संबंध में उन्हें पूरा विश्वास था कि अंग्रेजी स्कूलों से कोई भी भारतीय नौजवान अपने माता–पिता और पूर्वजों के धर्म में अविश्वास करना सीखे बिना नहीं निकलेगा। मैकाले को पूरा विश्वास था कि उनकी शिक्षा प्रणाली भारतीय युवकों की राष्ट्रीय चेतना को कुंठित कर उन्हें सच्चा ब्रिटिश राजभक्त बनाएगी। लेकिन उसके विश्वास के विपरीत इससे नवजागरण के लिए वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास हुआ।

यहाँ यह तथ्य भी विचारणीय है कि भारत में 19वीं शती में अंग्रेजी भाषा का ज्ञान न भी होता तो भी यहाँ राष्ट्रीय चेतना का विकास अवरुद्ध नहीं होता। नवजागरण और राष्ट्रीय चेतना के विकास का सीधा संबंध तत्कालीन सामाजिक आवश्यकता से है। इसकी ओर स्पष्ट संकेत करते हुए रजनीपाम दत्त ने लिखा है, 'भारतीय बूर्जुआ वर्ग (पूंजीपति वर्ग) का उदय और ब्रिटिश बूर्जुआ वर्ग के आधिपत्य के खिलाफ उसकी बढ़ती प्रतियोगिता अवश्यंभावी थी। शिक्षा की पद्धति चाहे जो भी होती और अगर भारतीय बूर्जुआ वर्ग को, अन्य प्रत्येक विचारधारा से बिल्कुल अलग रख कर, साधु–संन्यासियों की तरह सिर्फ संस्कृत के वेदों की शिक्षा दी जाती तो संस्कृति के वेदों में भी सुनिश्चित तौर से उन्हें प्रेरणादायक सिद्धांत और नारे मिले जाते।' (आज का भारत पृ. 608) कहने का मतलब यह कि राष्ट्रीय चेतना के विकास और नवजागरण की मुख्य प्रेरणा तत्कालीन परिस्थितियों में निहित थी, अंग्रेजी शिक्षा में नहीं। नवजागरण और राष्ट्रीय चेतना के विकास में सबसे महत्वपूर्ण भूमिका बंगला, हिंदी, मराठी जैसी देशी भाषाओं की रही है।

बोध प्रश्न– 2

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दें।

1. यूरोप के नवजागरण के उदय का कारण था :

   क) सामंतवाद की समाप्ति और समाजवाद का आरंभ

   ख) लोकतंत्र की स्थापना और राजतंत्र की समाप्ति

   ग) पूंजीवादी शक्तियों की पराजय और सामंतों की विजय

   घ) सामंतवादी व्यवस्था और उदीयमान पूंजीवादी शक्तियों में टक्कर

2. मध्ययुगीनता की पहचान हैः

   क) भाग्यवाद और कर्मफल में विश्वास

   ख) जातिवाद में विश्वास

   ग) परलोकवाद में विश्वास

   घ) उपर्युक्त सभी

3. 1857 के बाद ब्रिटिश शासकों की नीति में मौलिक परिवर्तन क्या हुआ?

   ....

   ....

   ....

अभ्यास

3) नवजागरण में प्राचीन सांस्कृतिक विरासत के तर्कसंगत और विवेक सम्मत उपयोग के महत्व को रेखांकित कीजिए।

   ....

   ....

   ....

   ....

4) नवजागरण में अंग्रेजी शिक्षा की भूमिका स्पष्ट काजिए।

   ....

   ....

   ....

   ....

5.6 विभिन्न धार्मिक–सामाजिक सुधार आंदोलन की भूमिका

राष्ट्रीय चेतना और नवजागरण के विकास की पृष्ठभूमि प्रस्तुत करने में 19वीं शती के सामाजिक–सांस्कृतिक आंदोलनों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। इनमें राजा राममोहन राय

और उनके ब्रहम समाज (1828), केशवचन्द्रसेन और उनके प्रार्थना समाज (1867), दयानंद सवस्वती और उनके आर्यसमाज (1875) आदि का उल्लेखनीय योगदान रहा है। इन सभी आंदोलनों का मूलाधार प्राचीन संस्कृति और धर्म रहा है, जो मध्ययुगीन अवैज्ञानिक अवधारणाओं से कभी पूरी तरह मुक्त नहीं हो पाए। फिर भी उनकी सामाजिक अंतर्वस्तु सामंतवाद विरोधी और उपनिवेशवाद विरोधी थी।

राजा राममोहन राय और उनके ब्रह्म समाज ने केवल मध्यकालीन सामाजिक–आर्थिक रूढियों और विकृतियों के विरुद्ध ही संघर्ष नहीं किया, बल्कि भारतीय जनता के व्यक्ति स्वातंत्र्य, अंग्रेजों के साथ उनकी समानता और जनतांत्रिक मूल्यों पर आधारित अनेक प्रशासनिक सुधारों के लिए भी कठोर अभियान चलाया। उनके सभी सुधार भारतीय जनता के सामाजिक–राजनैतिक लाभ के उद्देश्य से प्रेरित थे। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में घोषित किया था, 'मुझे यह कहते हुए दुख हो रहा है कि हिन्दू धर्म की जिस वर्तमान प्रणाली पर हम लोग चल रहे हैं, वह हमारे राजनीतिक हितों को बढ़ावा देने वाली नहीं है। जात–पात, के भेद –भावों ने, जिन्होंने जनता को कितने ही टुकड़ों में बांट रखा है, हमें राजनीतिक भावनाओं से शून्य कर दिया है।.....मेरा विचार है कि इस हिन्दु धर्म में कुछ–न–कुछ परिवर्तन होने ही चाहिएं, कम–से–कम इसलिए कि हमको राजनीतिक तौर से लाभ हो और जनता को सामाजिक सुख मिल सके।' इस कार्य के लिए उन्होंने पश्चिमी विज्ञान द्वारा निर्मित नये मूल्यों का आत्मसात करते हए भारत के परम्परागत मूल्यों क साथ उन्हें जोड़कर नये युग की चुनौती का सामना करने लायक बनाया।

राजा राममोहन राय और उनके ब्रहम समाज की परम्परा आगे केशवचन्द्र सेन और महादेव गोविन्द रानाडे ने प्रार्थना समाज के माध्यम से आगे बढ़ाया। न्यायमूर्ति रानाडे ने प्रार्थना समाज के लिए अपना पूरा जीवन ही अर्पित कर दिया। इस 'समाज' द्वारा रानाडे ने हिन्दू धर्म और समाज के सुधार के साथ ही हिन्दू–मुस्लिम जनता की एकता का भी महत्वपूर्ण प्रयास किया। उनका सबसे महत्वपूर्ण उद्देश्य था, 'सामाजिक कुरीतियों के विरुद्ध संघर्षरत देश भर में बिखरे विभिन्न संगठनों और आंदोलनों के प्रतिनिधियों को आपसी विचार–विमर्श के लिए प्रतिवर्ष एक स्थान पर एकत्र करना। 1885 में स्थापित भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशनों के बाद उसी पण्डाल में 'राष्ट्रीय सामाजिक सम्मेलन' का भी अधिवेशन होता था। लेकिन 1895 के पूना सम्मेलन में बाल गंगाधर तिलक आदि गरमदल के नेताओं के विरोध से यह प्रक्रिया समाप्त कर दी गयी। तिलक के उकसावे में आकर चापेकर बंधुओं ने यहाँ तक धमकी दे डाली कि यदि 'सामाजिक–राष्ट्रीय सम्मेलन' कांग्रेस के पण्डाल में किया गया तो उसमें आग लगा दी जाएगी। इससे स्पष्ट होता है कि कांग्रेस के गरमदली नेता सामाजिक सुधार के आदोलनों से खुश नहीं थे। वे परम्परागत हिन्दू धर्म की मान्यताओं पर किसी भी तरह का आघात बर्दाश्त करने के लिए तैयार नहीं थे। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि 1890 में जब लड़कियों के विवाह की उम्र 10 साल से बढ़ाकर 12 साल करने का कानून बनने लगा तब तिलक ने इसका जबरदस्त विरोध किया था, जबकि रानाडे, गोखले आदि इसका समर्थन कर रहे थे।

दयानंद सरस्वती और उनके 'आर्य समाज' का सुधार संबंधी दृष्टिकोण राममोहन राय, रानाडे आदि जैसे सुधारकों से पर्याप्त भिन्न था। आर्य समाज के आंदोलन ने भी बाल विवाह, वृद्ध विवाह, बहुविवाह और जात–पात का विरोध किया। स्त्री शिक्षा और विधवा विवाह का समर्थन भी इसकी एक मुख्य विशेषता थी। मध्यकालीन कर्मकांडी व्यवस्था और पुरोहितवाद का भी इसने विरोध किया। लेकिन इसके साथ ही बौद्ध, जैन, ईसाई, इस्लाम आदि सभी धर्मों की निन्दा करते हुए इन्होंने केवल वेद विहित हिन्दू धर्म को ही सच्चा धर्म माना। ब्रह्म

समाज, प्रार्थना समाज आदि के सुधारों की निंदा करते हुए उन्हें देशभक्ति से हीन और ईसाइयों का अनुकरण बताया। दयानंद सरस्वती ने ईसा, मोहम्मद की शिक्षाओं की आलोचना करने के साथ ही मध्यकालीन, कबीर, नानक, चैतन्य आदि संतों के आदर्शों का भी विरोध किया। ईसाइयों और मुसलमानों को हिन्दू बनाने के अपने 'शुद्धि आंदोलन' द्वारा उन्होंने राष्ट्रीय एकता में बाधक साम्प्रदायिकता की भावना में वृद्धि की। इसके बावजूद स्वदेशी राज्य को सर्वोत्तम और विदेशी राज्य को दुखदायक बताकर इन्हीं राष्ट्रीयता की भावना को दृढ़ किया। लेकिन इनकी राष्ट्रीयता की भावना हिन्दू राष्ट्रवाद तक सीमित हो गयी। इसके संबंध में पंडित जवाहरलाल नेहरू ने लिखा है कि 'आर्य समाज प्रतिरोधात्मक और गतिरोध से पीड़ित हिन्दू धर्म को एक आक्रामक, प्रचारात्मक धर्म बनाने का प्रयत्न था। उसका उद्देश्य हिन्दू धर्म का पुनरूत्थान करना था। इस आंदोलन को जिस कारण कुछ बल प्राप्त हुआ, वह था उस पर राष्ट्रीयता का रंग चढ़ाना। वास्तव में यह हिन्दू राष्ट्रवाद अपना सर उठा रहा था, उसका भारतीय राष्ट्रवाद बनना कठिन हो गया।' (विश्व इतिहास की झलक, पृ. 436)। आर्य समाज अपनी इस्लाम विरोधी और ईसाई विरोधी प्रवृत्ति के बावजूद समाज के शिक्षित मध्यवर्ग को अपनी ओर तेजी से आकृष्ट करने में सफल हुआ। आर्य समाज से प्रभावित बहुत सारे लोगों ने राष्ट्रीय आंदोलन में बढ़–चढ़कर हिस्सा लिया।

हिंदुओं की तरह मुसलमानों में समाजसुधार और नई जाग्रति लाने का कार्य सैयद अहमद खां (1817–1898) ने किया। उन्होंने मुसलमानों को नये जमाने के अनुसार ढालने, नयी शिक्षा में दीक्षित करने और नये विचारों को अपनाने के लिए प्रेरित किया। अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय की स्थापना इस दृष्टि से महत्वपूर्ण थी।

उपर्युक्त तथ्यों से यह पूरी तरह स्पष्ट हो जाता है कि ये सभी आंदोलन सुधारवादी आंदोलन थे, जिनमें पुनरूत्थान और नवजागरण के प्रगतिशील मूल्यों का मिश्रण था। उन्होंने भारत की सामंती समाज व्यवस्था के मुख्य आधार वर्ग व्यवस्था, जात–पात, भाग्यवाद और रूढ़िग्रस्त तमाम अंधविश्वासों पर आक्रमण कर उदार पूंजीवादी विचारधारा के लिए मार्ग प्रशस्त किया। 19वीं शती के अंतिम और 20वीं शती के आरंभिक दशकों में राष्ट्रीय आंदोलन की तीव्रता के साथ जब किसान–मजदूर शक्तियों की सहभागिता भी बढ़ी तब राष्ट्रीयता के साथ ही नवजागरण की स्वस्थ चेतना का विस्तार हुआ।

बोध प्रश्न –3

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दें–

1. निम्नलिखित संगठनों की स्थापना किसने की?

   क) आर्य समाज...

   ख) प्रार्थना समाज ....

   ग) ब्रह्म समाज...

2. गरमपंथी नेताओं का समाज सुधार आंदोलनों के प्रति क्या रुख था?

   ....

   ....

   ....

5) आर्य समाज का दृष्टिकोण किस रूप में ब्रह्म समाज और प्रार्थना समाज से भिन्न था? स्पष्ट कीजिए।

....

....

....

....

5.7 राष्ट्रीय चेतना से अभिप्राय

आधुनिक अवधारणा के रूप में राष्ट्रीय भावना की परिभाषा :

राष्ट्र और राष्ट्रीय भावना एक आधुनिक अवधारणा है, जिसका उदय सर्वप्रथम यूरोप में पूंजीवाद के विकास के साथ हुआ। नवजागरण की भांति यह भी एक पुरानी समाज व्यवस्था की समाप्ति और नयी समाज–व्यवस्था के उदय काल में विकसित होने वाली अवधारणा है। मध्यकालीन यूरोप एक धर्मतंत्र के तहत रोम के पोप के अधीन था, जिसे रोमन साम्राज्य के नाम से जाना जाता था। उसके शासनादेशों से विभिन्न सम्राट और सामंतशाहियाँ अपना शासन चलाती थीं। लेकिन पूंजीवादी शक्तियों के उदय और विकास में इससे बाधा पड़ती थी। सामंत–सरदारों के दैवी अधिकारों की मान्यता की वजह से उनकी अधिकार सीमा में रहने वाले किसान–मजदूर और विभिन्न धंधों में लगे कारीगर–शिल्प की जनता का भी निर्मम शोषण होता था। उन्हें अपने पेशा बदलने या अन्यत्र जाकर काम करने तक ही स्वतंत्रता नहीं थी। अतः सौदागरों और पूंजीपतियों के नेतृत्व में सामंतशाही के विरुद्ध शोषित–उत्पीड़ित आम जनता का गोलबंद होना स्वाभाविक था। इस प्रक्रिया में इटली, फ्रांस, इंग्लैंड, स्पेन, नीदरलैंड में पूंजीवादी क्रांतियां हुईं। अपने देशी बाजार की सुरक्षा के लिए 'एक राज्य एक राष्ट्र' का सिद्धांत सामने आया। औद्योगिक उत्पादन को अधिक गतिशील करने के लिए सबकी स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व की भावना के जनतांत्रिक नारे सामने आए। साधारण किसान–मजदूर और कारीगर जनता को अपना श्रम बेचने की स्वतंत्रता मिली, जिससे औद्योगिक क्षेत्रों के लिए आसानी से मजदूर उपलब्ध हुए। इसी प्रक्रिया में आधुनिक राष्ट्र की परिकल्पना साकार हुई। नवोदित पूंजीपति वर्ग के लिए सबसे बड़ी समस्या बाजार की होती है। वह स्वयं अपने को और अपने 'देशी' बाजार को सुरक्षित रख कर अन्य देशों के पूंजीपतियों के साथ प्रतियोगिता में विजय प्राप्त करना चाहता है। राष्ट्र और राष्ट्रीय भावना के इस उद्देश्य का कारगर हथियार बनी है। इन तथ्यों को ध्यान में रखकर स्टालिन ने राष्ट्रीयता के प्रश्नों पर विचार करते हुए कहा है, 'बाजार पहली पाठशाला है, जिसमें पूंजीपति वर्ग अपने राष्ट्रवाद की शिक्षा ग्रहण करता है।'

पूंजीपति वर्ग की 'बाजार की भूख' उसे अपने देशी राष्ट्र की सीमाओं से बाहर औद्योगिक दृष्टि से पिछड़े हुए देशों को उपनिवेश बनाने के लिए प्रेरित करती है। लेकिन वहाँ के उदीयमान देशी पूंजीपति वर्ग को यह स्थिति बर्दाश्त नहीं होती। अतः राष्ट्रीय स्वाधीनता के लिए संघर्ष की स्थितियाँ पैदा होती हैं। अमेरिका, कनाडा, आस्ट्रेलिया आदि इसी प्रक्रिया में संप्रभुता सम्पन्न राष्ट्र बने हैं। भारत जैसे एशियाई देशों में राष्ट्रीयता का विकास ब्रिटिश साम्राज्यवादियों की पराधीनता के वातावरण में हुआ है। ऐसे देशों में राष्ट्रीयता की भावना और राष्ट्रीय आंदोलन के आरंभ के संबंध में स्टालिन ने लिखा है, 'हर तरफ से दबाए गए

उत्पीड़ित राष्ट्र का पूंजीपति वर्ग स्वभावतः आंदोलन के मैदान में उतर पड़ता है। वह अपने 'देशी भाइयों' से अपील करता है और 'मातृभूमि' के बारे में शोर मचाने लगता है। वह दावा करता है कि उसका पक्ष ही राष्ट्र का पक्ष है। ....'देशी भाई भी उसकी अपीलों को सुनकर हमेशा कान में तेल डालकर नहीं बैठते। वे उसके झंडे के नीचे गोलबंद होते हैं। ऊपर से चलने वाला दमन उन्हें भी प्रभावित करता है और उनके असंतोष को भड़का देता है। इस तरह राष्ट्रीय आंदोलन शुरू हो जाता है।' सामाजिक विकास की दृष्टि से यह पूंजीपति वर्ग का प्रगतिशील कदम है। यह तो हुई राष्ट्र और राष्ट्रीय भावना के उदय की बात।

जहाँ तक राष्ट्र की परिभाषा का प्रश्न है, इस पर राजनीति शास्त्र के विचारक एक मत नहीं हैं। 'नेशन' के रूप में राष्ट्र शब्द की उत्पत्ति लैटिन के 'नेसियो' (छ ।ज्प्) शब्द से हुई है, जिसका मूल अर्थ है 'जाति'। 16–17 वीं शती में 'नेशन' शब्द किसी देश या राज्य की उस आबादी का सूचक था, जिसमें जातीय एकता या समानता पाई जाती थी। लेकिन 19वीं शती में राष्ट्र और राष्ट्रीयता (जातीयता के रूप में) के अर्थ में अंतर भी किया जाने लगा है। इसके साथ ही राष्ट्रीयता की भावना किसी राष्ट्र की विशेषता के रूप में भी स्वीकृत है। वस्तुतः आज राष्ट्र राजनीतिक एकता और संप्रभुता का सूचक शब्द है, जिसमें अनेक राष्ट्रीयताएँ या जातीयताएँ हो सकती हैं। इस अर्थ में भारत, रूस ही नहीं, इंगलैंड, अमेरिका, स्विट्जरलैंड, कनाडा आदि सशक्त आधुनिक राष्ट्र बहुराष्ट्रीय (मल्टीनेशनल) राष्ट्र हैं, जो अनेक जातियों (राष्ट्रीयताओं) से निर्मित हैं। इंग्लैंड, स्विट्जरलैंड, अमेरिका आदि बहुत सारे आधुनिक राष्ट्रों की बहुराष्ट्रीयता उनकी राष्ट्रीय एकता में बाधक नहीं बन पायी है, जबकि भारत की बहुराष्ट्रीयता उसकी एकता और संप्रभुता में बाधा उत्पन्न करने लगी है। रूस की बहुराष्ट्रीय प्रकृति उसके राष्ट्रीय बिखराव का कारण बन कर उसे अनेक स्वाधीन राष्ट्रों में बांट दिया है। इन सभी तथ्यों को ध्यान में रखते हुए राष्ट्रीय भावना को इन शब्दों में परिभाषित किया जा सकता है 'प्रत्येक ऐसे मनुष्यों का समूह जिसकी अपनी एक पृथक संस्कृति सभ्यता, भाषा और इतिहास है, एक स्वतंत्र राष्ट्र बनने की क्षमता रखता है।' इसे और अधिक उदार और व्यापक बनाने के लिए कहा जा सकता है कि अपने अतीत पर उचित गर्व, वर्तमान पर स्वस्थ विश्वास और उज्ज्वल भविष्य के प्रति दृढ़ आस्था वे महत्वपूर्ण तत्व हैं, जो राष्ट्रीय भावना को जीवंत और शक्तिशाली बनाते हैं।'

राष्ट्र के निर्माणकारी बाह्य तत्वों की ओर संकेत करते हुए प्रायः निम्नलिखित बिन्दुओं को रेखांकित करने का प्रयास भी किया गया है–

1) जाति या वंश की एकता, 2) धार्मिक एकता, 3) भाषा की एकता, 4) भौगोलिक एकता, 5) राजनीतिक संप्रभुता, 6) समान शासन, 7) समान ऐतिहासिक परम्पराएँ और स्मतियाँ, 8) समान स्वार्थ और आर्थिक हित।

इनमें से कोई भी तत्व आधुनिक समुन्नत राष्ट्रों के लिए अनिवार्य नहीं रह गया है। जाति और धर्म संबंधी एकता अब राष्ट्र के लिए कोई अनिवार्य तत्व नहीं रह गयी है। फिर भी धार्मिक मतभेद राष्ट्र की एकता में बाधक अवश्य बन सकते हैं। ऐसे राष्ट्रों में राजनीति और प्रशासन के लिए धर्मनिरपेक्षता की नीति अनिवार्य बन जाती है। धार्मिक मतभेद के कारण हिन्दुस्तान और पाकिस्तान अलग राष्ट्र बने। इंगलैंड, जर्मनी, स्विटजरलैंड, रूस, अमेरिका, भारत आदि में विभिन्न जातियों और धर्मों के लोग एक साथ रहते हैं। चीन बौद्ध, इस्लाम और इसाई मतावलंबियों के बावजूद एक राष्ट्र है। भौगोलिक एकता कई कारणों से राष्ट्र के स्थायित्व के लिए एक आवश्यक तत्व माना जा सकता है। इसके अभाव में सांस्कृतिक भिन्नता, भाषा आदि का अंतर तो आता ही है, साथ ही प्रशासनिक दृष्टि से भी असुविधा होती है। यही कारण है कि पूर्वी बंगाल बहुत दिनों तक पाकिस्तान का अंग नहीं रह सका।

राजनीतिक संप्रभुता राष्ट्र को एक अखण्ड इकाई बनाने के लिए आवश्यक तत्व हैं। इसी के कारण विभिन्न राष्ट्रीयताओं या जातीयताओं के लोग सद्भावपूर्वक, भाईचारे की भावना के साथ एक राष्ट्र में रहते हैं। समान शासन राजनीतिक एकता का वह तत्व है जो राष्ट्र की अखण्डता को सुरक्षित रखता है। 'एक राष्ट्र : एक राज्य' की परिकल्पना को साकार करने में एक सरकार का होना अनिवार्य है। कनाडा में फ्रांसीसी और अंग्रेज सदियों से एक ही राज्य और सरकार के अधीन रहने के कारण अपने को कनाडा निवासी समझते हैं। इसी तरह भारत में हिन्दू, मुसलमान और इसाई जब तक अपने को और एक दूसरे को पूरी तरह भारतीय नहीं मान लेते तब तक राष्ट्र की एकता के लिए खतरा बना रहेगा। धर्मनिरपेक्षता की नीति और उसका दृढ़तापूर्वक पालन समान शासन द्वारा इस उद्देश्य को आसानी से प्राप्त किया जा सकता है। राष्ट्रीयता का सबसे स्पष्ट तत्व भाषा है, जिसके माध्यम से राजनीतिक एकता में भी सहायता मिलती है। बहुत से बहुराष्ट्रीयता वाले देश बहुभाषी भी हैं। ऐसे देशों में सभी भाषाओं में समानता और एकता का भाव आवश्यक है। इसी प्रकार समान ऐतिहासिक–सांस्कृतिक विरासत भी राष्ट्रीयता की भावना को दृढ़ करती है। अधिकांश राष्ट्र अपना पृथक इतिहास रखते हैं। इतिहास सदियों में बनता है, जिसके माध्यम से हमारी संस्कृति और साहित्य सुरक्षित रहता है। इनसे गुलाम देश में विदेशी शासन से मुक्ति के लिए लड़े गए स्वतंत्रता संग्राम में राष्ट्रीय भावना का निर्माण होता है। इसी प्रकार समान हित और समान आर्थिक लाभ भी एक क्षेत्र विशेष के लोगों को राष्ट्रीय एकता के सूत्र में बांधने के लिए आवश्यक है। निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है उपर्युक्त सभी तत्व राष्ट्रीय भावना के प्रसार और उसके एकीकरण में सहायक होते हैं। देशकाल की परिस्थितियों और आवश्यकताओं के अनुरूप कभी और कहीं कोई तत्व अधिक महत्वपूर्ण बन जाता है, तथा कुछ तत्वों की अनुपस्थिति में भी राष्ट्रीय भावना दृढ़ हो सकती है।

5.7.1 एक राष्ट्र के रूप में भारत का विकास

यहाँ आपके सामने एक ऐसे प्रश्न पर विचार किया जा रहा है, जिसके संबंध में आपकी कुछ अपनी भी मान्यताएँ होंगी। आप यह सोच सकते हैं अशोक, चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य, अकबर के समय में भी भारत एक राष्ट्र रहा है। लेकिन राष्ट्र की आधुनिक परिभाषा पर विचार करते हुए हमने अच्छी तरह देख लिया है कि इस संबंध में हमारी परम्परागत धारणाएँ भ्रामक हैं। राष्ट्र और राष्ट्रीय भावना की अवधारणा आधुनिक औद्योगीकरण और पूंजीवाद के विकास की देन है। अशोक, चन्द्रगुप्त, अकबर का भारत के बहुत बड़े भू–भाग पर अधिकार अवश्य था लेकिन देश के शासन की बागडोर विभिन्न क्षेत्रीय सामंतों–सरदारों के हाथ में थी। यह सामंती व्यवस्था देश के राष्ट्रीय स्वरूप में बाधक थी। इस व्यवस्था के टूटने पर ही राष्ट्रीय चेतना का विकास संभव था। यह कार्य सम्पूर्ण देश के ब्रिटिश शासन के अधीन होने के बाद आरंभ हुआ। इसका मूल केन्द्र बना साम्राज्यवादी विरोधी या औपनिवेशिक गुलामी से मुक्ति का संघर्ष।

उपर्युक्त तथ्यों को ध्यान में रखते हुए कहा जा सकता है कि राजा राममोहन राय ने राष्ट्रीयता के बीज बोये थे। विभिन्न सामाजिक–सांस्कृतिक आंदोलनों ने उससे अंकुर उगाने में मदद की। सही अर्थों में भारत का एक राष्ट्र के रूप में देखने की भावना का उदय राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन के दौरान हुआ। इसका प्रस्थान बिन्दु 1857 का प्रथम स्वतंत्रता संग्राम बना। 1857 से पूर्व भी कुछ ऐसे संगठन अवश्य बने थे, जिन्होंने अखिल भारतीय स्तर पर, राजनीतिक रूप से कुछ समस्याओं को उठाया था। ब्रिटिश इंडियन एसोसियेशन (1851), 'बाम्बे एसोसिएशन' (1882), 'पूना डक्कन एसोसिएशन' 1852) आदि के नाम इस दृष्टि से उल्लेखनीय हैं। 'ब्रिटिश इंडियन एसोसिएशन' ने बहुत सारे भारत विरोधी कानूनों की

आलोचना की, भारतीय प्रशासन के जनतंत्रीकरण और उसमें भारतवासियों के प्रतिनिधित्व की मांग उठायी। सिविल सर्विस आंदोलन, अनेक जनतांत्रिक मांगो और वैधानिक अधिकारों की लड़ाई को वह बराबर राजनीतिक रंग देता रहा। लेकिन 1857 के सशस्त्र विद्रोह के बाद ब्रिटिश सत्ताधारियों ने इन तमाम संगठनों पर कठोर अंकुश लगा दिए। सशस्त्र आंदोलन में भाग लेने वाली हिन्दू–मुसलमान जनता का कठोर दमन किया गया। इसके फलस्वरूप 1870 के बाद अनेक राष्ट्रीय संगठनों का निर्माण हुआ। इस दृष्टि से 'पूना सार्वजनिक सभा' (1870) 'इंडियन एसोसिएशन' (1876), 'मद्रास महाजन सभा' (1884), 'डक्कन एजुकेशन सोसायटी' (1884) आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

उपर्युक्त सभी संगठनों का चरित्र राष्ट्रीय और धर्मनिरपेक्ष था। इनके द्वारा एक और समाज के विभिन्न वर्गों का असंतोष व्यक्त हो रहा था तो दूसरी ओर भारत की राष्ट्रीय चेतना का तीव्र प्रवाह भी प्रकट हो रहा था। इन संगठनों ने राष्ट्रीय आंदोलन को अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त लोगों तक सीमित न रखकर उसे भारतीय जनता के विभिन्न वर्गों तक ले जाने का प्रयास किया। अतः इनके माध्यम से समूची भारतीय जनता का तीव्र असंतोष व्यक्त हो रहा था। इस असंतोष को नियंत्रित करने के लिए ही 1885 में 'भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस' की स्थापना हुई थी। लेकिन दो–तीन वर्ष तक सरकारी नियंत्रण में रहने के बाद लगभग 50 वर्षों तक राष्ट्रीय आंदोलन की बागडोर इसी संगठन के हाथ में रही है। इसके नेतृत्व और राष्ट्रीय आंदोलन के विकास के संबंध में आपको पिछली इकाई में विस्तार से बताया जा चुका है। इस संस्था ने भारत को एक राष्ट्र का रूप प्रदान करने और राष्ट्रीय चेतना के प्रचार–प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है।

5.7.2 उपनिवेशवाद के विरुद्ध संघर्ष

भारत को एक राष्ट्र का रूप प्रदान करने और राष्ट्रीय चेतना का विकास करने में औपनिवेशिक दासता के विरुद्ध समस्त भारतीय जनता के संघर्ष का सबसे अधिक महत्व है। भाषा, धर्म, संप्रदाय, जाति–प्रजाति, रहन–सहन, खान–पान, भौगोलिक दूरी, जलवायु आदि के संबंध में भारत में इतनी विविधता है कि इसका एक राष्ट्र के रूप में विकसित हो पाना बहुत कठिन था। सांस्कृतिक एकता को लेकर कहा जाता है कि यहां विविधता में भी एकता है। यह बात तो पूरे यूरोप के संबंध में, विशेष रूप से पश्चिमी यूरोप के संबंध में भी कही जा सकती है। इसके बावजूद वहां दर्जनों राष्ट्र अस्तित्व में आए। अतः भारत में एकता की अपेक्षा विभेदक तत्व अधिक हैं। लेकिन एक लम्बे समय तक ब्रिटिश शासन की गुलामी से मुक्ति के लिए चलने वाले संघर्ष ने भारत की जनता को एकसूत्रता प्रदान करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। इस गुलाम देश में विदेशी शासन से मुक्ति प्राप्त करने के लिए लड़े गए स्वतंत्रता संग्राम द्वारा राष्ट्रीय चेतना को ठोस रूप प्राप्त हआ है। इस संग्राम में क्षेत्रीयता, भाषायी, धार्मिक, जातीय, सभ्यता और संस्कृति संबंधी मतभेदों को भूलकर भारतीय जनता एक हुई है। उसने आपसी प्रेम, पारस्परिक सद्भाव, समानता और भाई–चारे की भावना को इस संग्राम के माध्यम से दृढ़ किया है। क्योंकि इसी में उनका अपना लाभ निहित था।

भारत में नयी भूमि व्यवस्था के अंतर्गत जमींदारी और रैयतवारी व्यवस्था के लागू होते ही यहां की आत्मनिर्भर ग्राम व्यवस्था छिन्न–भिन्न हो गयी। अब उसका उत्पादन बाजार से जुड़ गया, जिस पर ब्रिटिश शासन सत्ता के माध्यम से ब्रिटेन का पूंजीपति वर्ग हावी था। अतः देशी (राष्ट्रीय) नवजात पूंजीपति वर्ग का उसके साथ प्रतियोगिता में आना स्वाभाविक था। हर देश का पूंजीपति वर्ग अपना राष्ट्रीय बजार सुरक्षित रखना चाहता है। ब्रिटिश शासनतंत्र अपनी सत्ता का दुरुपयोग केवल नवोदित भारतीय पूंजीपति वर्ग के विरुद्ध ही नहीं कर रहा था, बल्कि ग्रामीण किसान और मजदूर वर्ग के आर्थिक शोषण को भी तीव्र कर रहा

था। ऐसी स्थिति में भारत के पूंजीपति वर्ग की ओर से पहले कुछ अधिकारों और प्रशासनिक सुधारों की मांग उठाई गयी। आगे चलकर उसने भारत के शोषित–उत्पीड़ित वर्गों को भी गोलबंद किया और उनका नेता बनकर क्रमशः अधिक अधिकारों की मांग उठायी। इसी प्रक्रिया में स्वदेशी के प्रयोग, असहयोग, सत्याग्रह आदि जैसे देशभक्ति पूर्ण नारों को प्रचारित किया गया। ये राष्ट्रीय नारे बने। स्वदेशी आंदोलन वस्तुतः देशी (राष्ट्रीय) बाजार की प्राप्ति का पूंजीवादी आंदोलन था कि यह पूरे देश में फैला, इसलिए यह स्वदेश प्रेम और स्वाधीनता का आधार भी बना। स्थान–स्थान पर विदेशी कपड़ों और अन्य विदेशी वस्तुओं की होली जलाई गयी। विदेशी माल की दुकानों पर धरने दिये गये। स्वदेशी का यह आंदोलन विदेश में बनी वस्तुओं के विरोध तक ही सीमित नहीं रहा। इसके भाषा, संस्कृति आदि अनेक क्षेत्रों में भी अपने को प्रकट किया। स्वदेशी भाषा, भारतीय संस्कृति को विदेशी भाषा और विदेशी संस्कृति के विरुद्ध खड़ा किया गया। विभिन्न भारतीय भाषाओं को राष्ट्रीय आंदोलन के दौर में विकसित होने में सफलता मिली। हिंदी, उर्दू, मराठी, बंगला आदि का राष्ट्रीय साहित्य सामने आया। अगली इकाइयों में इस संबंध में आपको पूरी जानकारी मिल सकेगी।

वैसे तो 1857 के सशस्त्र संग्राम के बाद भारतीय समाज में एक वर्ग के रूप में विभिन्न वर्गों का उदय और उनके अंतर्विरोध उभरने लगे थे। लेकिन प्रथम विश्वयुद्ध के परिणाम स्वरूप भारतीय समाज के सभी प्रमुख वर्गों के मध्य उपस्थित अंतर्विरोध तेज हुए। युद्ध से उत्पन्न आर्थिक मंदी का सबसे गहरा प्रभाव भारतीय मजदूर और किसान के जीवन पर पड़ा। इस आर्थिक संकट ने एक ओर ब्रिटिश पूंजीपतियों और भारत के बड़े राष्ट्रीय पूंजीपतियों के बीच विरोध को तेज किया तो दूसरी और देश के बड़े और छोटे पूंजीपतियों के बीच के अंतर्विरोध को भी बढ़ाया। इसके साथ ही देशी पूंजीपतियों और मजदूरों के बीच तथा किसानों और जमींदारों के बीच के अंतर्विरोध भी तीव्र हुए। 1928 के आसपास वेतन में कटौती, मजदूरों की छंटनी, बढ़ती हुई महंगाई के बावजूद कृषि–उपज के मूल्यों में स्थिरता, बढ़ते हुए भूमिकर आदि ने भारतीय जनता में व्यापक आक्रोश पैदा किया। इन स्थितियों के बीच जो सबसे तीखा और प्रमुख अंतर्विरोध सिद्ध हुआ, वह समस्त भारतीय जनता और ब्रिटिश साम्राज्यवादियों के बीच का अंतर्विरोध था। इन सबकी वजह से देश की जनता में एक क्रांतिकारी उभार नजर आया। इसमें सशस्त्र क्रांतिकारियों की गतिविधियों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। ये सभी तथ्य भारत को एक राष्ट्र का रूप देने में सहायक सिद्ध हुए।

राष्ट्रीय चेतना के विस्तार और उसे दृढ़ बनाने में 1930 के बाद की परिस्थितियों ने विशेष योग दिया। बहिष्कार, असहयोग, सत्याग्रह, सविनय अवज्ञा जैसे नारों की वजह से महात्मा गांधी देश के निर्विवाद नेता बने। उनके आह्वान का देश की जनता पर गहरा असर पड़ता था। लेकिन इन आंदोलनों को वे जिन सीमाओं में रखना चाहते थे, वह कभी संभव नहीं हुआ। मिल मजदूरों की हड़ताल, किसानों के लगानबंदी और जमींदारों के शोषण के विरुद्ध आंदोलन सभी को राजनीतिक रंगत मिलने लगी। जमींदार विरोधी किसान आंदोलनों का चरित्र भी उपनिवेशवादी शोषण के विरुद्ध आंदोलन का रूप धारण करने लगा। राष्ट्रीय आंदोलन के दमन और नेताओं की गिरफ्तारी से देशव्यापी आंदोलन होने लगे। इसमें समाज के सभी तबके सक्रिय हुए थे। 6 मई 1930 में गांधी जी की गिरफ्तारी पर पूरे देश में व्यापक हड़ताल हुई। इन सारी गतिविधियों से समस्त भारतीय जनता की एकता दृढ़ हुई। भाषा, क्षेत्र, धर्म, सम्प्रदाय आदि की दीवारें ढह गयीं। कहने का मतलब कि उपनिवेशवादी गुलामी से मुक्ति के संघर्ष के दौरान भारत की राष्ट्रीय चेतना का विकास हुआ, जिसका एक लम्बा और संघर्षपूर्ण इतिहास है। इस प्रक्रिया में अपनी ढुलमुलपन की नीति को त्याग कर मध्य वर्ग के एक बड़े हिस्से ने भी अपना अमूल्य योगदान किया है।

5.8 नवजागरण और राष्ट्रीय चेतना का अंतःसंबंध

भारतीय संदर्भो में नवजागरण की चेतना के विकास में मध्यकालीन सामंतीय रूढ़ियों के विरोध के साथ ही आगे चलकर उपनिवेशवादी दासता के विरोध की भावना का भी पर्याप्त योगदान रहा है। यहाँ ब्रिटिश शासन सत्ता एक तरफ भारत की स्वाधीन चेतना को अवरुद्ध कर रही थी तो दूसरी ओर सामंतविरोधी चेतना के विकास में भी बाधक थी। क्योंकि वह सामंतीय तत्वों के साथ गठजोड़ द्वारा ही अपने शासन को स्थायी और दृढ़ बनाने के प्रयास में थी। अतः जनता की स्वतंत्रता, समानता और भातृत्व जैसी जनतांत्रिक चेतना का विकास उसके हित में नहीं था। यूरोप में नवजागरण ने जिस प्रकार राष्ट्रीयता की भावना के मार्ग को प्रशस्त किया वैसा भारत में नहीं हो पाया। लेकिन आगे चलकर वहाँ भी राष्ट्रीय चेतना के उदय और विकास के क्रम में नवजागरण के मूल्य अधिक ठोस हुए। यूरोप का नवजागरण मूलतः सामंत–विरोधी जागरण था, जिसकी तीन प्रमुख विशेषताएँ थीं–धर्मनिरपेक्षता, मानवतावादी विश्वदृष्टि तथा प्राचीन संस्कृति पर निर्भरता। ये विशेषताएँ न्यूनाधिक मात्रा में 'एक राज्य–एक राष्ट्र' के रूप में राष्ट्रीयता की चेतना के उदय और विकास में भी सहायक बनीं। यह बात इटली के नवजागरण और राष्ट्रीय विकास की दृष्टि से एकदम सही है। क्योंकि वहाँ प्राचीनता और राष्ट्रीयता की दोनों परम्पराएँ एक साथ आईं। यूरोप के अन्य देशों में राष्ट्रीय विकास ने बाद में चलकर नवजागरण के विस्तार का मार्ग प्रशस्त किया। लेकिन भारतीय परिस्थितियों में राष्ट्रीय चेतना के उदय के पूर्व ही ब्रिटिश शासन सत्ता की इच्छा के विरुद्ध विभिन्न सुधार आंदोलनों के माध्यम से नवजागरण का सूत्रपात हुआ। इसका भी आरंभिक रूप धर्मनिरपेक्ष एवं मानवतावादी ही रहा। लेकिन नवीन संस्कृति के प्रति इसमें प्रगति और पुनरूत्थान का मिश्रण भी प्रायः बना रहा। राष्ट्रीयता की चेतना के उदय और राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलनों की शुरुआत से नवजागरण आंदोलन को यहाँ बल मिला। इस दृष्टि से राष्ट्रीयता की भावना और नवजागरण में प्रायः समानता दिखायी देती है। इन दोनों के बीच अंतर्विरोध भाव ही दोनों के स्वस्थ विकास के लिए अनिवार्य शर्त है। लेकिन भारतीय परिस्थितियों में राष्ट्रीय चेतना और नवजागरण संबंधी मान्यताओं के बीच पर्याप्त अंतर्विरोध भी दिखायी देता है। यह अंतर्विरोध राष्ट्रीय आंदोलन में सक्रिय प्रमुख शक्तियों के अंतर्विरोधों के कारण अधिक गहरा भी हुआ है। सामाजिक–धार्मिक सुधार आंदोलनों में जो अंतर हमें राजा राममोहन राय और स्वामी दयानंद सरस्वती के विचारों में मिलता है, उसका स्पष्ट प्रतिबिंबन 1885 ई. में स्थापित भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के उदारवादी और उग्र राष्ट्रवादी नेताओं के विचारों में भी स्पष्ट रूप से हुआ है।

कांग्रेस के पुराने नेताओं विशेष रूप से सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी, फिरोजशाह मेहता, महादेव गोविन्द रानाडे, गोपाल कृष्ण गोखले आदि कांग्रेस को एक उदारवादी मार्ग पर चलाना चाहते थे। जबकि बाल गंगाधर तिलक, विपिन चन्द्र पाल, अरविंद घोष, लाला लाजपत राय आदि उसे एक संघर्षशील उग्र मार्ग पर ले जाना चाहते थे। दूसरी इकाई में नरमदल और गरमदल या उदारवादी और राष्ट्रवादी के रूप में इन दोनों धड़ों का परिचय आपको दिया जा चुका है। यहाँ राष्ट्रीय चेतना और नवजागरण संस्कृति के मध्य उपस्थित तीखे अंतर्विरोध पर प्रकाश डालना ही हमारा लक्ष्य है। इस संबंध में श्री अयोध्या सिंह का यह कथन अत्यंत महत्वपूर्ण है। 'नेशनलिस्ट (राष्ट्रवादी) माडरेटों (उदारवादियों) से राजनीतिक विचारों में जितने आगे थे, सामाजिक विचारों में उतने ही पीछे थे। नेशनलिस्टों के राजनीतिक विचारों और माडरेटों के सामाजिक विचारों को लेकर अगर कोई नेतृत्व पैदा होता तो देश राष्ट्रीय स्वाधीनता और समाजवाद की तरफ बड़े तेज कदमों से चलता और प्रतिक्रियावादी तथा विभाजनवादी शक्तियों को सिर उठाने का मौका न मिलता।' (भारत का मुक्ति संग्राम, पृ. 158–59)।

1890 में जब लड़कियों की शादी की उम्र 10 वर्ष से बढ़ाकर 12 वर्ष करने का कानुनी प्रस्ताव उपस्थित हुआ तो तिलक ने इसका विरोध किया, जबकि रानाडे, गोखले आदि इसका समर्थन कर रहे थे। तिलक ने शिवाजी उत्सव और गणेश पूजा जैसे साम्प्रदायिक रंगत वाले उत्सवों को राष्ट्रीय उत्सव के रूप में मनाना शुरू किया यही नहीं, उन्होंने गोरक्षा समिति बनाकर उसके लिए आंदोलन किया और कांग्रेस के मंच से ऐसी समस्या को उठाने का असफल प्रयास किया। बंगाल में भी काली पूजा को इसी रूप में लिया गया। यह सब स्वस्थ नवजागरण की चेतना के विपरीत ही नहीं था, बल्कि धर्मनिरपेक्ष राष्ट्रीय चेतना के विकास में भी बाधक बना। ऐसी चीजों का फायदा उठाकर अंग्रेज शासकों के लिए हिन्दू–मुसलमानों के बीच शत्रुता पैदा करने में आसानी हुई और कांग्रेस को सहज ही हिन्दू संगठन साबित कर दिया गया। इसका परिणाम था 1906 में मुस्लिम लीग की स्थापना और मिस्टर जिन्ना जैसे कट्टर कांग्रेसी और धर्मनिरपेक्ष मान्यताओं वाले नेता का 1921 में मुस्लिम लीग का अध्यक्ष बनना और अंततः 1947 में भारत–पाक विभाजन। इसके बावजूद इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता कि राष्ट्रीयता चेतना के प्रसार में उग्र राष्ट्रवादियों की भी महत्वपूर्ण भूमिका रही है। इनमें विशेष रूप से तिलक ने राष्ट्रीय आंदोलन को साधारण जनता के बीच ले जाने का सफल प्रयास किया है। फिर भी इसे स्वीकार करना पड़ेगा कि इस बिन्दु पर आकर राष्ट्रीयता और नवजागरण के मध्य एक गहरा विरोध भी पैदा हुआ तथा दोनों का धर्मनिरपेक्ष स्वरूप एक सीमा तक खंडित हुआ।

नवजागरण मूल्य–मानों के दृढ़ीकरण में राष्ट्रीयता की भावना और राष्ट्रीय आंदोलन की भूमिका

राष्ट्रीयता की भावना और नवजागरण संस्कृति के जिन अंतर्विरोधों की ओर संकेत किया गया है, वे परिस्थितिजन्य होने के साथ ही तत्कालीन नेतृत्व की प्राचीन संस्कृति के प्रति भिन्न–भिन्न दृष्टि को रेखांकित करते हैं। इस तरह की भिन्नता हमें यूरोपीय नवजागरण और राष्ट्रीय चेतना के पारस्परिक संबंधों में भी दिखायी दे सकती है। यह भिन्नता या अंतर्विरोध किसी स्थायी विशेषता के संकेतक नहीं हैं। राष्ट्रीय चेतना और नवजागरण प्रायः परस्पर अवलंबित हैं और दोनों ही एक दूसरे के विकास में सहयोगी बन कर आते हैं। कुछ अंतर्विरोधों के बावजूद भारतीय स्थितियों में भी हम इस तथ्य को आसानी से देख सकते हैं। सामाजिक–सांस्कृतिक आंदोलनों के माध्यम से भारतीय नवजागरण में भाग लेने वाली प्रगति एवं पुनरूत्थान की दोनों धाराएँ समानांतर प्रवाहित हुई हैं। अपनी पुनरूत्थानवादी दृष्टि के बावजूद तिलक अपने समय में राष्ट्रीय आंदोलन के सर्वाधिक लोकप्रिय नेता सिद्ध हुए। उन्होंने राष्ट्रीय आंदोलन को अपेक्षाकृत अधिक व्यापक जनाधार दिया। कम–से–कम उसे निम्न मध्य वर्ग तक ले गए। आगे चलकर महात्मा गांधी ने कांग्रेस की बागडोर संभाली। सामाजिक–सांस्कृतिक दृष्टि से उनकी अधिकांश मान्यताएँ पुनरूत्थानवादी दृष्टि से अनुप्राणित थीं। फिर भी राष्ट्रीय आंदोलन को किसान–मजदूर जनता तक ले जाकर उन्होंने राष्ट्रीय चेतना के साथ ही नवजागरण संस्कृति के मार्ग को प्रशस्त किया।

महात्मा गांधी के आह्वान पर, समूचे देश की जनता राष्ट्रीय आंदोलन में सक्रिय ही हुई। गांधी जी की वर्ण–व्यवस्था और जाति प्रथा संबंधी मान्यताओं की सीमाओं को तोड़कर स्वतंत्रता, समानता और भाईचारे की भावना से परिपूर्ण होकर देश की किसान–मजदूर, साधारण जनता ने अपनी राष्ट्रीय एकता का परिचय दिया। देश की आजादी के लिए लड़े जाने वाले राष्ट्रीय संघर्ष ने बीसवीं शती के तीसरे और चौथे दशक में नवजागरण की प्रक्रिया को केवल तेज ही नहीं किया, वरन् उसे ठोस और व्यापक भी बनाया। महात्मा गांधी के नेतृत्व से पूर्व राष्ट्रीय चेतना और नवजागरण का प्रभाव क्षेत्र उच्च वर्ग या अधिक–से–अधिक शिक्षित मध्यवर्ग तक ही सीमित था। लेकिन गांधी जी के नेतृत्व में सेवा समितियों के गठन

और असहयोग तथा सत्याग्रह के माध्यम से स्वाधीनता संघर्ष की भावना शहरों के साथ गांव–गांव तक सभी तबकों के बीच पहुँची। यह सही है कि सम्पूर्ण भारतीय राष्ट्रीय जागरण को एकसूत्रता प्रदान करने में उपनिवेशवाद विरोधी संघर्ष सबसे महत्वपूर्ण है। लेकिन यह संघर्ष राजनीतिक स्वाधीनता या राष्ट्रीय जागरण तक ही सीमित नहीं रहा, नवजागरण के रूप में व्यापक सामाजिक जागरण भी इसके साथ जुड़ा। देश की स्वतंत्रता के साथ जन–जन की स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व की भावना का मेल किसी एक व्यक्ति का कार्य न होकर जनता के प्रयास का प्रतिफल है। यही राष्ट्रीयता तथा नवजागरण की चेतना का भी आधार है। इससे स्पष्ट है कि राष्ट्रीय भावना और नवजागरण एक दूसरे के पूरक हैं। किसी एक की अनुपस्थिति में दूसरे का अस्तित्व में आना, बने रहना और स्वस्थ तथा ठोस रूप धारण करना संभव नहीं है।

बोध प्रश्न –4

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दें–

1. राष्ट्र की अवधारणा का उदय कैसे हुआ?

....

....

....

....

2. धर्म आधारित राष्ट्रीयता भारत के लिए अहितकर क्यों है?

....

....

....

....

3. एक राष्ट्र के रूप में भारत का उदय कब हुआ?

....

....

....

4. उदारवादियों और राष्ट्रवादियों में मुख्य अंतर क्या है?

....

....

....

....

अभ्यास

6) भारत में राष्ट्रीय चेतना के विकास में उपनिवेशवाद विरोधी संघर्ष की भूमिका स्पष्ट कीजिए।

....

....

....

....

7) भारतीय संदर्भ में राष्ट्रीय भावना और नवजागरण की चेतना के अंतर्विरोधों के प्रमुख बिंदुओं का उल्लेख कीजिए।

....

....

....

....

5.9 सारांश

- नवजागरण और राष्ट्रीय चेतना का विकास नामक इस इकाई में आपने भारतीय नवजागरण और राष्ट्रीय चेतना के विकास के विभिन्न पक्षों का अध्ययन किया है। भारत में पूंजीवाद के स्वाभाविक विकास से पूर्व ही यहाँ ब्रिटिश सत्ता की स्थापना हो गई जिसने भारत में पूंजीवाद के विकास को प्रभावित किया।

- नवजागरण की चर्चा सबसे पहले यूरोप में हुई जब पंद्रहवीं शताब्दी में इटली तथा दूसरे यूरोपीय देशों में उदीयमान पूंजीवादी शक्तियों और सामंतवाद के बीच सीधी टक्कर हुई और इससे नये जीवन मूल्य अस्तित्व में आए।

- नवजागरण की अवधारणा को पुनर्जागरण, पुनरूत्थान और समाज सुधार के संदर्भ में ही समझा जा सकता है। नवजागरण न तो अतीत के किसी जागरण का पुनर्जागरण है और न ही अतीत की पुनर्प्रतिष्ठा। नवजागरण तो अतीत के सड़े–गले मूल्यों को त्याग कर नये युग के अनुरूप नये मूल्यों की स्थापना है।

- यूरोप के नवजागरण से भारतीय नवजागरण का मुख्य अंतर यह है कि भारत में नवजागरण की भावना का विकास राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन के दौर में हुआ। भारत में नवजागरण का उदय मध्ययुगीनता की समाप्ति, औपनिवेशिकता के दौर में पूंजीवाद के विकास और अंग्रेजी शिक्षा के प्रभाव के बीच हुआ। विभिन्न धार्मिक और सामाजिक सुधार आंदोलनों ने इसे गति और शक्ति प्रदान की यद्यपि पुनरूत्थानवादी भावनाओं ने इस पर नकारात्मक प्रभाव भी डाला।

- राष्ट्र के रूप में भारत का विकास भी राष्ट्रीय स्वाधीनता के संघर्ष के दौर में हुआ। भारत एक बहुराष्ट्रीयता का देश है जहाँ विभिन्न धर्म, जाति, भाषा और संस्कृति के लोग रहते हैं इसलिए भारत में राष्ट्रीयता का विकास के आधार बने धर्मनिरपेक्ष, लोकतंत्र और समाजवाद के मूल्य।

- नवजागरण और राष्ट्रीय चेतना का गहरा संबंध है यद्यपि उग्र राष्ट्रवादी विचार सांप्रदायिक और पुनरूत्थान रूप में उभरे जिसकी प्रतिक्रिया ने द्विराष्ट्र के सिद्धांत को जन्म दिया। लेकिन अंततः नवजागरण के श्रेष्ठ मूल्य और राष्ट्रीय भावना का धर्मनिरपेक्ष स्वरूप ही हमारे देश को बनाये और बचाया रख सकता है। इकाई को पढ़कर आप इन सभी पक्षों को अपने शब्दों में व्यक्त कर सकते हैं।

5.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

रजनी पामदत्त : आज का भारत, मैकमिलन, नयी दिल्ली।

डॉ. अयोध्या सिंहः भारत का मुक्ति संग्राम, रेखा प्रकाशन, कलकत्ता।

हरप्रकाश गौड़ः सरस्वती और राष्ट्रीय नवजागरण, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली।

ए.आर. देसाईः भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि, मैकमिलन नयी दिल्ली।

के. दामोदरन : भारतीय चिंतन परंपरा, पीपल्स पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली।

डॉ. रामविलास शर्मा : महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिंदी नवजागरण, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली।

डॉ. रामविलास शर्मा : भारतेन्दु हरिशचंद्र और हिंदी नवजागरण की समस्याएँ, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली।

5.11 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

बोध प्रश्न–1

1) ख)

2) ग)

3) स्वामी दयानंद सरस्वती ने

बोध प्रश्न–2

1) घ)

2) घ)

3) उन्होंने सामंती शासकों के साथ समझौता कर लिया।

बोध प्रश्न–3

1 क) स्वामी दयानंद,

ख) महादेव गोविंद रानाडे

ग) राजा रामामोहन राय

2) गरम पंथी राष्ट्रवादी नेता समाज सुधार आंदोलनों के विरोधी थे। उनका दृष्टिकोण धर्म और समाज के मामले में पुरातनपंथी था।

बोध प्रश्न –4

1) राष्ट्र की अवधारणा का उदय पूंजीवाद के उदय के साथ हुआ।

2) भारत में कई धर्मों के मानने वाले लोग सदियों से साथ–साथ रहते आए हैं। उनके बीच सच्ची एकता किसी एक धर्म के वर्चस्व की स्थापना से नहीं हो सकती। वह तो धर्मनिरपेक्षता के द्वारा ही संभव है।

3) एक राष्ट्र के रूप में भारत का उदय राष्ट्रीय स्वाधीनता संघर्ष के दौरान हुआ।

4) उदारवादी सामाजिक विचारों में प्रगतिशील थे जबकि राष्ट्रवादी राजनीतिक विचारों में अधिक उग्र थे।

अभ्यास

1. अतीत के किसी युग में हुए जागरण को आदर्श मानकर अपने युग के जागरण को उसी की अगली कड़ी मानना पुनर्जागरण है। जैसे भक्ति आंदोलन के जागरण को ही अगली कड़ी और 19वीं सदी के जागरण को मानने पर उसे पुनर्जागरण कहा जाएगा जबकि नवजागरण का इस तरह से अतीत के किसी आंदोलन से संबंध नहीं होता।

2. नवजागरण में एक नये तर्कसंगत, विवेकसम्मत और युग की आवश्यकताओं के अनुरूप व्यापक सुधार की भावना पर अधिक जोर होता है जबकि पुनरुत्थान में अतीत की पुनःप्रतिष्ठा को अधिक महत्व दिया जाता है। 19वीं सदी के समाज सुधार आंदोलन में कई समाज सुधारकों ने 'वेदों की ओर लौटो' का नारा दिया तो वस्तुतः पुनरूत्थानवादी दृष्टि का ही परिणाम था।

3. नवजागरण के दौरान मध्यकालीन सामंती रूढ़ियों का विरोध स्वाभाविक है। सतीप्रथा, बाल विवाह, जाति–प्रथा, बहुविवाह, अस्पृश्यता आदि कुरीतियों का विरोध इसीलिए किया गया क्योंकि ये मानवीय समानता के विचार से मेल नहीं खाते थे। लेकिन हमारी प्राचीन संस्कृति के वे तत्व जो आज भी उपयोगी हो सकते हैं, उन्हें स्वीकार भी किया गया जैसे विश्व मानवता, धार्मिक सहिष्णुता आदि की भावना।

4. देखिए उपभाग 5.5.3

5. यद्यपि आर्य समाज ने भी बाल–विवाह, वृद्ध–विवाह, बहुविवाह एवं जाति प्रथा का विरोध किया और स्त्री–शिक्षा, विधवा–विवाह, का समर्थन किया। परंतु धार्मिक मामलों में उसका दृष्टिकोण असहिष्णु था। न केवल दूसरे धर्मों के प्रति वरन् हिंदू धर्म में भी स्वामी दयानंद केवल वेदों की शिक्षा को ही श्रेष्ठ और सत्य मानते थे और दूसरे पंथों की निंदा करते थे। इससे राष्ट्रीय एकता में सहायता नहीं मिल सकती थी।

6. भाग 5.7 के अंश 'उपनिवेशवाद के विरुद्ध संघर्ष' को देखिए।

7. देखिए भाग 5.8

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

इकाई 6 भारतीय साहित्य में नवजागरण एवं राष्ट्रीय चेतना की अभिव्यक्ति

इकाई की रूपरेखा

6.0 उद्देश्य

6.1 प्रस्तावना

6.2 आधुनिक भारतीय साहित्य की पृष्ठभूमि

6.3 आधुनिक भारतीय भाषाओं का विकास

6.4 नवजागरण और राष्ट्रीय आंदोलन की सामान्य विशेषताएँ

6.5 आधुनिक भारतीय साहित्य का उदय

6.6 पूर्वांचलीय साहित्य

- 6.6.1 बंगला साहित्य
- 6.6.2 असमिया साहित्य
- 6.6.3 उड़िया साहित्य

6.7 पश्चिमांचलीय साहित्य

- 6.7.1 मराठी साहित्य
- 6.7.2 गुजराती साहित्य

6.8 दक्षिणांचलीय साहित्य

- 6.8.1 तमिल साहित्य
- 6.8.2 तेलुगु साहित्य
- 6.8.3 कन्नड़ साहित्य
- 6.8.4 मलयालम साहित्य

6.9 उत्तरांचलीय साहित्य

- 6.9.1 उर्दू साहित्य
- 6.9.2 सिंधी साहित्य
- 6.9.3 पंजाबी साहित्य
- 6.9.4 कश्मीरी सीहत्य

6.10 हिंदी का आधुनिक साहित्य

6.11 आधुनिक भारतीय साहित्य का ऐतिहासिक योगदान

6.12 सारांश

6.13 कुछ उपयोगी पुस्तकें

6.14 बोध प्रश्नों / अभ्यासों के उत्तर

6.0 उद्देश्य

'भारतीय साहित्य में नवजागरण एवं राष्ट्रीय चेतना की अभिव्यक्ति' नामक इस इकाई में आप आधुनिक भारतीय साहित्य में अभिव्यक्ति नवजागरण एवं राष्ट्रीय चेतना की विशेषताओं का अध्ययन करेंगे। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- आधुनिक भारतीय साहित्य की पृष्ठभूमि का उल्लेख कर सकेंगी/सकेंगे;
- आधुनिक भारतीय भाषाओं के विकास को स्पष्ट कर सकेंगी/सकेंगे;
- नवजागरण और राष्ट्रीय चेतना की सामान्य विशेषताएँ बता सकेंगी/सकेंगे;
- आधुनिक भारतीय भाषाओं के साहित्य में नवजागरण और राष्ट्रीय चेतना की विशेषताओं का उल्लेख कर सकेंगी/सकेंगे; और
- आधुनिक भारतीय साहित्य के ऐतिहासिक योगदान को बता सकेंगी/सकेंगे।

6.1 प्रस्तावना

इस इकाई में आधुनिक भारतीय साहित्य में नवजागरण और राष्ट्रीय चेतना की अभिव्यक्ति पर प्रकाश डाला गया है। आधुनिक भारतीय साहित्य का आरंभ कब हुआ, वह पहले के साहित्य से किन अर्थों में भिन्न था तथा आधुनिक भारतीय भाषाओं के विकास ने इसमें क्या योग दिया। इस पर इस इकाई में विचार किया जाएगा। नवजागरण और राष्ट्रीय चेतना की उन सामान्य विशेषताओं से भी आपको परिचित कराया जाएगा जिनकी अभिव्यक्ति आधुनिक भारतीय साहित्य में हुई है।

इस इकाई में हम आपको सभी प्रमुख भारतीय भाषाओं के साहित्य में नवजागरण और राष्ट्रीय चेतना की अभिव्यक्ति का संक्षिप्त परिचय देंगे, इकाई के अंत में हमने आधुनिक भारतीय साहित्य के ऐतिहासिक योगदान पर भी विचार किया है, जिससे आपको इन साहित्य के महत्व को समझने में सहायता मिलेगी। इकाई में दिये गये बोध प्रश्न और अभ्यास से आपने इकाई में कही गई बातों को कितना समझा, यह जानने में भी मदद मिलेगी।

6.2 आधुनिक भारतीय साहित्य की पृष्ठभूमि

भारत में आधुनिक युग की शुरुआत 19वीं सदी से मानी जाती है। वैसे तो अंग्रेजों का शासन स्थापित होने से पूर्व मुगलों के शासन काल में भारतीय व्यापार और उद्योग ने अभूतपूर्व वृद्धि कर ली थी जिसने कारीगरों, शिल्पकारों के जीवन स्तर को बेहतर भी बनाया और भक्ति आंदोलन के माध्यम से उन्होंने अपनी सामाजिक स्थिति को परिवर्तित करने की भी कोशिश की, परंतु वे हमारे संपूर्ण सामाजिक–राजनीतिक ढांचे में गुणात्मक बदलाव लाने में असफल रहे। भक्ति आंदोलन इस दिशा में कोई कारगर भूमिका निभा पाता उससे पूर्व ही उस पर वर्णवादी उच्च वर्ग का वर्चस्व स्थापित हो गया जिसने भक्ति आंदोलन की क्रांतिकारी सारवस्तु को लगभग समाप्त कर दिया। भक्ति आंदोलन का पतन इस बात का द्योतक भी था कि सामंती शक्तियां इतनी कमजोर नहीं हुई थीं कि वे समाज पर अपने वैचारिक प्रभुत्व को खत्म होने देती। वरन् मुगल शासन के उत्तर काल में जब औरंगजेब की मृत्यु के बाद केंद्रीय सत्ता काफी हद तक कमजोर हो गई थी तो सामंती शासकों के कई छोटे–छोटे केंद्र उभर आए। इन राजाओं और नवाबों ने आपस में लड़ने–झगड़ने और भोग–विलास में ही अपना गौरव समझा। इसका असर इस युग के साहित्य पर भी पड़ा।

17वीं–18वीं सदी में जो साहित्य लिखा गया, या तो वह परंपरागत रूप से भक्ति (धार्मिक) साहित्य था जिसमें भक्ति आंदोलन के दौर की विशेषताएँ भी नहीं थीं, या फिर वीर और श्रृंगार रस को व्यक्त करने वाली रचनाएं थीं जो अपने आश्रयदाता राजाओं की वीरता के

अतिरंजित गुणगान और उनके मनोरंजन के उद्देश्य से लिखी गई थी। अपने आश्रय में रहने वाले कवियों को राजा–नवाब इनाम में धन देते थे इसलिए ऐसा ही साहित्य लिखा गया जो इन विलासी और निकम्मे राजाओं को पसन्द आए। इस दौर में काव्यशास्त्र के नाम पर नायिका भेद और विभिन्न नायिकाओं के सौंदर्य वर्णन, नायक–नायिकाओं के सिर और विरह की भावनाओं के छिछले वर्णन से ही साहित्य भंडार भरा गया। स्पष्ट है कि ऐसा साहित्य अपने समाज और समय का सच्चा दर्पण नहीं हो सकता। 19वीं शताब्दी में इस तरह एक अवरोध की स्थिति पैदा हो गई। कविता में विकास की संभावनाएं नाटी हो गई थीं। साहित्य का संबंध केवल उच्च वर्ग से रह गया था। शिक्षा के अभाव में जनता का साहित्य से संबंध भी कट चुका था। इसी पृष्ठभूमि में आधुनिक साहित्य का जन्म हुआ। निश्चय ही इस साहित्य की उत्पत्ति में उन नयी परिस्थितियों का हाथ है जो अंग्रेजों के शासन काल में उपजी थीं।

1757 के प्लासी युद्ध में विजय के बाद अंग्रेजों ने अपने शासन को सुचारू रूप से स्थापित करने के लिए कई प्रशासनिक कदम उठाये। अंग्रेजी शिक्षा के द्वारा आधुनिक शिक्षा प्रणाली आरंभ की। रेल लाइन बिछाई गई। डाक एवं तार की नई संचार प्रणाली आरंभ हुई और प्रेस की स्थापना भी हुई। इन सबके प्रभाव से भारत में भी समाचारपत्रों एवं पत्रिकाओं का प्रकाशन आरंभ हुआ। अंग्रेजी भाषा के माध्यम से आधुनिक विचारों और यूरोप के आधुनिक साहित्य से परिचय बढ़ा। इसके प्रभाव से भारत के शिक्षित वर्ग में भी नये ढंग के साहित्य की रचना की तरफ रुझान बढ़ा, विशेष रूप से गद्य लेखन की प्रवृत्ति का विकास हुआ। इस नये तरह के साहित्य के लिए मध्ययुगीन भाषाएँ पर्याप्त नहीं थी इसलिए आधुनिक भारतीय भाषाओं का विकास हुआ।

6.3 आधुनिक भारतीय भाषाओं का विकास

इस पाठ्यक्रम के अंतर्गत हम जिन भारतीय भाषाओं के साहित्य का अध्ययन करेंगे, उन्हें हम दो भाषा–परिवारों में रख सकते हैं। दक्षिण भारत की चारों भाषाएँ द्रविड़ भाषा परिवार के अंतर्गत सम्मिलित की जाती हैं। तमिल, तेलुगु, कन्नड़ और मलयालम–इन चारों भाषाओं का अपना लंबा इतिहास है और तमिल भाषा और साहित्य तो लगभग इतना ही पुराना है जितना संस्कृत साहित्य। यद्यपि इन सभी भाषाओं पर संस्कृत का काफी प्रभाव रहा है परंतु इनका अपना स्वतंत्र इतिहास है। हिंदी, बंगला, गुजराती, मराठी, उर्दू, कश्मीरी, असमिया, उड़िया, सिंधी, पंजाबी आदि भाषाओं को आधुनिक आर्य भाषाओं के अंतर्गत शामिल किया जाता है और इनका विकास अपभ्रंश के विभिन्न रूपों से माना जाता रहा है। यद्यपि अब कई भाषाविदों की राय में यह सही नहीं हैं। संस्कृत से प्राकृत, प्राकृत से अपभ्रंश और अपभ्रंश से आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं के विकास की अवधारणा अब स्वीकार नहीं की जाती वरन् यह माना जाता है कि इन सभी भाषाओं का संस्कृत आदि प्राचीन भाषाओं से स्वतंत्र विकास हुआ है और लोक भाषाओं के रूप में पहले से विद्यमान थीं। हां, यह अवश्य है कि इनके वर्तमान स्वरूप को तय करने में संस्कृत का योगदान काफी रहा है।

यद्यपि भक्ति आंदोलन के दौर में ही उपर्युक्त भाषाओं का प्रयोग साहित्य रचना के लिए होने लगा था परंतु इनमें से कई भाषाएँ या तो उस दौर में कम विकसित हुई या फिर उनकी जो बोलियां उस दौर में प्रयुक्त हुई थी वह आधुनिक युग में साहित्य रचना के लिए अनुप्रयुक्त मानी गई। उदाहरण के लिए, भक्ति आंदोलन के दौर में खड़ी बोली का प्रयोग प्रायः साहित्य रचना के लिए नहीं हुआ जबकि इसी से उर्दू और आधुनिक हिंदी का जन्म हुआ और मध्ययुग में प्रयुक्त होने वाली अवधी, ब्रज, मैथिली आदि लगभग हाशिए पर चली

गई कश्मीरी और असमिया जो मध्ययुग में साहित्य रचना के लिए काफी प्रयुक्त हुई और कई महत्वपूर्ण कवि इन भाषाओं में हुए लेकिन आधुनिक युग में इनकी वही स्थिति नहीं रही। उर्दू के प्रभाव के कारण कश्मीरी में साहित्य बहुत कम लिखा गया तो जम्मु क्षेत्र में डोगरी को साहित्यिक महत्व प्राप्त होने लगा। 19वीं सदी में असमिया को भाषा ही नहीं माना गया और उसे बंगला की ही शैली समझ लिया गया जबकि वह एक स्वतंत्र भाषा थी। लेकिन बाद में असमी भाषी जनता के अथक प्रयास से इसे पुनः स्वतंत्र भाषा का दर्जा प्राप्त हुआ। आधुनिक भारतीय भाषाओं के विकास का एक संदर्भ यह भी है कि इन भाषाओं और इनके साहित्य को कभी राज्याश्रय प्राप्त नहीं हुआ। जिस प्रकार प्राचीन भारत में संस्कृत, मध्ययुग में फारसी उसी प्रकार आधुनिक युग में अंग्रेजी शासक वर्ग की भाषा रही तथा अंग्रेजी की नीति भारतीय भाषाओं को आपस में लड़ाने की रही। उर्दू–हिंदी का द्वंद्व इसी का परिणाम था। उर्दू को मुसलमानों की और हिंदी को हिंदुओं की भाषा बताकर उन्हें सांप्रदायिक रंग दिया गया। दुर्भाग्यपूर्ण यह था कि हिंदी–उर्दू भाषी क्षेत्र की शिक्षित जनता भी अंग्रेजों के इस षड्यंत्र का शिकार हो गई। जबकि खड़ी बोली से उर्दू का विकास काफी पहले 11वीं–12वीं सदी में ही हो गया था। 17वीं–18वीं शती में दक्कनी के रूप में उर्दू का साहित्य रचना के लिए भी उपयोग होने लगा और हिंदी में भारतेन्दु आदि के आने से पूर्व एक परिनिष्ठित भाषा के रूप में उर्दू स्थापित हो चुकी थी। अपने उदयकाल से ही उर्दू में हिंदू और मुसलमान दोनों लिखते रहे थे। लेकिन यह भी सच्चाई है कि व्यवहार में उर्दू और हिंदी में शब्द भंडार के अतिरिक्त ज्यादा फर्क नहीं है। आज उर्दू और हिंदी साहित्य की अपनी स्वतंत्र समृद्ध परंपराएँ हैं। इनमें से किसी एक को मिटाकर दूसरे का विकास असंभव है।

आधुनिक भारतीय भाषाओं में लिपि का प्रश्न भी महत्वपूर्ण है। नागरी लिपि हिंदी और मराठी दोनों भाषाओं के लिए प्रयुक्त होती हैं जबकि उर्दू जिस लिपि में लिखी जाती है उनमें पंजाबी, सिंधी भी लिखी जाती थी लेकिन पंजाबी बाद में गुरूमखी लिपि में और सिंधी अब नागरी लिपि में लिखी जाने लगी है जबकि पाकिस्तान में अब भी ये भाषाएँ अरबी–फारसी लिपि में ही लिखी जाती हैं। इसी प्रकार उड़िया, बंगला, असमिया आदि भाषाओं में काफी निकटता होने के बावजूद उनकी लिपियाँ अलग–अलग हैं यद्यपि उनमें भी वैसी ही निकटता पाई जाती है जैसी उनकी भाषाओं में है। खास बात यह है कि सभी आधुनिक भारतीय भाषाओं में महत्वपूर्ण परिवर्तन इसलिए हुआ क्योंकि अब व्यवहार में उसका अनुभव क्षेत्र पहले के किसी युग की तुलना में अधिक व्यापक हो गया था। दूसरे, मुद्रण के व्यापक प्रसार ने गद्य का प्रचलन काफी बढ़ा दिया जिसने भाषाओं के स्वरूप को बदलने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। अब बोलचाल की भाषा और साहित्यिक भाषा की दूरी पहले की तुलना में काफी कम हो गई। यद्यपि इसी कारण अच्छी रचनात्मक भाषा की रचना उतनी ही बड़ी चुनौती भी साबित हुआ।

6.4 नवजागरण और राष्ट्रीय आंदोलन की सामान्य विशेषताएँ

अंग्रेजों के शासन काल में जो नये परिवर्तन हुए उससे भारतीय समाज के सभी पक्षों में आमूलचूल परिवर्तन घटित हुआ। वास्तव में यह नये युग की शुरुआत थी। सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक और सांस्कृतिक सभी क्षेत्रों में एक नयी उथल–पथल दिखाई दे रही थी। भारत एक जबर्दस्त करवट ले रहा था। इसी बदलाव में नये समाज की नये विचारों की और नये जीवन–मूल्यों की नींव रखी जा रही थी। 1857 की क्रांति में सामंती शक्तियों की पराजय ने एक तरह से सामंती व्यवस्था के पुनरोदय की संभावना को पूर्णतः समाप्त कर दिया था। औपनिवेशिक शासन व्यवस्था के अतंर्गत भारत जिस पूंजीवादी विकास की ओर अग्रसर हो रहा था उसने कई नयी समस्याएँ पैदा की तो भारतीयों के मन

में नयी आकांक्षाएँ भी जगाईं। उनकी पूर्ति में सबसे बड़ी बाधा स्वयं ब्रिटिश शासन था। जिसके विरुद्ध लगातार संघर्ष ने राष्ट्रीय चेतना को विकसित किया। ब्रिटिश शासकों के आर्थिक शोषण ने स्वयं भारतीय पूंजीपति वर्ग के लिए भी मुश्किलें पैदा कर दी थीं जबकि किसानों और मजदूरों के लिए तो अकल्पनीय कठिनाइयों का दौर–दौरा शुरू हुआ। इसने भारतीयों को इस बात का एहसास कराया कि केवल स्वशासन से ही भारत आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर और शोषण मुक्त हो सकता है। इस सोच ने भी राष्ट्रीय चेतना को विकसित करने में मदद की।

परंतु एक आधुनिक भारत के निर्माण में केवल ब्रिटिश शासन ही बाधक नहीं था बल्कि सामंती समाज के रीति–रिवाज और जीवन–मूल्य भी बाधक बने हुए थे। जाति प्रथा और छुआछूत ने हिंदू समाज को जर्जर बना रखा था। बाल–विवाह, पर्दा प्रथा, बहु–विवाह, सती प्रथा और कठिन वैधव्य ने नारी जीवन को नरक बना रखा था। धर्म के क्षेत्र में अंधविश्वास और तरह–तरह की रूढ़ियाँ प्रचलित थी, पुरोहितों का जीवन के हर क्षेत्र में दखल था। सांस्कृतिक जीवन भी रूढ़ हो चुका था, कुछ भी नया नहीं रचा जा रहा था। इन सबसे मुक्ति बिना भारतीयों का जीवन नहीं बदल सकता था। मानवीय और समानता पर आधारित समाज की स्थापना के लिए इन सबके विरुद्ध संघर्ष की आवश्यकता थी। नवजागरण की भावना का उदय इसी आवश्यकता से हुआ। आइए, इन सभी पक्षों में व्यक्त नये विचारों की विशेषताओं से परिचय प्राप्त करें।

आर्थिक चेतना

अंग्रेजों के आगमन का सबसे ज्यादा असर देश की आर्थिक दशा पर हुआ। वे यहाँ से कच्चे माल के रूप में, टैक्स, वेतन आदि अनेक माध्यमों से न केवल यहाँ का धन इंग्लैंड ले गये, वरन् अंग्रेजों ने यहाँ के परंपरागत उद्योगों और शिल्प को भी नष्ट कर दिया। गांव में यूरोप के ढंग की जमींदारी प्रथा लागू करने की कोशिश की गई। किसानों को जर्बदस्ती निर्यात के लिए उत्पादन करने को मजबूर किया गया।

देश की आर्थिक दशा का चित्रण तत्तकालीन भारतीय लेखकों ने अपनी रचनाओं में किया है। अकालों का वर्णन, टैक्सों का अधिक भार, खेती की दुर्दशा, उद्यमों का नष्ट होना तथा देश की दौलत का विदेश जाना आदि ऐसी बातें हैं जिन पर उनका ध्यान गया। इनका मानना था कि देश की तत्कालीन दुर्दशा, भुखमरी, गरीबी, बेरोजगारी अर्थात् आर्थिक विपन्नता का कारण अंग्रेजी राज और उसका शोषण था। अंग्रेजों के आगमन से पूर्व भारत की दुर्दशा इतनी भयावह नहीं थी।

इस दौर की आर्थिक स्थिति का एक और महत्वपर्ण पक्ष है–औद्योगिक पूंजीवाद का विकास। उन्नीसवीं सदी के मध्य में भारत में ब्रिटिश पूंजी का निवेश आरंभ हुआ। भारत में बड़े पूंजीवादी उद्यमों के आगमन ने भारत के राष्ट्रीय पूंजीवादी विकास को प्रोत्साहित किया। इससे व्यापारियों और महाजनों के लिए व्यापक क्षेत्र खुल गया। इससे देश में द्रव्य पूंजी के संचय को बढ़ावा मिला। बिचौलिये अथवा दलाल का काम करने वाले भारतीय व्यापारियों ने काफी धन जमा कर लिया। इस अवधि में श्रम बाजार भी रूप लेने लगा था। बर्बाद दस्तकारों और कंगाल किसानों ने मजदूर वर्ग के पहले जत्थे प्रदान किये। पुराने दस्तकारों ने छोटी–छोटी फैक्ट्रियां भी स्थापित की। पूंजीवादी विकास ने मजदूर वर्ग के उभार का मार्ग प्रशस्त किया। साथ ही छोटे पैमाने पर ही सही राष्ट्रीय पूंजीपति वर्ग का भी उदय हुआ। आधुनिक उद्यमों तथा परिवहन, संचार एवं प्रशासन के लिए नये 'मध्यवर्ग' का उदय हुआ। ये ही नये वर्ग राष्ट्रीय चेतना को प्रसारित करने के वाहक बने। इन सभी ने अपने–अपने

वर्गीय हितों के अनुरूप ही सही आर्थिक स्वतंत्रता और ब्रिटिश साम्राज्यवाद के शोषण से मुक्ति की आवाज़ उठाई।

राजनीतिक चेतना

भारतीयों ने अंग्रेजों के शासन को कभी भी सहजता से स्वीकार नहीं किया और लगातार उनके विरुद्ध संघर्षरत रहे। अंग्रेजों के शासन के खिलाफ चलने वाले इन अनवरत संघर्षों का ही परिणाम था कि लोगों में राष्ट्रीय भावना का उदय हुआ। प्रख्यात समाजशास्त्री ए. आर. देसाई की स्पष्ट मान्यता है कि भारतीय राष्ट्रवाद आधुनिक शिक्षा का परिणाम नहीं। उनके अनुसार भारतीय राष्ट्रवाद का जन्म वस्तुतः नयी सामाजिक भौतिक स्थितियों के कारण हुआ। उनके अनुसार अगर भारतीय बुर्जुआजी को संस्कृत में लिखे गये वेदों की ही शिक्षा मिली रहती, दूसरी सारी विचारधाराओं के अलग तो उन्हें वहीं अपने संघर्ष के सिद्धांत और नारे मिल जाते। उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में राष्ट्रीयता की अभिव्यक्ति का प्रमुख माध्यम स्वदेशीपन की भावना थी। देशी वस्तुओं का अधिकाधिक प्रयोग और विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार इस स्वदेशीयता की प्रमुख पहचान थी। स्वदेशी वस्तुओं के साथ स्वभाव का भी आग्रह बढ़ा।

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना (1885) इस दौर की महत्वपूर्ण घटना है। आजादी के संघर्ष के पूरे दौर में कांग्रेस स्वतंत्रता सेनानियों के व्यापक मंच का काम करती रही। आरंभ में भारतीयों के लिए अधिक आर्थिक और राजनीतिक अधिकारों की माँग करते हुए कांग्रेस डोमिनियम स्टेट से होते हुए पूर्ण स्वतंत्रता की माँग तक की अपनी यात्रा में अपना प्रभाव व्यापकतर करती गई। इनके साथ समाजवादियों, साम्यवादियों और क्रांतिकारियों ने राष्ट्रीय भावना के प्रचार–प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। राष्ट्रीय भावना की अभिव्यक्ति इसी कारण इस दौर में स्वतंत्रता की कामना के रूप में हुई जिसके साथ बाद में लोकतंत्र, धर्मनिरपेक्षता और समाजवाद के विचार भी जुड़ गए।

सामाजिक और धार्मिक जागरण

18वीं–19वीं सदी में समाज में अनेक प्रकार की धार्मिक, रूढियाँ, अंधविश्वास तथा सामाजिक कुरीतियां प्रचलितत थीं। जाति प्रथा, छुआछूत तथा स्त्रियों की दशा अत्यंत दयनीय थी। बहुत छोटी उम्र में लड़कियों का विवाह कर दिया जाता था। विधवा को पुनर्विवाह की अनुमति नहीं थी जबकि एक पुरुष कई–कई विवाह कर सकता था। स्त्रियों को पति के मरने पर सती प्रथा के नाम पर जिंदा जलने पर मजबूर किया जाता था। स्त्री शिक्षा का पूर्णतः निषेध था। विधवा स्त्री को हर प्रकार के सामाजिक और पारिवारिक उत्पीड़न झेलने पड़ते थे। स्त्रियों की दशा से कम दयनीय दशा निम्नवर्ग वालों की न थी। हर तरह के मानवीय अधिकारों से वे वंचित थे, उनकी अलग बस्तियां थीं। उनका छुआ पानी पीना भी बुरा माना जाता था। धर्म के नाम पर घोर अंधविश्वास और अमानुषिक रीतिरिवाज प्रचलित थे।

उन्नीसवीं सदी में मध्यवर्ग के नये शिक्षित लोगों का ध्यान इस ओर गया और उन्होंने इन सबके विरुद्ध आवाज उठाई। राजा राममोहन राय, ईश्वरचंद्र विद्यासागर, केशवचंद्र सेन, महादेव गोविंद रानाडे, ज्योतिबा फूले, स्वामी दयानंद सरस्वती, वीरेशलिंगम, नारायण गुरु आदि ने समाज सुधार के लिए अथक प्रयास किये और धार्मिक रूढ़ियों का जबर्दस्त विरोध किया।

समाज सुधार के इन कार्यों का असर समाज में संपूर्ण ढाँचे पर पड़ा। लोगों में नई चेतना जागृत हुई। शिक्षा का प्रसार बढ़ा। लड़कियों के लिए स्कूल और कॉलेज खोले गये। बहु–विवाह और बाल–विवाह को घृणा की दृष्टि से देखा जाने लगा। सती प्रथा भी

धीरे–धीरे कम होने लगी। विधवाओं के विवाह का विरोध भी कम होने लगा। छुआछूत यद्यपि लंबे समय तक कायम रही, परंतु शिक्षित समुदायों से यह लुप्त होने लगी। धार्मिक रूढ़ियों और अंधविश्वासों की बजाय विवेकपरक सोच पर लोगों का विश्वास बढ़ा। विदेश यात्राओं के प्रति दृष्टिकोण में भी बदलाव आने लगा। इस तरह सामाजिक परिस्थितियों में नये बदलाव ने लोगों के दृष्टिकोण को अधिक उदार और आधुनिक बनाया।

सांस्कृतिक और वैचारिक जागरण उन्नीसवीं सदी में भारतीय नवजागरण की जिस चेतना का उदय हुआ उसने भारत के सांस्कृतिक और वैचारिक जीवन पर भी गहरा असर डाला। भारत ने पंरपरागत संस्कृति के प्रतिगामी तत्वों को त्यागकर उसके उन मूल्यों को ही स्वीकार किया जो आधुनिक जीवन के अनुकूल थे। इसके साथ पश्चिम के उन मूल्यों को भी स्वीकार किया गया जो नये भारत के निर्माण में सहायक बन सकते थे तथा जो भारतीय परिस्थितियों के अनरूप भी थे। तत्कालीन भारतीय मनीषियों ने विश्व मानवता को आधारभूत तत्व के रूप में स्वीकार करते हुए ही राष्ट्रीयता की अपनी भावना को समृद्ध किया। जाति, धर्म, लिंग, भाषा क्षेत्र आदि के भेदों से ऊपर उठकर एक सांझी संस्कृति को विकसित करने का प्रयास किया। इस मार्ग में बाधक जातिवाद, सांप्रदायिकता, धार्मिक असहिष्णुता, तत्ववाद और क्षेत्रवाद के विरुद्ध भी सतत् संघर्ष किया गया। साहित्य, चित्रकला, मूर्तिकला, संगीत आदि विभिन्न कलाओं में नये मार्गों की खोज करते हुए अतीत की समृद्ध परंपरा को पूरी तरह भुला नहीं दिया गया। हां, यह अवश्य है कि अतीत के प्रति एक स्वस्थ आलोचनात्मक दृष्टि भी विकसित की जिसने यह समझ दी कि भक्ति काव्य अगर हमारी परंपरा का स्वस्थ पक्ष है तो रीतिकाव्य अस्वस्थ पक्ष। इसका अर्थ यह नहीं है कि स्वंतत्रता संघर्ष के दौर में नवजागरण और राष्ट्रीय चेतना ने हमारे समाज में निहित सारे अंतर्विरोधों को समाप्त कर दिया बल्कि हमें इस दौर के अध्ययन से यह भी पता लगता है कि एक नये भारत के निर्माण में कितना चुनौतियों भरा काम है और हमारा देश आज भी उससे जुझ रहा है।

बोध प्रश्न–1

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दें।

1. आधुनिक युग से पूर्व किस तरह का साहित्य लिखा जा रहा था?

   क) भक्ति साहित्य

   ख) श्रृंगारपरक साहित्य

   ग) वीर काव्य

   घ) उपर्युक्त सभी

2. निम्नलिखित में से कौन–सा भाषा समूह द्रविड़ भाषा परिवार के अतंर्गत आता है –

   क) मलयालम, मराठी, कन्नड़, तमिल

   ख) कन्नड़ तमिल, मलयालम, उड़िया

   ग) तेलुगु, तमिल, कन्नड़, मलयालम

   घ) तेलुगु, मलयालम, तमिल, बंगला

3. आधुनिक भारत के निर्माण में कौन–कौन बाधक थे?

   ....

....

....

अभ्यास

1) देश की आर्थिक दशा ने राष्ट्रीय चेतना को उभारने में किस तरह मदद की?

....

....

....

....

2) सामाजिक और धार्मिक रूढ़ियों से संघर्ष के बिना आधुनिक भारत का निर्माण असंभव क्यों था?

....

....

....

....

6.5 आधुनिक भारतीय साहित्य का उदय

आधुनिक भारतीय साहित्य का उदय 19वीं शताब्दी से माना जा सकता है जब प्रेस की स्थापना हुई, अंग्रेजी शिक्षा के आरंभ होने तथा भारतीय भाषाओं में पत्र–पत्रिकाओं के शुरू होने से भारतीय सोच में तेजी से बदलाव आ रहा था। 1817 में कलकत्ता में हिंदू कालेज की स्थापना हुई जिसने अंग्रेजी भाषा और साहित्य के साथ आधुनिक विज्ञान की शिक्षा भी दी जाने लगी थी। इससे पूर्व 1800 में फोर्ट विलियम कालेज की स्थापना हो चुकी थी जहाँ कई भारतीय भाषाओं के अध्ययन की व्यवस्था भी की गई थी। 1818 में बंगला में पत्र प्रकाशन आरंभ हुआ। 1828 में राजा राममोहन राय के प्रयास से बंगला, फारसी, हिंदी आदि में पत्र प्रकाशित हुए। हिंदी का पहला पत्र 1826 में 'उदंत मार्तण्ड' भी कलकत्ता से ही आरंभ हुआ। भारतीय भाषाओं में गद्य लेखन की शुरुआत का श्रेय ईसाई मिशनरियों को भी है जिन्होंने ईसाई धर्म के प्रचार हेतु लगभग सभी प्रमुख भारतीय भाषाओं और बोलियों में पुस्तकें प्रकाशित की। प्रेस की स्थापना ने पत्र–पत्रिकाओं का प्रकाशन आरंभ किया। धीरे–धीरे सभी प्रमुख भारतीय भाषाओं में समाचार पत्र और पत्रिकाएं प्रकाशित होने लगीं। अंग्रेजी शिक्षा के बढ़ते अध्ययन ने शिक्षित वर्ग को प्रेरणा दी कि ज्ञान–विज्ञान के जिन क्षेत्रों में यूरोप ने तरक्की की है, उनसे भारतीय भी परिचित हों। इसलिए उस आरंभिक दौर में इतिहास, विज्ञान, समाजशास्त्र, साहित्य आदि विभिन्न क्षेत्रों की पुस्तकों के भारतीय भाषाओं में अनुवाद किये गये। इसी की अगली कड़ी में भारतीय लेखकों ने स्वयं अपने ज्ञान के बल पर नयी पुस्तकें लिखीं।

19वीं शताब्दी तक भारतीय साहित्य मुख्य रूप से कविता और नाटक विधाओं तक ही सीमित था। कहानी, उपन्यास, निबंध आदि आधुनिक विधाओं से भारतीयों का परिचय नहीं हुआ था। 'पंचतंत्र' तथा 'हितोपदेश' की कहानियाँ 18वी 19वीं शताब्दी की यूरोपीय कहानियों (short stories) से काफी भिन्न थीं। तत्कालीन भारतीय साहित्यकार इन नयी

विधाओं की ओर आकृष्ट हुए और उन्होंने कहानी, उपन्यास, नाटक, निबंध आदि विधाओं में भी लिखना शुरू किया। यद्यपि इस आरंभिक दौर में कविता की विषयवस्तु और शैली प्रधानतः मध्ययुगीन ही रही। परंतु धीरे–धीरे नये बदलाव का असर कविता पर भी दिखाई देने लगा।

साहित्य की जिन नयी विधाओं का आरंभ इस युग में हुआ, उसमें पुरानी मध्यकालीन विषयवस्तु नहीं पेश की जा सकती थी इसलिए उनमें वे विषय पेश किये जाने लगे तो इससे पूर्व तक साहित्य के अनुकूल नहीं माने जाते थे। साहित्यकारों ने अपने–अपने समय और समाज की उन समस्याओं को अपनी रचनाओं का विषय बनाया जो उस समय के जनमानस को आंदोलित कर रहे थे। उदाहरण के लिए, 1860 में दीनबंधु गुप्त ने बंगला में 'नीलदर्पण' नामक नाटक लिखा जिसमें नील के व्यवसायी अंग्रेजों के अत्याचारों के विरुद्ध किसानों के संघर्ष की कथा कही गई है। इसी तरह बंगला लेखक टेकचंद ठाकुर ने 1858 में 'आलादेर घरेर दलाल' नामक उपन्यास लिखा जिसमें सामाजिक व्यंग्य प्रस्तुत किया गया है। 1865 में बंकिम चंद्र 'दुर्गेशनंदिनी' जैसा प्रौढ़ उपन्यास लिख चुके थे। कहने का तात्पर्य यह है कि भारतीय साहित्य में एक नयी शुरुआत 19वीं शती के मध्य में हो चुकी थी। आगे हम अलग–अलग भाषाओं में लिखे गये साहित्य का संक्षिप्त लेखा–जोखा लेंगे।

6.6 पूर्वांचलीय साहित्य

यहाँ हम पूर्व की तीन प्रमुख भाषाओं–बंगला, असमिया और उड़िया के आधुनिक साहित्य में राष्ट्रीय चेतना और नवजागरण की विशेषताओं की अभिव्यक्ति का संक्षिप्त उल्लेख करेंगे। जिस प्रकार भारत में नवजागरण की शुरुआत बंगाल से हुई उसी तरह साहित्य के क्षेत्र में भी इसकी अभिव्यक्ति सबसे पहले बंगाल में ही हुई। असमिया भाषा के साहित्यिक विकास पर आरंभ में बंगला भाषा का दबाव रहा परंतु उन्नीसवीं शताब्दी के अंत तक असमिया ने अपनी स्वतंत्र दिशा पकड़ ली। उड़िया ने इस दौर में फकीर मोहन सेनापति जैसा महान् यथार्थवादी लेखक दिया।

6.6.1 बंगला साहित्य

आधुनिक बंगला साहित्य का आरंभ 19वीं शताब्दी में ही हो गया था। कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक और निबंध इन सभी विधाओं में बंगाल ने महत्वपूर्ण रत्न पैदा किये। योगेन्द्रचंद्र गुप्त के 'कीर्तिविलास' को बंगला का प्रथम मौलिक नाटक माना जाता है। 1860 में दीनबन्धु गुप्त द्वारा लिखे गये 'नील दर्पण' नाटक की चर्चा हम पहले कर चुके हैं। बंगाल में समाज सुधार संबंधी ऐसे नाटक लिखे गये जिनमें वृद्ध विवाह की बुराइयाँ बताई गई हैं। स्त्री शिक्षा और विवाह के समर्थन में भी कई नाटक तथा पुस्तिकाएँ लिखी गईं। कुलीन ब्राह्मणों की विवाह पद्धति, बाल–विवाह के विरोध, बहुविवाह प्रथा आदि पर भी कई मर्मस्पर्शी नाटक लिखे गये। अकाल की विनाश लीला को बताने वाले नाटक भी लिखे गये। बंगला के प्रमुख नाटककारों में द्विजेंद्रलाल राय, माइकेल मधुसूदन दत्त (1824–73), गिरीशचंद्र घोष (1844–1911) प्रमुख हैं। बाद में रवींद्रनाथ ठाकुर ने भी कई महत्वपूर्ण नाटक लिखे।

उपन्यास के क्षेत्र में यद्यपि पहला उपन्यास 'आलादेर घरेर दलाल' (1858) को माना जाता है। परंतु बंगला भाषा में उपन्यास लेखन की सही शुरुआत का श्रेय बंकिमचंद्र चट्टोपाध्याय (1838–94) को है जिन्होंने राजसिंह, कपालकुडंला, चंद्रशेखर, विषवृक्ष, आनंदमठ, देवी चौधरानी जैसे महत्वपर्ण उपन्यास लिखे। इंद्रनाथ चौधरी के अनुसार 'बंकिम बाबू' ने अपने ऐतिहासिक उपन्यासों में रोमांस और इतिहास का समन्वय कर जीवन के साधारण उच्छ्वास

और गौरवमय महत्व को प्रकट किया है। सामाजिक उपन्यासों में क्षुद्र विरोध के माध्यम से जीवन के सहज स्नेहपूर्ण चित्र को प्रकट किया है। उनका चरित्र–चित्रण यथार्थ है और उद्देश्य आदर्शमय है।' (भारतीय भाषाओं के साहित्य का संक्षिप्त इतिहास पृ. 242) बंकिम के उपन्यासों में राष्ट्र भक्ति की भावना कूट–कूट कर भरी थी। उनके ही समसामयिक रमेशचंद्र दत्त ने भी देश भक्ति मूलक ऐतिहासिक उपन्यास लिखे। बंगला उपन्यास के क्षेत्र में शरतचंद्र चट्टोपाध्याय (1876–1938) का नाम बड़े आदर से लिया जाता है। शरतचंद्र ने अपने उपन्यासों के माध्यम से नारी जाति की दयनीय दशा का अत्यंत मार्मिक चित्रण किया है। शरत् बाबू में यद्यपि भावुकता का अंश ज्यादा था–फिर भी उनकी व्यापक मानवीय दृष्टि ने उनके उपन्यासों को स्थायी महत्व प्रदान किया है। लेकिन उपन्यासों के क्षेत्र में रवींद्रनाथ ठाकुर का योगदान अविस्मरणीय है। 'गोरा' संभवतः भारत के श्रेष्ठतम उपन्यासों में से है जिसमें नवजागरण युग की सामाजिक–राजनीतिक और वैचारिक उथल–पुथल का अत्यंत यथार्थवादी चित्रण है। रवींद्रनाथ की दृष्टि विश्व मानवतावादी थी। वे न तो बंकिम की तरह हिंदूवादी थे और न ही शरतचंद्र की तरह भावुक। रवींद्रनाथ के अतिरिक्त विभूति–भूषण उपाध्याय, ताराशंकर वंद्योपाध्याय, माणिक वंद्योपाध्याय आदि अन्य महत्वपूर्ण उपन्यासकार हैं।

कहानी लेखन के क्षेत्र में बंगला में रवींद्रनाथ ठाकुर, शरतचंद्र, विभूतिभूषण बैनर्जी, प्रेमेंद्र मित्र आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। 'संवाद प्रभाकर' के संपादक ईश्वर चंद्र गुप्त (1812–59) को बंगला का पहला आधुनिक कवि माना जाता है। इनकी कविताओं में हास्य–व्यंग्य का महत्वपूर्ण स्थान है। रंगलाल बनर्जी (1826–87) ने ऐसे काव्य की रचना की जिनसे प्रेम, वीरता और देशभक्ति की भावना उत्पन्न होती है। 19वीं सदी के प्रमुख बंगला कवियों में माइकेल मधुसूदन दत्त का नाम लिया जाता है। 'तिलोत्तमा संभव', 'मेघनाथ वध' इनके प्रसिद्ध दो काव्य हैं, उन्होंने मनुष्यत्व को प्रधानता देते हुए बंगला काव्य को नया पथ दिखाया। परंतु काव्य के क्षेत्र में बंगला को विश्व ख्याति रवींद्रनाथ के काव्य से मिली। 1913 में 'गीतांजलि' के लिए उन्हें नोबेल पुरस्कार से सम्मानित किया गया। रवींद्रनाथ ठाकुर के यहाँ राष्ट्रीय भावना कभी विश्व मानवता की विरोधी बनकर नहीं आई। न ही धर्म का सांप्रदायिक और संकीर्ण रूप प्रकट हुआ। वे गहरे अर्थों में सच्चे मानवतावादी थे। उनकी कविताओं का अध्यात्मवाद इसी मानवतावाद से ओतप्रोत है।

रवींद्रनाथ के बाद के प्रमख कवियों में नजरूल इस्लाम अपनी ओजपूर्ण कविताओं के लिए विशेष रूप से पहचाने गये। अन्याय और अत्याचार चाहे किसी रूप में क्यों न हो, नजरूल ने सदा उसका विरोध किया। वे वास्तव में एक जन कवि थे। अन्य कवियों में जीवनानंद दास का प्रकृति प्रेम, प्रेमेंद्र मित्र का ओजस्वी रोमांटिकवाद और बुद्धदेव वस का आनंद बोध उल्लेखनीय है। सुकांत भट्टाचार्य यद्यपि अल्पायु में ही चल बसे परंतु अपनी प्रगतिशील और मानवतावादी दृष्टि के कारण बंगला कविता में उन्होंने अपना एक खास स्थान बना लिया।

निबंध लेखन में रवींद्रनाथ और प्रमथ चौधरी महत्वपूर्ण नाम हैं। इनके अतिरिक्त ईश्वरचंद्र विद्यासागर, राजनारायण वसु, भूदेव मुखोपाध्याय आदि भी उल्लेखनीय हैं।

6.6.2 असमिया साहित्य

असमिया में नवजागरण मुख्य रूप से 'जोनाकी' मासिक पत्रिका (1889) के प्रकाशन से माना जाता है। यद्यपि 1873 से पूर्व तक असम में बंगला भाषा का वर्चस्व रहा परंतु ईसाई मिशनरियों ने अपना प्रचार असमिया भाषा के माध्यम से ही किया। 'जोनाकी' के प्रकाशन

के समय के प्रमुख लेखक हैं–लक्ष्मीनाथ बैजबरूआ (1868–1938) चंद्रकुमार अग्रवाल (1868–1938), हेमचंद गोस्वामी (1872–1928) सत्यनाथ बरा (1860–1925)। इन लेखकों ने असमिया भाषा के साथ–साथ देश–भक्ति और समाज सुधार के लिए भी प्रयत्न किये जिसकी अभिव्यक्ति उनके साहित्य में दिखाई देती है। असमिया का पहला नाटक गुणाभिराम बरुआ कृत 'रामनवमी नाटक' 1857 में लिखा गया। यह नाटक ईश्वरचंद्र विद्यासागर से प्रभावित होकर विधवा विवाह के समर्थन में लिखा गया। लक्ष्मीनाथ बेजबरुआ मूलतः देशभक्ति के कवि थे तथा असम के राष्ट्रीय गीत 'ओ मोर आपनार देश' की सृष्टि की। 'मेरी जीवन स्मृतियां' शीर्षक से अपनी जीवनी लिखकर असमिया में जीवनी साहित्य की कमी पूरी की। कमलाकांत भट्टाचार्य इस युग के दूसरे महत्वपूर्ण कवि थे। इनकी कविताओं में अतीत का गौरवगान तथा देशप्रेम का ओजस्वी स्वर विद्यमान था। नवीनचंद्र बरदले ने सामाजिक नाटकों के साथ–साथ देशप्रेम की अनेक कविताएँ लिखीं। हेमचंद बरुआ ने पाखंड, ढोंग तथा अनाचार आदि का विरोध किया। असमिया भाषा के पहले उपन्यासकार पद्मनाथ गोहाइबरुआ हैं जिन्होंने 'भानुमति' (1891) व 'लाहरी' (1892) की रचना की। लेकिन उपन्यास के क्षेत्र में रजनीकांत बरदले (1868 1938) को विशेष ख्याति मिली। उनका पहला उपन्यास 'मिरि जीयरी' 1894 में प्रकाशित हुआ। अन्य उपन्यासकारों में दंडिनाथ कलिता, दैवचंद्र तालुकदार, विरंचिकुमार बरुआ प्रमुख हैं। कहानी लेखन में लक्ष्मीनाथ बेजबरुआ का विशेष योगदान है। शरतचंद्र गोस्वामी, नकुलचंद्र भूयां, लक्ष्मीनाथ फुकन आदि अन्य प्रमुख कहानीकार हैं। असमिया निबंध साहित्य को समृद्ध करने में हेमचंद्र बरुआ, गुणाभिराम बरुआ, कालिराम बरुआ का, योगदान रहा है तो हास्य–व्यंग्य लेखन में नई जान डाल दी। अन्य निबंधकारों में सत्यनाथ बरा, सूर्यकुमार भूयां, वेणुधर शर्मा का नाम लिया जाता है।

6.6.3 उड़िया साहित्य

उन्नीसवीं सदी में जिन लेखकों ने उड़िया साहित्य को नवीन दिशा दी उनमें प्रमुख हैं : फकीर मोहन सेनापति (1843–1918), राधानाथ राय (1848–1908) और मधुसूदन राव (1853–1912)। इन तीनों ने न केवल आधुनिक उड़िया साहित्य की रचना की वरन् उड़िया भाषा के उत्थान के लिए भी अनेक कार्य किये। फ़कीरमोहन सेनापति ने ही सबसे पहले उड़िया भाषा का छापाखाना स्थापित किया। उन्होंने स्त्री शिक्षा के प्रसार के लिए भी कार्य किया। उड़िया भाषा को पाठ्यक्रम में शामिल कराने तथा पाठ्य पुस्तकें तैयार करने में भी उन्होंने योगदान दिया। उन्होंने रामायण और महाभारत का उड़िया अनुवाद भी किया। इनकी पहली मौलिक रचना 'उत्कल भ्रमण' में अशिक्षित पंडों और ब्राह्मणों की लोलुपता पर गहरा व्यंग्य है। इन्होंने घरेलु जीवन की समस्याओं से लेकर भारतीय किसानों के उत्पीड़न तक को अपने लेखन का विषय बनाया है। 1897 में लिखा गया उपन्यास 'छमाण आठ गुंठ' (छै बीघा जमीन) उनकी सर्वाधिक ख्याति प्राप्त कृति है इसमें साहुकार की क्रुरता और किसानों के कष्टमय जीवन का यथार्थ चित्रण है।

राधानाथ राय उन्नीसवीं सदी के अग्रगणी उड़िया कवि हैं। देश प्रेम की भावना तथा समाज में व्याप्त अनेक प्रकार की बुराइयों के लिए संघर्ष इनकी कविता के मुख्य विषय थे। मधुसूदन राव ने अपने काव्य में मानवीय आत्मा के आध्यात्मिक मिलन की गाथा गाई है। उड़िया में नाटकों की रचना मुख्यतः रामशंकर राय ने की। इन्होंने कांचिकावेरी, वनमानल, कलिकाल आदि अच्छे नाटक लिखे। यद्यपि उड़िया में कविता, नाटक, उपन्यास आदि सभी विधाओं में उल्लेखनीय लेखन हुआ परंतु स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व जो ख्याति फकीर मोहन सेनापति, राधाकांत राय और मधुसूदन राव को मिली वैसी किसी अन्य को नहीं।

6.7 पश्चिमांचलीय साहित्य

इसके अंतर्गत हम दो भाषाओं मराठी और गुजराती के आधुनिक साहित्य का परिचय प्राप्त करेंगे। बंगाल के बाद नवजागरण का सबसे अधिक प्रभाव महाराष्ट्र और गुजरात पर ही दिखाई देता है। महाराष्ट्र में ज्योतिबा फूले (1827–1890), महादेव गोविंद रानाडे (1842–1901), बाबा साहब आंबेडकर आदि नाम प्रमुख हैं जिन्होंने समाज सुधार के लिए महान कार्य किये। इसी प्रकार गुजरात में स्वामी दयानंद सरस्वती और बाद में महात्मा गांधी के योगदान को कौन भुला सकता है। इन प्रदेशों में समाज सुधार के साथ–साथ राष्ट्रीय स्वाधीनता का आंदोलन भी बंगाल की तरह काफी मजबूत था। यही कारण है कि इन प्रदेशों में लिखे गये साहित्य में नवजागरण और राष्ट्रीय भावना दोनों की अभिव्यक्ति मिलती है।

6.7.1 मराठी साहित्य

इस युग में मराठी में पत्रकारिता का जबर्दस्त विकास हुआ जिससे कविता के साथ–साथ गद्य की प्रमुख विधाओं उपन्यास, कहानी, नाटक, निबंध, जीवनी आदि का विकास भी हुआ। मराठी को शिक्षा और सरकारी कामकाज की भाषा बनाने का आंदोलन भी चला। कुछ प्रमुख पत्रों में 'प्रभाकर' (1841), 'इंद्रप्रकाश' (1867), निबंधमाला (1874), केसरी (1881), सुधाकर आदि उल्लेखनीय हैं। इस युग में जो सामाजिक, राजनीतिक तथा साहित्यिक आंदोलन चले उनका भी साहित्य पर प्रभाव पड़ा।

मराठी रंगमंच का आरंभ 1843 में हुआ। वी.पी. किर्लोस्कर (1843–1885) का 'सौभद्र' (1882) काफी लोकप्रिय हुआ। गोविंद वल्लभ देबल (1854–1916) ने सात नाटक लिखे उनमें से छह अनुवाद थे, सातवां नाटक 'शारदा' उनका मौलिक नाटक था। श्रीपाद कोल्हटकर, कृष्णाजी प्रभाकर खाडिलकर (1872–1948) आदि ने सामाजिक सुधार को नाटकों का विषय बनाया। स्त्री शिक्षा से संबंधित वासुदेव गोरेश्वर पोतदार ने 'सुशिक्षित स्त्री' और कानिटकर ने 'तरुणी शिक्षण' लिखी। दहेज प्रथा के विरुद्ध 'हुडा प्रहसन' प्रसिद्ध हुआ। ऐतिहासिक और पौराणिक नाटककारों में नरसिंह चिंतामणि केलकर (1872–1947) का नाम भी उल्लेखनीय है।

मराठी का पहला उपन्यास बाबा पद्मजी का 'यमुना पर्यटन' (1857) था। यह उपन्यास नारी की शोचनीय स्थिति पर केंद्रित है और विधवा विवाह के पक्ष में आवाज उठाता है। लेकिन मराठी के पहले महत्वपूर्ण उपन्यासकार हरिनारायण आप्टे (1864–1919) हैं। 'मधली स्थिति' (1885) उनका पहला उपन्यास है। 'पण लक्षांत कोण घेतो?' उपन्यास में एक बाल विधवा की मार्मिक कहानी है। बाद में उन्होंने ऐतिहासिक रोमांसपरक उपन्यास अधिक लिखे। अन्य उपन्यासकारों में चिं.वि.वैध, शि.म. परांजये आदि प्रमुख हैं। सामाजिक उपन्यासकारों में वामन मल्हार जोशी (1882–1943) का नाम भी उल्लेखनीय है। माया वरेरकर ने सौ से अधिक उपन्यास लिखे जिनमें कुछ अनुदित भी थे। बीसवीं सदी में उपन्यास के क्षेत्र में उल्लेखनीय नाम प्रो. नारायण सीताराम फड़के तथा विष्णु सखाराम खांडेकर का है।

प्रायः सभी मराठी उपन्यासकारों ने कहानियां भी लिखी हैं। दिवाकर कृष्ण की 1920 में प्रकाशित 'अंगणांतील पोपट' (आंगन का तोता) से कुछ लोग आधुनिक मराठी कहानी का आरंभ मानते हैं। कहानी को प्रौढ़ रूप देने में फड़के और वि.स. खांडेकर का विशेष योगदान है।

मराठी में ही नहीं भारतीय साहित्य में भी केशवसुत (1866–1905) पहले आधुनिक कवि हैं। इन्होंने समाज सुधार आंदोलन को आगे बढ़ाने के लिए बड़े उग्र स्वर में सामाजिक कुरीतियों,

छुआछूत, स्त्री पराधीनता और मजदूर वर्ग के शोषण की भर्त्सना की। केशवसुत ने अपने उत्कृष्ट काव्य द्वारा कई अन्य कवियों को लेखन की प्रेरणा दी। रेवरंड नारायण वामन तिलक (1868–1919), विनायक (1872–1909) रामगणेश गडकरी उर्फ गोविंदाग्रज (1885–1919) आदि का नाम लिया जा सकता है। 1920 के बाद के दौर में 'रविकिरण मंडल' के कवियों ने काव्य–शिल्प का एक नया सांचा बनाया। इन कवियों में यशवंत, गिरीश, माधव जूलियन आदि प्रमुख थे। मराठी में प्रगतिशील द्वारा का भी महत्वपूर्ण योगदान रहा है जिनके प्रमुख कवियों में वा.वि. शिरवाडकर 'कुसुमाग्रज', वा.रा.कांत, शरच्चंद्र मुक्ति–बोध (हिंदी कवि गजानन माधव मुक्तिबोध के भाई) मदन मोहन नातू और गोविंद विंदा करंदीकर हैं।

इसके अतिरिक्त निबंध, जीवनी आदि के माध्यम से नवीन विचारों का प्रसार उस समय हो रहा था। समाज सुधार के साथ–साथ उस समय लेखक लेखों में राजनीतिक लेखन भी कर रहे थे। 1857 की घटनाओं पर लिखा यात्रा–संस्मरण विष्णु भट्ट गोडसे कृत 'मग्झा प्रवास' अत्यंत महत्वपूर्ण रचना है तो श्रीमती रमाबाई रानाडे द्वारा लिखित अपने प्रसिद्ध पति म.गो. रानाडे की जीवनी भी अत्यंत उल्लेखनीय रचना है। इस प्रकार मराठी साहित्य की प्रायः सभी विधाओं में नव–जागरण और राष्ट्रीय भावना को अभिव्यक्ति मिली।

6.7.2 गुजराती साहित्य

उन्नीसवीं सदी के पूर्वाद्ध में ही गुजरात में कुछ परिवर्तन दिखाई देने लगे थे। इन परिवर्तनों के पक्षधरों में दुर्गाराय मेहता (1809–1878) तथा दलपतराम ढायाभाई (1820–1898) मुख्य थे। इन्होंने सामाजिक परिवर्तनों को गति दी। 19वीं सदी के माध्यम में सामाजिक और धार्मिक क्षेत्र में नवीन विचारों का आगमन होने लगा था। दयानंद सरस्वती के अलावा दलपतराय, नर्मद, दुर्गाराय के प्रयत्नों से झाड़फूंक, बाल विवाह, विधवा विवाह, तथा विदेश गमन आदि क्षेत्रों में सामाजिक चेतना जागृत की जा रही थी।

गुजरात के जागरण में पत्रिकाओं का भी महत्वपूर्ण स्थान रहा। 1855 में समाज सुधारक कृष्णदास मुलजी ने 'सत्य प्रकाश' नामक पत्र निकाला। इसका समाज सुधार के काम में अपूर्व योगदान रहा। 1 सितंबर 1884 के दिन नर्मदाशंकर ने 'डांडियो' नामक पाक्षिक आरंभ किया जो शीघ्र ही साप्ताहिक हो गया। नर्मद ने इस पत्र द्वारा सामाजिक बुराइयों के विरुद्ध आंदोलन चलाया। राष्ट्रीयता की भावना का सर्वप्रथम प्रचार करने वाला 'डांडियो' ही था। नर्मदाशंकर (1833–1886) गुजराती में नवजागरण के प्रणेता थे। उनका कार्य चहुमुखी था। एक तरफ वे जहां गुजराती भाषा का प्रचार–प्रसार, नये साहित्य की सर्जना करके सांस्कृतिक नव–जागरण कर रहे थे, वहीं दूसरी तरफ उन्होंने अनेक प्रकार के लेख लिखकर सामाजिक जागृति में भी सहायता की। गुजराती भाषा में शब्दकोश तैयार करना इनका अन्य महत्वपूर्ण कार्य था। वे दादाभाई नौरोजी के शिष्य थे और 'स्वदेशाभिमान' का शब्द वहीं से उन्होंने सीखा। विधवा से विवाह कर उन्होंने समाज सुधार को वास्तविकता में भी बदला। 'महापुरुषों की जीवनियां' और 'आत्मकथा' लिखकर उन्होंने गुजराती गद्य को समृद्ध किया।

गोवर्धनराम त्रिपाठी इस युग के दूसरे प्रमुख लेखक थे। 1887 में इनके सुप्रसिद्ध उपन्यास 'सरस्वतीचंद्र' का पहला खंड प्रकाशित हुआ। उपन्यास के नायक सरस्वतीचंद्र में देशभक्ति की गहरी भावना मिलती है। सामाजिक जागरूकता इनके जीवन दर्शन का अंग थी। इस उपन्यास के केंद्र में सामाजिक उत्थान है। गोवर्धनराम ने कानून, राजनीति, समाज, अर्थव्यवस्था, धर्म आदि विषयों पर लेख लिखे।

नर्मद के समकालीन महीपतराम नीलकंठ ने विदेश यात्रा की थी, उन्होंने गुजराती में पहला यात्रा वृत्तांत लिखा था। उन्होंने 'सास बहू की लड़ाई' नामक सामाजिक उपन्यास भी लिखा। बृजलाल शास्त्री ने गुजराती भाषा का इतिहास लिखा और भाषा विज्ञान को नई दिशा दी।

गुजराती साहित्य में गांधी जी का भी व्यापक प्रभाव पड़ा। 1915 के बाद के साहित्य को गुजराती में गांधी युग की संज्ञा दी गई। गांधी जी के प्रभाव से प्रेरित होकर कवियों ने राष्ट्रोत्थान और नई जनजाग्रति को कविता में महत्वपूर्ण स्थान दिया। इस युग से पूर्व के कवि यद्यपि अधिक महत्वपूर्ण रचना नहीं कर पाए परंतु गांधी युग में उमाशंकर जोशी, सुंदरम, झवेचंद मेघाणी, वामनारायण पाठक महत्वपूर्ण कवि हैं। उपन्यासकारों में कन्हैयालाल माणिक लाल मुंशी ने पौराणिक और ऐतिहासिक विषयों पर उपन्यास लिखे जबकि रमणलाल देसाई ने मानवतावादी और गांधीवादी दृष्टिकोण को प्रतिबिंबित किया है। उन्होंने 'प्रलय' में युद्ध की समस्या को उठाया है तो 'पुर्णिमा' में वेश्या समस्या को। 'हृदय–विभूति' में आदिवासी जातियों का चित्र खींचा है।

कहानी का आरंभ बीसवीं शती में हुआ और गुजराती की पहली कलात्मक कहानी सन् 1918 में 'गोवालणी' मिलती है जो मलयानिल ने लिखी है। धूमकेतु ने कहानी साहित्य को नया मोड़ दिया। उन्होंने ग्राम जीवन और दलित तथा शोषित निम्नवर्ग की समस्याओं को चित्रित किया। नाटक लेखन में कन्हैयालाल मुंशी का नाम महत्वपूर्ण है। चंद्रवदन मेहता इस युग के यथार्थवादी नाटककार हैं। रमण लाल देसाई, कृष्णलाल श्रीधाराणी, यशवंत पंड्या, गुणवंत राय आचार्य आदि अन्य नाटककार हैं। निबंध के क्षेत्र में गांधी जी का महत्वपूर्ण योगदान है जिन्होंने राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, आर्थिक आदि विषयों पर निबंध लिखे। डॉ. चंद्रकांत मेहता के अनुसार, 'सरल और लाछववयुक्त जनभाषा में कहावतों, मुहावरों आदि द्वारा निबंध को किस प्रकार आकर्षित बनाया जा सकता है, इसका परिचय उन्होंने अपने निबंधों द्वारा दिया। गांधी जी इस युग के महान निबंध लेखक थे।' अन्य निबंधकारों में काकासाहब कालेलकर, किशोरलाल, मशरूवाल नरहरि पारीख, पंडित सुखलाल, किसनसिंह चावड़ा ये गंभीर निबंध लेखक हैं।

बोध प्रश्न–2

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर संक्षेप में दें।

1. आधुनिक भारतीय साहित्य का आरंभ कब से माना जाता है?

....

....

....

....

2. आधुनिक साहित्य के दौरान किन–किन नयी विधाओं में लेखन आरंभ हुआ?

....

....

....

....

3. निम्नलिखित रचनाओं के लेखकों और विधाओं के नाम बताइए।

	लेखक	विधा
1. नील दर्पण	....	....
2. गोरा	....	....
3. अंगणांतील पोपट	....	....
4. सरस्वतीचंद्र	....	....
5. मेघनाद वध	....	....

अभ्यास–2

3) बंगला उपन्यास के विकास पर संक्षेप में प्रकाश डालिए।

....

....

....

....

6.8 दक्षिणांचलीय साहित्य

राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन और नवजागरण में दक्षिण की भी बराबर की भागीदार रही है। आंध्रप्रदेश में वीरेशलिंगम, केरल में नारायण गुरू, तमिलनाडु के द्रविड़ आंदोलन ने दक्षिण में नवजागरण और समाज सुधार के आंदोलन को गति दी। अन्य राज्यों की तरह यद्यपि ये राज्य भी अपने वर्तमान रूप में स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद गठित हुए परंतु इन क्षेत्रों में स्वाधीनता आंदोलन काफी मजबूत रहा। इस दौर के साहित्य में हम नवजागरण और राष्ट्रीय चेतना की अभिव्यक्ति व्यापक रूप में पाते हैं।

6.8.1 तमिल साहित्य

आधुनिक काल के पहले तक तमिल में पद्य की प्रचुरता थी। लेकिन अंग्रेज़ी साहित्य के प्रभाव में पद्य के साथ–साथ गद्य का भी विकास हुआ। गद्य की विभिन्न विधाओं का विकास इसी दौर में हुआ। आधुनिक काल के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं सुब्रह्मन्य भारती। भारती राष्ट्रीयता के पहले कवि थे। डा. के. ए. जमुना के अनुसार, 'राजनीतिक दृष्टि से क्रांतिपूर्ण युग में जन्म लेने पर भी उनके भावुक कवि हृदय ने अनेक सुंदर काव्य–कृतियों की सृष्टि की। तमिलनाडु की जनता में वीरता एवं धीरता उत्पन्न करने के लिए इन्होंने देशभक्ति पूर्ण विविध कविताओं की रचना की। इनकी कविताओं के मूल भाव हैं– व्यक्तिगत मुक्ति, राष्ट्रीय स्वातन्त्र्य, समाज सुधार की भावना और विश्वबंधुत्व की भावना आदि। पग–पग पर भारतीयता का देश–प्रेम, तमिल भाषा–प्रेम तथा स्वधर्म प्रेम झलकता है। उन्होंने देश के लिए अपना तन, मन, धन अर्पित कर दिया था। देश के नगण्य से नगण्य व्यक्ति का भी उनकी दृष्टि में महत्व था। इसी से उनकी काव्य कृतियों में पीड़ित एवं दलित वर्ग के पात्रों को स्थान मिला है।' (भारतीय भाषाओं के साहित्य का संक्षिप्त इतिहास पृ. 182)।

भारती के अलावा इस दौर के अन्य प्रसिद्ध कवि हैं– भारतीदासन, कविमणि देशिक विनायकम पिल्लै, नामक्कल रामलिंगम पिल्लै आदि।

तमिल नाटक के क्षेत्र में प्रथम उल्लेखनीय लेखक हैं शंकरदास स्वामिगल् हैं जिन्होंने लगभग चालीस नाटक लिखे। पम्मल सम्बंद मुदलियार तमिल नाटकों के जनक कहे जाते हैं। इन्होंने अस्सी नाटकों एवं प्रहसनों की चर्चा की।

तमिल में उपन्यास साहित्य का आरंभ श्री वेदनायकम पिल्लै कृत 'प्रताप मुदलियार, चरित्रम' से होता है। राजम अय्यर भी प्रतिभाषाली उपन्यासकार थे। श्री माधवय्या, पं. नरेश शास्त्री, श्रीमती कौदैनायकी अम्माल, आदि का नाम भी लिया जाता है। कृष्णमूर्ति 'कल्कि' ने तमिल उपन्यासों को नयी दिशा दी। उन्होंने सामाजिक, ऐतिहासिक, हास्यप्रधान, नाना उपन्यासों की सर्जना की। तमिल उपन्यास लेखन में अखिलन, गोवी मणिशेखरन, डॉ. मु. वरदराजन आदि के नाम लिये जा सकते हैं। तमिल में कहानी लेखन का आरंभ सुब्रह्मण्य अय्यर ने किया तमिल कहानी के क्षेत्र में तीन व्यक्तियों के नाम अधिक प्रसिद्ध हैं। वे हैं–पुदुमैपित्तन, कु.प. राजगोपालन और कल्कि। तमिल में निबंध, आत्मकथा, जीवनियां, संस्मरण आदि में भी उल्लेखनीय लेखन हुआ।

6.8.2 तेलुगु साहित्य

तेलुगु भाषी वीरेशलिंगम (1848–1929) न केवल अपने क्षेत्र में, वरन् संपूर्ण दक्षिण भारत में, विशेष रूप से मद्रास तक नवजागरण के पुरोधा थे। उन्होंने सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक सभी क्षेत्रों में नई चेतना का विस्तार किया। समाज सुधार और साहित्य दोनों ही क्षेत्रों में इनके कार्य बहुत महत्व के हैं। तेलुगु गद्य और उसकी अन्य विधाओं–नाटक, उपन्यास, प्रहसन, निबंध, आलोचना, जीवनी, आत्मकथा आदि का आरंभ और विकास इनके द्वारा ही हुआ। 'ब्रह्मविवाह्म' (1876) एक हास्य प्रधान रूपक है। इस नाटक के आंध्र प्रदेश में बूढ़ों के बालकन्याओं के साथ विवाह करने पर रोक सी लग गई। 1880 में विधवा विवाह संबंधी नाटक 'विवेक दीपिका' प्रकाशित हुआ। तेलुगु का पहला उपन्यास 'राज शेखर चरित्रम' (1878) भी वीरेशलिंगम् ने ही लिखा था। हिंदू समाज में व्याप्त अंधविश्वासों को दूर करने के लिए इसका लेखन हुआ। वीरेशलिंगम सभी तेलुगु पत्रकारिता के निर्माता थे। 1874 में 'विवेकवर्धिनी' के प्रकाशन से अपने समाज सुधार के कार्य को आगे बढ़ाया। स्त्रियों के लिए इन्होंने 'सतीहित बोधिनी' नामक मासिक पत्रिका निकाली। वीरेशलिंगम पर बंगाल के नवजागरण का सीधा प्रभाव था।

गुरजाड अप्पाराव (1862–1915) तेलुगु के एक और महत्वपूर्ण लेखक हैं। उन्होंने जनसामान्य की बोलचाल की भाषा में साहित्य रचना की। इन्होंने भी अपनी रचनाओं के माध्यम से समाज सुधार के काम को आगे बढ़ाया। बाल–विवाह विरोधी अपनी कविता 'पूर्णम्मा' में अप्पाराव नन्हें–मुन्नों का आह्वान कर एक अश्रुपूर्ण कहानी सुनाते हैं। 'देशभक्ति' नामक खंडकाव्य में मानवतावाद के गीत गाये हैं। 'कन्याशुल्कम' नाटक में बाल–विधवाओं की दयनीय स्थिति का चित्रण है। गुरजाड के विचारों में वैज्ञानिकता, धर्मनिरपेक्षता, राष्ट्रीय एकता, अतीत से मुक्ति आदि भावों के साथ–साथ समाज के निर्माण में श्रमिकों को मान्यता मिलने संबंधी भाव विद्यमान थे। तेलुगु की इस युग की अन्य महान प्रतिभाओं में वेदम वेंकटराय शास्त्री, बल्लारी के.डी. कृष्णामावार्लु, रामचंद्रालु आदि महत्वपूर्ण लेखक हैं।

रायप्रोलु सुब्बाराव ने राष्ट्रीय भावना का तेलुगु कविता में सर्वप्रथम समावेश किया। विश्वनाथ सत्यनारायण में रोमांटिक भावना और नवजागरण दोनों का समावेश है।

1935 के बाद तेलुगु कविता में वामपंथी विचारों की ओर झुकाव हुआ। श्रीरंगम् श्री निवास राव (श्री श्री) इस धारा के सर्वश्रेष्ठ कवि माने जाते हैं। उनकी कविता में गरीबों के प्रति असीम सहानुभूति और क्रांति की आकांक्षा अभिव्यक्त हुई है।

वीरेशलिंगम के बाद तेलुगु उपन्यास लेखन के क्षेत्र में लक्ष्मीनरसिंहम पंतुलु, चिलकमूर्ति अडिवि बापिराजु, केतवरपु वेंकटशास्त्री, विश्वनाथ सत्यनारायण आदि उल्लेखनीय है। कहानी, नाटक तथा अन्य गद्य विधाओं में भी इस भाषा में इस अवधि में महत्वपूर्ण कार्य हुआ।

6.8.3 कन्नड़ साहित्य

आधुनिक कन्नड़ की शुरुआत गद्य से होती है। लगभग 1831 में वल्लरि तथा मंगलौर में मिशनरियों द्वारा प्रिटिंग प्रेस की स्थापना हुई। उसके बाद से ही कन्नड़ भाषियों में अपनी भाषा के प्रति सम्मान का भाव जाग्रत हुआ। उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध से कन्नड़ के आधुनिक साहित्य की शुरुआत होती है। इस काल में अनुवाद अधिक हुए, स्वतंत्र रचनाएं बहुत कम लिखी गई। इगप्पा हेगड़े का विवाह प्रहसन' एक सामाजिक नाटक था। इसमें कन्या विक्रय को आधार बनाकर सामाजिक व्यंग्य किया गया था। उपन्यास के क्षेत्र में कन्नड़ के प्रथम सामाजिक उपन्यास होने का गौरव 1899 में गुलवाडी वेंकटराव लिखित 'इंदिरा बाई' को प्राप्त है। एम.एस. पुट्टण्णा का लिखा हुआ 'माद्रि हुण्णो महाराजा' एक मौलिक उपन्यास है।

कन्नड़ का श्रेष्ठ आधुनिक साहित्य बीसवीं शताब्दी के दूसरे दशक के बाद से ही मिलता है। कविता के क्षेत्र में मास्ति वेंकटेश अयंगार, डी.वी. गुंडप्पा, पंजे मंगेशराव, दत्तात्रेय रामचंद्र बेंद्रे, सालि रामचंद्रराव मुख्य थे। अन्य कवियों में के.वी. पुट्टप्पा, वी. सीतारामय्या, पी.टी. नरसिंहाचार आदि भी महत्वपूर्ण थे। इन सभी कवियों के काव्य में धरती का प्रेम तथा राष्ट्रीयता का पूरा भावलोक व्यक्त हुआ। सन् 30 में जिस प्रगतिशील आंदोलन का सूत्रपात्र हुआ, उसने उस समय के साहित्य पर गहरा असर डाला। विनायक कृष्ण गोकाक, के.एस. नरसिंह स्वामी, गोपालकृष्ण अडिग, बी.एच. श्रीधर, चन्नवीर कणवी, जी.एस. शिवरुद्रप्पा आदि ने कविता में नई संवेदना का संचार किया।

आधुनिक कन्नड़ साहित्य में छोटी कहानी सबसे लोकप्रिय है। मास्ति वेंकटेश अयंगार आधुनिक कन्नड़ कहानी साहित्य के पिता माने जाते हैं। उनकी कहानियों में दार्शनिकता, देशभक्ति, ऐतिहासिकता, ग्रामीण जीवन के चित्र, मनोवैज्ञानिक विश्लेषण आदि तत्वों का बड़ा सुंदर समावेश हुआ है। अन्य कहानी लेखकों में गोरूप राम–स्वामी अयंगार, कुवेंपु, आनंद, बेटगेरि, गोपाल कृष्णराव गौरम्मा उल्लेखनीय हैं।

कन्नड़ उपन्यास लेखकों में शिवरामकारंत, मास्ति वेंकटेश अयंगार, वी.के. गोकाक, ए.एन, कृष्णराव, के.वी. अय्यर आदि प्रमुख हैं। मास्ति का 'चेन्नबसवनायक', के.वी.अय्यर का 'शांतला', ए.एन. कृष्णराव का 'नटसार्वभौम', के.वी. पुट्टप्पा का 'कानुर सुब्बम्म हेग्गडति', कारंत के 'बेट्टदाजीव' और 'चोमनदुडि' और गोकाक का 'समरसवे जीवन' अपने–अपने विशिष्ट गुणों के कन्नड़ भाषा के महत्वपूर्ण उपन्यास कहे जा सकते हैं।

नाटक, निबंध, बाल साहित्य तथा अन्य विधाओं में भी कन्नड़ भाषा में इस अवधि में महत्वपूर्ण लेखन हुआ।

6.8.4 मलयालम साहित्य

केरल में नवजागरण का शंख फूंकने वालों में सर्वप्रथम नारयण गुरू (1854–1928) का नाम आता है। नारायण गुरू ने दलितों और शोषितों की सांस्कृतिक–आर्थिक मुक्ति का आंदोलन चलाया। उनके कामों ने केरल में राष्ट्रीय आंदोलन के लिए आधार बनाया। नारायण गुरू के विचारों को साहित्य में कुमारन् आशान (1873–1924) ने अभिव्यक्ति दी। इस काम का

उन्होंने 'विवेकोद्यम नामक पत्रिका के संपादन से पूरा किया। जाति व्यवस्था के विरोध में 'दुरवस्था' और 'चंडाल भिक्षुकी' नामक लंबी कविताएँ बहुत सुंदर बन पड़ी हैं। कुमारन् आशान से पूर्व मलयालम में सांस्कृतिक जागरण के रूप में केरल वर्मा (1815 1914), ए. आर. राजराज वर्मा (1863–1918), चंद्रमेनन (1847–1900) आदि का योगदान मलयालम गद्य के विकास के लिए सदैव याद किया जाता रहेगा। उन्होंने पाठ्य–पुस्तकों के निर्माण, शब्दकोश, संस्कृत, अंग्रेजी तथा दूसरी भारतीय भाषाओं से मलयालम में अनुवाद से भाषा को समृद्ध किया।

उपन्यास के क्षेत्र में चंद्रमेनन का 'इंदुलेखा' (1889) मलयालम का पहला उपन्यास माना जाता है। यह एक सामाजिक उपन्यास है। इनका दूसरा उपन्यास 'शारदा' है। सी.वी. रामन पिल्लै का 'मार्तण्डवर्मा' (1891) एक नवीन शैली का उपन्यास है।

कविता के क्षेत्र में दूसरा महत्वपूर्ण नाम वल्लतोल नारायण मेनन (1878–1958) हैं। भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के विविध प्रकरणों की वल्लत्तोल की कविता में मार्मिक अभिव्यक्ति हुई है। 'एन्टे गुरुनाथन' (मेरे गरुदेव) महात्मा गांधी के संबंध में लिखी गई श्रेष्ठ कविता है। उल्लूर एस. परमेश्वर अय्यर ने साहित्य की सभी विधाओं को परिपुष्ट किया है। श्री शंकर कुरुप ने मलयालम कविता को विश्व साहित्य के स्तर पर प्रतिष्ठित किया है।

मलयालम भाषा में कथा साहित्य भी काफी समृद्ध है। बीसवीं सदी की बदलती स्थितियों का प्रभाव कथा साहित्य पर भी दिखाई देता है। तकषि शिवशंकर पिल्लै का उन्यास 'चेम्मीन' मलयालम की ही नहीं भारतीय भाषाओं की श्रेष्ठतम कृतियों में से है। तकषि पददलित जनता के जीवन की करुणाजनक परिस्थितियों को हृदय–स्पर्शी रीति से चित्रित करने में सिद्धहस्त हैं। केशवदेव के उपन्यास भी यथार्थवाद से काफी प्रभावित हैं। एस.के. पोट्टक्काटु ग्रामीण जीवन के चित्रकार हैं। पी.सी. कुट्टिकृष्णन ने मालाबार के मुस्लिम परिवारों को केंद्र बनाकर अनेक उच्चकोटि के उपन्यास लिखे हैं। नाटक, निबंध, कहानी आदि विधाओं में भी मलयालम में महत्वपूर्ण लेखन हुआ है।

6.9 उत्तरांचलीय साहित्य

इस भाग के अंतर्गत हम उर्दू, सिंधी, पंजाबी और कश्मीरी भाषा के साहित्य का परिचय प्राप्त करेंगे। यद्यपि हिंदी भी इसी क्षेत्र की भाषा है परंतु हिंदी साहित्य पर विचार हम भाग 6.10 के अंतर्गत करेंगे।

6.9.1 उर्दू साहित्य

उर्दू में नवजागरण का प्रारंभ दिल्ली कॉलेज की स्थापना (1824) से माना जाता है इसमें परंपरागत अरबी, फारसी के अलावा अंग्रेजी और विज्ञान का भी अध्ययन होता था। इस युग में गद्य का उदय हुआ। गद्य में सोच के स्तर पर तर्क और बौद्धिकता का समावेश हआ। विज्ञान की पुस्तकों में उर्दू में अनुवाद 1857 के पहले से ही छपने लगे थे। इस दौर में सबसे महत्वपूर्ण नाम सर सैय्यद अहमद खां का है जिन्होंने मुसलमानों के बीच समाज सुधार का महत्वपूर्ण कार्य किया और उनमें शैक्षिक जागृति लाने के लिए शिक्षा संस्थाओं की स्थापना की। अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय उनके ही प्रयत्नों का फल है।

सर सैय्यद ने धार्मिक, सामाजिक और शिक्षा संबंधी कार्यों के अतिरिक्त उर्दू गद्य को विकसित करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया। गालिब द्वारा लिखे पत्र भी उर्दू गद्य के उत्कृष्ट नमूने हैं। हाली, शिबली, नजीर, सैय्यद अली, बिलगिरामी, आदि ने साहित्य के नवजागरण

में योगदान दिया। इस युग में अनुवाद, कविता, जीवनी, यात्रा साहित्य, हास्य–व्यंग्य, निबंध, उपन्यास सभी क्षेत्रों में उल्लेखनीय कार्य हुआ। हाली और शिबली ने नया काव्यशास्त्र दिया। 'मुकद् शेरों–शायरी' में पहली बार हाली ने यह बताने की कोशिश कि समाज का साहित्य से क्या रिश्ता है? हाली गद्य लेखक और आलोचना के अलावा कवि रूप में भी उतने ही महान थे। 'मुसद्दस' उनकी श्रेष्ठ काव्य रचना 'शिकवाए–हिंद' नामक कविता भारत के गौरवमय अतीत के वर्णन के साथ ही वर्तमान दुर्दशा के विरुद्ध पुकार है। इस युग में उर्दू साहित्य को दरबारी मिजाज, प्रेम और की तड़पन मे मुक्त करके उसे राष्ट्रीयता, मानवतावाद, बौद्धिकता और वैज्ञानिकता जोड़ने का श्रेय सर सैय्यद को ही है। मुहम्मद हुसैन आजाद (1832–1910) ने कविता में विषय और शैली दोनों दृष्टियों से नई शुरुआत की। अकबर इलाहाबादी (1846–1921) और चकबस्त पर राष्ट्रीय चेतना का गहरा प्रभाव था।

उर्दू शायरी को राष्ट्रीय भावना, मानवतावाद, रोमांटिक नवजागरण से युक्त करके उसे कलात्मक उत्कर्षता प्रदान करने वालों में इकबाल का नाम सबसे ऊपर है जिन्होंने 'सारे जहाँ से अच्छा हिंदोस्तां हमारा' जैसा अमर तराना लिखा। बाद में इकबाल का शायराना मिजाज अध्यात्म की ओर हो गया।

उर्दू शायरी को हसरत मोहानी, फिराक़ गोरखपुरी, जोश मलीहाबादी, मजाज़ लखनवी, मख़दूम मोहिउद्दी, फ़ैज़ अहमद फैज़ जैसे शायरों ने भी ऊँचाई प्रदान की जिनके काव्य में राष्ट्रीयता थी, उत्पीड़ित जनता के प्रति गहरी सहानुभूति थी तथा क्रांति का उद्घोष था।

उर्दू में उपन्यास का आरंभ हिंदी से पहले हुआ। उर्दू का पहला उपन्यास नजीर अहमद ने 1869 में 'खिराजुल उख्स' नाम से लिखा। इनमें एक सभ्रांत मुस्लिम परिवार का जीवन चित्र प्रस्तुत करते हुए दिखाया गया है कि कुलीन घर की मूर्ख लड़की भी शिक्षा से सुधर सकती है। रतननाथ सरशार (1846–1902) का 'फसानाए–आजाद' उर्दू में ही नहीं हिंदी में भी पढ़ा गया। मिर्जा रूस्वा ने 'उमराव जान अदा' में एक वेश्या की कहानी लिखी और उसके प्रति मानवीय सहानुभूति व्यक्त की।

उर्दू के क्षेत्र में क्रांतिकारी शुरुआत का श्रेय प्रेमचंद को है जिन्होंने बाद में हिंदी में भी लिखना शुरू कर दिया था। वे यथार्थवादी कलाकार थे और अपने उपन्यासों और कहानियों से उन्होंने दलित वर्ग को न केवल गहरी सहानुभूति दी वरन् उनके हृदय की ऊँचाइयों को भी दुनिया के सामने रखा।

प्रगतिशील आंदोलन ने उर्दू कथा साहित्य को समृद्ध करने में महत्वपूर्ण योग दिया। कृष्णचंदर, सआदत हसन मंटो, ख्वाजा अहमद अब्बास, इस्मत चुग़तई, राजेंद्र सिंह बेदी ने कहानियों और उपन्यासों द्वारा उर्दू को समृद्ध किया।

6.9.2 सिंधी साहित्य

कई कारणों से सिंधी भाषा का आधुनिक साहित्य का विस्तृत भंडार नहीं मिलता। 1843 में अंग्रेजों के अधीन आने के बाद सिंधी में जो पुस्तकें लिखी गई वे या तो पाठ्य पुस्तकें थीं या अनुवाद। कविता के क्षेत्र में परंपरागत काव्य ही लिखा जाता रहा। 20वीं शताब्दी में अवश्य सिंधी भाषा में आधुनिक किस्म की कविता का लेखन शुरू हुआ। सिंधी कविता को घरेलु बोलचाल की स्वाभाविक सिंधी भाषा की ओर मोड़ने का श्रेय मास्टर किशनचंद बेबस को है जिन्होंने ग़रीबों के जीवन पर, प्रकृति सौंदर्य पर कविताएँ लिखीं। उन्होंने बच्चों के लिए सरल गीत भी लिखे। अन्य कवियों में हिरदिलगीर, हूंदरराज दुखायल, राम पंजवाणी, गोविंद

भटवाणी प्रमुख हैं। हैदरबख़्श जतोई भी सिंधी भाषा के यशस्वी कवि हैं। नाटक में यद्यपि मौलिक नाटक कम लिखे गये परंतु अन्य भाषा से अनुवाद काफी हुए। सिंधी गद्य को समृद्ध करने में मिर्ज़ा कलीच बेग, कौड़ोमल चंदनमल, दयाराम गिदूमल और परमानंद मेवाराम आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। इन्होंने अनुवाद और मौलिक रचनाओं द्वारा सिंधी साहित्य को समृद्ध किया।

6.9.3 पंजाबी साहित्य

श्री खुशवंत सिंह के अनुसार पंजाब में पश्चिमी प्रभावों का असर सबसे अंत में आया अतः उस प्रभाव को दूर करने में भी वह सबसे पीछे रहा। इसी कारण पंजाबी साहित्य का नवजागरण शेष देश की अपेक्षा बहुत देर से घटित हुआ। अंग्रेजों के आने के बाद पहले सिंह सभा के आंदोलन और बाद में अकाली आंदोलन और कम्युनिस्टों के प्रभाव से जो सामाजिक और राजनीतिक घटनाएँ घटित हुई, उन्हीं को पंजाबी साहित्य प्रतिबिंबित करता रहा। (आज का भारतीय साहित्य, पृ.180) सिंह सभा के आंदोलन की साहित्यिक अभिव्यक्ति भाई वीर सिंह के माध्यम से हुई। उन्होंने पंजाबी भाषा में लोगों की दिलचस्पी फिर से पैदा की। उन्होंने बहुत अधिक मात्रा में लिखा। भाई वीरसिंह के अपने उपन्यासों में सिख धर्म और सिख राज्य का गौरवगान मिलता है जिस पर अंग्रेजों द्वारा आघात किया जा रहा था। सिख धर्म की नैतिक श्रेष्ठता उनके उपन्यासों का मुख्य विषय है। वीरसिंह ने धर्मग्रंथों की टीकाएं भी लिखीं वीरसिंह ने पहली बार पंजाबी में मुक्त छंद का प्रयोग किया। 'राणा सूरतसिंह' नामक लंबी कविता का विषय भी यद्यपि धार्मिक है परंतु भाषा और शैली की दृष्टि से वह उत्कृष्ट रचना है। उन्होंने गुरु नानक व गुरु गोविंद सिंह की जीवनियां भी लिखीं। भाई वीर सिंह के चार समकालीन कवि काहन सिंह, चरण सिंह, चरणसिंह पूरणसिंह और धनीराम चात्रिक भी उल्लेखनीय हैं।

आधुनिक पंजाबी कविता के दो महत्वपूर्ण नाम हैं मोहन सिंह और अमृता प्रीतम। मोहन सिंह के लेखन पर प्रगतिशीलता का प्रभाव रहा है जबकि अमृता प्रीतम में सहज मानवीय करुणा का समावेश प्रधान रहता है।

पंजाबी गद्य में सबसे महत्वपूर्ण नाम है—गुरुबख्श सिंह। 'प्रीतलड़ी' नाम से एक पत्र भी उन्होंने प्रकाशित किया। 'सांवी पथरी जिंदगी' नामक निबंध संग्रह ने उन्हें पंजाबी का सर्वश्रेष्ठ गद्य लेखक बना दिया। उपन्यास के क्षेत्र में उल्लेखनीय नाम हैं— नानक सिंह। इन्होंने चालीस के लगभग उपन्यास लिखे। इन्होंने अपने उपन्यासों द्वारा समाज सुधार का संदेश घर—घर पहुंचाया। 'चिट्टालहू' और 'आदमखोर' उनके सर्वश्रेष्ठ उपन्यास हैं। करतारसिंह दुग्गल, सुरिदरसिंह नरूला, जसवंतसिंह कँवल अन्य उल्लेखनीय हैं।

पंजाबी कहानी लिखने में संतसिंह सेखों का नाम सबसे ऊपर है। करतारसिंह दुग्गल, कुलवंतसिंह विर्क अन्य महत्वपूर्ण नाम हैं।

6.9.4 कश्मीरी साहित्य

कश्मीरी भाषा में आधुनिक साहित्य की शुरुआत और भी देर से हुई। इसका सबसे बड़ा कारण यह है कि अन्य भारतीय भाषाओं की तरह कश्मीरी को न तो शिक्षा का माध्यम बनाया गया और न ही इसके लिए वहाँ के शिक्षित वर्ग ने प्रयत्न किया। परिणामस्वरूप न तो कश्मीरी में पत्रकारिता का आरंभ हुआ और न ही गद्य लेखन की शुरुआत हुई। हां, कविता के क्षेत्र में अवश्य कुछ कवियों ने नये काव्य की नींव डाली। गुलाम अहमद 'महजूर' (1885—1952) के काव्य में भी यद्यपि प्रेम की ही अभिव्यक्ति हुई परंतु उनकी अभिव्यक्ति

शैली नये ढंग की थी। अब्दुल अहद आजाद में भी यही नयापन नजर आता है। मजहूर के काव्य में ही पहली बार राष्ट्रीयता के भाव की अभिव्यक्ति हुई। देश की दलित, पीड़ित एवं शोषित जनता की ओर पहली बार ध्यान उन्हीं का गया। महजूर के शिष्य आज़ाद ने राष्ट्रीयता और मानव–प्रेम की इस धारा को आगे बढ़ाया। डोगरी राजा की दासता के विरुद्ध उन्होंने क्रांति की सिंह–गर्जना अपने काव्य द्वारा की। आज़ाद के काव्य में कश्मीरवासियों की भावनाओं की सच्ची अभिव्यक्ति हुई है। वे राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन के सच्चे प्रतिनिधि कवि हैं। मिर्जा गुलाम हसन बेडा 'आरिफ' एवं पं. दीनानाथ नादिम के काव्य में भी राष्ट्रीय भावना की अभिव्यक्ति मिलती है। जहाँ तक गद्य का प्रश्न है कश्मीरी भाषा में गद्य का विकास स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद ही हुआ।

बोध प्रश्न–3

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर संक्षेप में दें।

1. तमिल भाषा के काव्य में राष्ट्रीयता का उद्‌घोश करने वाले प्रथम कवि का नाम बताइए।

   ....

   ....

   ....

   ....

2. तेलुगु भाषी जनता में नवजागरण का शंखनाद करने वाले प्रमुख साहित्य का नाम बताइए।

   ....

   ....

   ....

   ....

3. केरल के महान समाज सुधारक का नाम बताइए।

   ....

   ....

   ....

   ....

4. निम्नलिखित रचनाओं के लेखक एवं विधा का नाम बताइए।

	लेखक का नाम	विधा का नाम
क) कन्याशुल्कम्	....	....
ख) चेमलादुडि	....	....
ग) एन्टे गुरुनाथन	....	....
घ) साँवी पथरी जिंदगी	....	....

5. 'विवेकवर्धिनी' पत्रिका आरंभ किसने किया और क्यों किया?

....

....

....

....

अभ्यास –3

4) सुब्रह्मन्य भारती एवं कुमारन् आशान की कविता की विशेषताओं की तुलना कीजिए।

....

....

....

....

6.10 हिंदी का आधुनिक साहित्य

हिंदी के 19वीं शती के उत्तरार्द्ध के लेखकों पर बंगाल के नवजागरण का गहरा असर था। आधुनिक हिंदी साहित्य के जनक भारतेन्दु हरिश्चंद्र (1850–1885) का बंगाल के साथ बहुत निकट का संबंध था। उनकी ईश्वरचंद्र विद्यासागर जैसे समाज–सुधारकों से व्यक्तिगत संबंध था। भारतेन्दु ने कई बंगला कृतियों का हिंदी में अनुवाद भी किया। हिंदी पत्रकारिता का आरंभ भी कलकत्ता से हुआ। हिंदी का पहला पत्र 'उदंतमार्तंड' 30 मई 1826 को कलकत्ता से पं. जुगलकिशोर के संपादन में निकला। 1857 के पूर्व तक 'बंगदूत', 'प्रजामित्र', 'साम्यदंत मार्तंड' आदि पत्र प्रकाशित हो चुके थे। 1878 से प्रकाशित होने वाला 'भारत मित्र' भी आरंभ में कलकत्ता से ही निकलता था। 1899 से 1907 तक नौ साल तक इसका संपादन बाबू बालमुकुंद गुप्त ने किया। कलकत्ता से प्रकाशित होने वाले हिंदी पत्रों से कई लोगों को हिंदी में लिखने की प्रेरणा मिली।

हिंदी क्षेत्र में नवजागरण का महत्वपूर्ण कार्य स्वामी दयानंद सरस्वती (1824–1883) ने किया जिन पर धार्मिक पुनरूत्थानवाद का असर था। बंगाल और महाराष्ट्र में नवजागरण का नेतृत्व समाज सुधारकों, राष्ट्र नायकों ने किया जबकि हिंदी क्षेत्र में यह काम लेखकों को करना पड़ा, जिनके प्रभाव की सीमा थी। स्वामी दयानंद ने अपने विचारों के प्रचार के लिए जिस महत्वपूर्ण ग्रंथ 'सत्यार्थ प्रकाश' की रचना की, वह हिंदी में लिखा। स्वामी दयानंद ने समाज सुधार के साथ–साथ राष्ट्रीयता के विचारों का भी प्रचार किया।

हिंदी में नवजागरण का कार्य करने वालों में पं. श्रद्धाराम फिल्लौरी (1837–1881) का नाम भी महत्वपूर्ण है। फिल्लौरी जी ने व्याख्यान और कथाओं के माध्यम से अपने विचारों को जनता के बीच फैलाया। सनातनधर्मी होते हुए भी उन्होंने धर्म के बाह्यांडबरों, रूढ़ियों के विरुद्ध संघर्ष किया। वे बाल–विवाह के विरोधी थे तथा विधवा–विवाह के पक्षधर। विवाहादि में दहेज, आतिशबाजी आदि की फिजुलखर्ची को पसंद नहीं करते थे। इन्हीं समाज सुधार की बातों के लिए उन्होंने 1877 में 'भाग्यवती' नामक सामाजिक उपन्यास लिखा। यह हिंदी का प्रथम प्रकाशित मौलिक उपन्यास है। इसमें बाल–विवाह के विरोध के साथ–साथ विधवा–विवाह की आवश्यकता तथा विवाह में सादगी पर विशेष बल दिया गया है।

फिल्लौरीजी ने अन्य कई पुस्तकें लिखकर धर्म संबंधी अवैज्ञानिक और अतार्किक बातों का भी खंडन किया।

फिल्लौरी जी के अतिरिक्त नवीनचंद्र राय ने हिंदी के उत्थान और समाज सुधार संबंधी अनेक कार्य किये। पंजाब में स्त्री शिक्षा का प्रचार करने वालों में वह प्रमुख थे।

हिंदी साहित्य में नवजागरण और राष्ट्रीय चेतना की अभिव्यक्ति भारतेन्दु युग के साहित्य में ही होने लगी थी। भारतेन्दु जिन्हें आधुनिक हिंदी साहित्य का जनक कहा जाता है, ने न केवल साहित्य रचना द्वारा वरन् लेखकों को प्रोत्साहन द्वारा नये साहित्य के लेखन की दिशा में सक्रिय कर सके। भारतेन्दु के अतिरिक्त बालकृष्ण भट्ट, प्रतापनारायण मिश्र, प्रेमधन, राधाचरण गोस्वामी, राधाकृष्ण दास आदि प्रमुख हैं। भारतेन्दु ने 'कविवचन सुधा' 'हरिश्चंद्र चंद्रिका' और 'बालबोधिनी', बालकृष्ण भट्ट ने 'हिंदी प्रदीप' तथा प्रतापनारायण मिश्र ने 'ब्राह्मण' द्वारा नवजागरण की चेतना का प्रचार किया। भारतेन्दु युग के लेखकों ने मुख्य रूप से नाटकों और निबंधों की रचना की। पद्य के क्षेत्र में अभी भी मुख्य रूप से भक्तिपरक एवं श्रृंगारिक रचनाएँ ही ज्यादा हो रही थीं। भाषा के स्तर पर भी कविता में ब्रजभाषा और खड़ी बोली का विवाद चल रहा था। यद्यपि, ब्रज से खड़ी बोली में कविता का प्रस्थान निर्णायक ढंग से द्विवेदी युग में ही हुआ। परन्तु भारतेंदु युग की ब्रज भाषा कविता में नये राजनीतिक, सामाजिक विषय उठाये जाने लगे थे। भारतेंदु युग के साहित्य में आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक सभी पक्षों पर नये दृष्टिकोण से विचार हुआ है। आर्थिक जीवन में विदेशों में धन का जाना, महंगाई, अकाल, टैक्सों से देश की दुर्दशा का होना, धार्मिक क्षेत्र में मतमतांतर के झगड़े और धार्मिक अंधविश्वासों और रूढियों, सामाजिक क्षेत्र में जाति–पाति के टंटे, खान–पान के पचड़े बाल–विवाह का विरोध, विधवा–विवाह का समर्थन, स्त्री–शिक्षा का समर्थन, विदेश गमन का समर्थन, राजनीतिक क्षेत्र में स्वदेशीयता तथा देश भक्ति को अपने साहित्य का विषय बनाया। स्वदेशी के साथ स्वभाषा के लिए भी इस युग में संघर्ष हुआ।

राष्ट्रीयता की भावना को द्विवेदी युग (1900–1920) में और मजबूती मिली। काव्य के क्षेत्र में मैथिलीशरण गुप्त, अयोध्यासिंह हरिऔद्य, सियारामशरण गुप्त, रामनरेश पाठक, श्रीधर पाठक आदि ने राष्ट्रीयता की भावना को अभिव्यक्ति दी। मैथिलीशरण गुप्त का काव्य 'भारत–भारती' (1912) इस युग की प्रमुख रचना है जिसने राष्ट्रीय भावना को हिंदी भाषियों में फैलाया। महावीर प्रसाद द्विवेदी जिनके नाम से इस युग का नामकरण किया गया है, स्वयं कोई बड़े लेखक नहीं थे परंतु 'सरस्वती' पत्रिका के संपादक के रूप में उन्होंने लगभग दो दशकों तक हिंदी साहित्य और हिंदी भाषा को दिशा दी और उसे सजाने–संवारने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। द्विवेदी युग में ही कथा साहित्य की रचना आरंभ हुई। चंद्रधर शर्मा गुलेरी की प्रसिद्ध कहानी 'उसने कहा था' 1916 में प्रकाशित हुई थी। प्रेमचंद, विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक, सुदर्शन आदि लेखकों की कहानियों में सामाजिक समस्याओं को विषय बनाया गया। बालमुकुंद गुप्त इस दौर के एक अन्य महत्वपूर्ण लेखक थे जिन्होंने व्यंग्य निबंध में विशेष ख्याति अर्जित की। प्रेमचंद के उपन्यास 'वरदान', 'प्रेमा' और 'सेवासदन' में सामाजिक समस्याओं विशेषरूप से स्त्रियों की दीन–हीन दशा को चित्रित किया गया था।

1920 के बाद के दो दशक हिंदी साहित्य की उत्कर्षता का काल है। इसी युग में छायावाद के माध्यम से राष्ट्रीय–सांस्कृतिक चेतना को वाणी मिली। प्रसाद, निराला, पंत और महादेवी वर्मा ने स्वच्छंदतावादी काव्य दृष्टि अपनाकर भी राष्ट्रीयता, मानवतावाद और उत्पीड़ित जनता के प्रति गहरी सहानभूति को भी अपने काव्य में स्थान दिया। प्रकृति प्रेम उनकी

स्वातंत्र्य भावना की ही अभिव्यक्ति था। जयशंकर प्रसाद की 'कामायनी' इस युग का सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य है जबकि निराला की लंबी कविता 'राम की शक्ति पूजा' और खंड काव्य 'तुलसीदास' इस युग की अन्य महत्वपूर्ण काव्य रचनाएँ हैं।

प्रेमचंद का महान् कथा साहित्य भी इसी दौर में रचा गया। 'प्रेमाश्रय', 'रंगभूमि' 'कर्मभूमि', 'गबन', 'निर्मला' और 'गोदान' जैसे उपन्यासों द्वारा उन्होंने भारतीय किसानों की व्यथा–कथा नारी जाति के उत्पीड़न और शोषण तथा देश में व्यापक राष्ट्रीय आंदोलन की अनुगूंज सुन सकते हैं। 'गोदान' तो किसान जीवन का महाकाव्य कहा जा सकता है। इस दौर में निबंध और आलोचना के क्षेत्र में आचार्य रामचंद्र शुक्ल का भी महत्वपूर्ण योगदान है। मनोभावों पर लिखे निबंध बेकन के निबंधों की याद दिलाते हैं तो आलाचनो को मौलिक दिशा देने के लिए उनके कार्य भी मील का पत्थर माना जाता है। उनका लिखा 'हिंदी साहित्य का इतिहास' अब भी हिंदी का सर्वश्रेष्ठ 'इतिहास' है।

1930 के बाद हिंदी में एक ओर राष्ट्रीय भावनाओं की अभिव्यक्ति देने वाले कवि बालकृष्ण शर्मा नवीन, माखनलाल चतुर्वेदी, गयाप्रसाद शुक्ल सनेही, रामधारी सिंह दिनकर जैसे सामने आए तो दूसरी ओर भगवतीचरण वर्मा, हरिवंशराय बच्चन जैसे मस्ती और उल्लास का काव्य लिखने वाले कवि उभरे। परंतु इस दौर का सर्वाधिक महत्वपूर्ण साहित्य प्रगतिशील आंदोलन के प्रभाव में लिखा गया। 'प्रगतिशील लेखक संघ' जिसकी स्थापना 1936 में हुई थी और प्रेमचंद ने इसके पहले अधिवेशन की अध्यक्षता की थी, ने राष्ट्रीय भावना के साथ–साथ किसानों और मजदूरों के शोषण और दमन, साम्राज्यवाद विरोध युद्ध के खिलाफ और शांति के समर्थन में आवाज उठाने का आह्वान किया। नरेंद्र शर्मा, यशपाल, राहुल, उपेंद्रनाथ अश्क, शिवमंगल सिंह सुमन, शील, नागार्जुन, गजानन माधव मुक्तिबोध, केदारनाथ अग्रवाल, रामविलास शर्मा आदि प्रमुख प्रगतिशील साहित्यकारों में थे। हिंदी साहित्य में 1947 से पूर्व तक सामाजिक और राष्ट्रीय भावना को हमेशा प्रमुखता मिली। महावीर प्रसाद द्विवेदी और आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने साहित्यकारों के सामने यही आदर्श रखा कि साहित्य समाज का दर्पण है। समाज से कटकर साहित्य कभी फल–फूल नहीं सकता।

6.11 आधुनिक भारतीय साहित्य का ऐतिहासिक योगदान

महान् युग में ही महान् साहित्य का सृजन होता है। जिस समय देश में भक्ति आंदोलन चल रहा था, उस समय भक्ति साहित्य के रूप में जो साहित्य रचा गया वह भारतीय साहित्य के सर्वोत्तम का प्रतिनिधित्व करता है। इसी प्रकार 19वीं और 20वीं शताब्दी में जब समाज सुधार के आंदोलनों और स्वाधीनता संग्राम ने भारतीय जनता में नवजागरण की जिस नयी चेतना का संचार किया था उसने राजा राममोहन राय, ईश्वरचंद्र विद्यासागर, केशवचंद्र सेन, विवेकानंद, स्वामी दयानंद, महादेव गोविंद रानाडे, ज्योतिबा फुले, बाबा साहब अंबेडकर, सर सैय्यद अहमद, नारायण गुरु, वीरेशलिंगम जैसे महाने समाज सुधारक पैदा किये। गोपाल कृष्ण गोखले, दादा भाई नौरोजी, बाल गंगाधर तिलक, महात्मा गांधी, जवाहरलाल नेहरू, मौलाना आजाद, भगत सिंह, चंद्रशेखर आजाद, सुभाष चंद्र बोस, सीमांत गांधी जैसे राष्ट्र नेता और रवींद्रनाथ ठाकुर, बंकिमचंद्र, भारतेन्दु, प्रेमचंद, शरतचंद्र, हाली, नर्मद, वीरेशलिंगम, केशवसुत, सुब्रह्मण्य भारती, नजरूल इस्लाम, कुमारन् आशान, वल्लतोल, शिवराम कारंत, यशपाल, निराला, इकबाल, मंटो, फकीर मोहन सेनापति, तकषि शिवशंकर पिल्लै, बेंद्रे, श्री श्री जैसे महान् रचनाकार दिये।

यह एक राष्ट्रीय आंदोलन था। एक ओर इसने विदेशी दासता से मुक्ति के लिए आवाज उठाई। राजनीतिक दासता से लेकर धार्मिक, सामाजिक सांस्कृतिक सभी तरह की रूढ़ियों

THE PEOPLE'S UNIVERSITY

और बुराइयों से मुक्ति का अभियान भी चलाया। यह पहला आंदोलन था जिसने अपने केंद्र में मनुष्य को रखा, ईश्वर को नहीं। विवेक को रखा, धर्म को नहीं। अंधविश्वास की बजाए विज्ञानपरक सोच को महत्व दिया। अंग्रेजों के आर्थिक शोषण ने स्वदेशी की भावना का प्रसार किया। गरीबों की दयनीयता दशा तथा सोवियत क्रांति के प्रभाव ने समाजवाद के विचारों के लिए भी जमीन तैयार की। नवजागरण की चेतना ने मनुष्य–मनुष्य के बीच समानता के विचार को प्रचारित किया। जाति, धर्म और लिंग के आधार पर मनुष्य–मनुष्य के बीच किसी भी तरह के भेदभाव को पूरी तरह से ठुकरा दिया। यही कारण है कि इस दौर में जातिप्रथा पर प्रहार किया गया, सांप्रदायिक सद्भाव और हिंदू–मुस्लिम एकता की भावना का समर्थन किया गया और नारी के उत्पीड़न के हर रूप के विरुद्ध आवाज उठाई गई। सती प्रथा, बाल–विवाह, बहु–विवाह का विरोध किया गया, विधवा–विवाह का समर्थन किया गया। स्त्री शिक्षा के लिए स्कूल और कॉलेज खोले गये।

धार्मिक रूढ़ियों और अंधविश्वासों के विरुद्ध भी आवाज उठाई गई। साहित्य ने स्वतंत्रता, समानता और मानवता की भावना को अपना मूलमंत्र बनाया। सामाजिक समस्याओं को उपन्यासों, कहानियों, नाटकों का विषय बनाया गया। किसानों, दलितों, निम्नवर्ग के लोगों के कठोर जीवन के यथार्थ चित्र प्रस्तुत किये गये। 1947 से पूर्व के साहित्यकारों ने यह समझ लिया था कि समानता पर आधारित समाज की स्थापना तभी हो सकती है जब समाज का पूरा ढाँचा नहीं बदलता। केवल राजनीतिक मुक्ति ही पर्याप्त नहीं है जब तक कि जीवन के हर क्षेत्र में अन्याय और असमानता को खत्म कर समानता और न्याय पर आधारित व्यवस्था कायम हो। इस दौर में भाषा के क्षेत्र में लोकतांत्रिक भावना का प्रवेश हुआ। लगभग सभी क्षेत्रों में भारतीय भाषाओं के उत्थान की भावना जागृत हुई। नव शिक्षित वर्ग ने आरंभ में पत्रकारिता और शिक्षा के क्षेत्र में भारतीय भाषाओं का प्रयोग किया। बाद में साहित्य सर्जन के लिए इन भाषाओं का उपयोग हुआ। ज्ञान–विज्ञान के क्षेत्र में अंग्रेजी पुस्तकों का अनुवाद किया गया, नयी पुस्तकें लिखी गईं। नये विषयों के अनुरूप नये शब्द गढ़े गये। शब्दकोश और व्याकरण तैयार किये गये। नयी आवश्यकता के अनुरूप भाषाओं को नया स्वरूप प्रदान किया गया।

इस दौर का साहित्य केवल विषयवस्तु की दृष्टि से ही उच्चकोटि का नहीं था केवल पचास–साठ वर्षों में ही भारतीय साहित्य ने भाषा और शैली की दृष्टि से भी नये–नये प्रयोग हुए और कलात्मक उत्कर्षता की दृष्टि से 1910–20 में ही भारतीय भाषाओं में विश्व स्तर का साहित्य रचा जाने लगा था। रवींद्रनाथ ठाकुर को 'गीतांजली' पर नोबेल पुरस्कार 1913 में ही मिल गया था। रवींद्रनाथ का ही उपन्यास 'गौरा', प्रेमचंद का 'गोदान', ब.व. कारंत का – 'चोमन दुडि', 'तकषि शिवशंकर पिल्लै का 'चेम्मीन', शरतचंद्र का 'श्रीकांत' विश्व के श्रेष्ठतम उपन्यासों में गिने जा सकते हैं। कहानी के क्षेत्र में प्रेमचंद, रवींद्रनाथ ठाकुर, मंटो, वि.स. खांडेकर, मास्ति वेंकटेश आयंगार ने विश्व स्तर की कहानियाँ लिखीं। कविता के क्षेत्र में इकबाल, रवींद्रनाथ ठाकुर, निराला, फैज, कुमारन् आशान, श्री श्री, सुब्रहमन्य भारती वल्लतोल, नजरूल इस्लाम ने कविता को सर्वोच्च शिखर तक पहुंचाया। उन्होंने कविता को प्राचीन रूढ़बद्ध भाषा से ही मुक्त नहीं किया, छंद के बंध से मुक्त कर उसे नये प्रयोगों के लिए तैयार किया।

इस प्रकार नवजागरण और राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन से प्रेरित और प्रभावित इस साहित्य ने हमारे समय की जनता की इच्छाओं और अकांक्षाओं को कलात्मक उत्कर्षता के साथ प्रस्तुत किया।

बोध प्रश्न –4

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर संक्षेप में दें।

1. हिंदी का पहला पत्र कब प्रकाशित हुआ? कहाँ से प्रकाशित हुआ और इसके संपादक कौन थे? पत्र का नाम भी बताइए।

   ....

   ....

   ....

   ....

2. छायावाद की दो प्रमुख रचनाओं और उनके रचनाकारों के नाम लिखिए।

   ....

   ....

   ....

   ....

3. प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना कब हुई और उसका पहला सम्मेलन कहाँ हुआ?

   ....

   ....

   ....

   ....

अभ्यास

5) भारतेन्दु युग के साहित्य के महत्व पर प्रकाश डालिए।

   ....

   ....

   ....

   ....

6) भारतीय भाषाओं के विकास की दृष्टि से इस दौर के महत्व को रेखांकित कीजिए।

   ....

   ....

   ....

   ....

6.12 सारांश

- भारतीय साहित्य में नवजागरण और राष्ट्रीय चेतना की अभिव्यक्ति नामक इस इकाई में आधुनिक भारतीय साहित्य की पृष्ठभूमि का परिचय दिया गया। बताया गया है कि

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

आधुनिक साहित्य के उदय से पूर्व भारतीय भाषाओं में किस तरह का साहित्य लिखा जा रहा था। आधुनिक साहित्य के उदय के कारण क्या थे।

- आधुनिक भारतीय भाषाओं के विकास पर भी इकाई में परिचय दिया गया है। भारतीय भाषाओं के विकास, उनके पारस्परिक संबंध, लिपियों के विकास आदि का परिचय दिया गया है।
- नवजागरण और राष्ट्रीय आंदोलन के आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक सांस्कृतिक एवं धार्मिक पक्षों में हुई उथल–पुथल एवं नये विचारों और मूल्यों का परिचय दिया गया है जिसकी अभिव्यक्ति उस दौर के साहित्य में मिलती है।
- आधुनिक भारतीय साहित्य के उदय के मुख्य कारक कौन–कौन से हैं। पत्रकारिता, शिक्षा गद्य लेखन तथा साहित्य की नयी विधाओं के उदय के आरंभिक प्रयासों का परिचय इकाई में दिया गया है। कविता के क्षेत्र में विषय और शैलीगत परिवर्तनों का भी महत्व बताया गया है।
- इकाई में प्रायः सभी प्रमुख भारतीय भाषाओं में 19वीं–20वीं शती में लिखे गये आधुनिक साहित्य की संक्षिप्त रूपरेखा प्रस्तुत की गई है। पूर्व की भाषाओं में बंगला, असमिया और उड़िया, पश्चिम की मराठी और गुजराती, दक्षिण की कन्नड़, तमिल, तेलुगु और मलयालम तथा उत्तर की सिंधी, पंजाबी, उर्दू, कश्मीरी और हिंदी साहित्य का परिचय और उनमें अभिव्यक्त राष्ट्रीय भावना और नवजागरण की चेतना का उल्लेख किया गया है। इन सभी भाषाओं के प्रमुख लेखकों, कृतियों, पत्रिकाओं का भी यथास्थान उल्लेख किया गया है।
- इकाई के अंत में इस दौर के साहित्य के ऐतिहासिक महत्व पर प्रकाश डाला गया है और बताया है कि इस दौर के साहित्य ने किस तरह जनता में राष्ट्रीय भावना, समाज सुधार और आधुनिकता की चेतना को प्रसारित करने में मदद की है। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप आधुनिक भारतीय साहित्य में राष्ट्रीय चेतना और नवजागरण की भावना को शब्दबद्ध कर सकेंगे।

6.13 कुछ उपयोगी पुस्तकें

- आज का भारतीय साहित्य (संपादित) : राजपाल एंड संस, दिल्ली, सप्तम संस्करण, सितंबर 1988।
- भारतीय भाषाओं के साहित्य का संक्षिप्त इतिहास (संपादित), केंद्रीय हिंदी निदेशालय, शिक्षा तथा समाज कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार, नयी दिल्ली।
- विश्वनाथ वरवणे : आधुनिक भारतीय चिंतन, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।
- पी.के. परमेश्वरन् नायर : मलयालम साहित्य का इतिहास, साहित्य अकादमी, नयी दिल्ली।
- रं.श्री. मगलि : कन्नड़ साहित्य का इतिहास, साहित्य अकादमी नयी दिल्ली।

6.14 बोध प्रश्नों / अभ्यासों के उत्तर

बोध प्रश्न–1

1) घ)

2) ग)

3) क) सामंतवाद ख) साम्राज्यवाद

बोध प्रश्न–2

1) 19वीं सदी के मध्य से

2) गद्य की विधाओं, विशेष रूप से कहानी, उपन्यास, निबंध, रेखाचित्र, संस्मरण, जीवनी, आत्मकथा एवं आलोचना का लेखा आरंभ हुआ।

3.

	लेखक	विधा
1.	दीनबंधु	गुप्तनाटक
2.	रवींद्रनाथ	ठाकुरउपन्यास
3.	दिवाकर	कृष्णकहानी
4.	गोवर्धनराम त्रिपाठी	उपन्यास
5.	माइकेल मधुसूदन दत्त	काव्य

बोध प्रश्न–3

1. क) सुब्रह्मण्य भारती

   ख) वीरेशलिंगम्

   ग) नारायण गुरु

2.

	लेखक	विधा
क)	गुरजाड अप्पराव	नाटक
ख)	शिवराम कारंत	उपन्यास
ग)	वल्लतोल	कविता
घ)	गुरूबख्श सिंह	निबंध

3. वीरेशलिंगम ने समाज सुधार की भावना का प्रचार करने और तेलुगु भाषा और साहित्य का संवर्धन करने के लिए किया।

बोध प्रश्न–4

1) 'उदंत मार्तण्ड' हिंदी का पहला पत्र था जिसका प्रकाशन कलकत्ता से 1826 में हुआ। इसके संपादक पं. जुगल किशोर थे।

2) क) कामायनी–जयशंकर प्रसाद

   ख) राम की शक्ति पूजा–निराला

3) 1836 में, लखनऊ में हुआ।

अभ्यास

1) अंग्रेजों के शासन काल में भारत का धन विदेश जाने लगा। यहाँ के परंपरागत उद्योग–धंधे नष्ट कर दिये गये। किसानों से जबर्दस्ती वे फसलें उगाई गई जिनसे अंग्रेजों को लाभ था। उद्योगों के नष्ट होने से मजदूर बेकार हो गये। देश की दुरवस्था से किसानों की दशा बिगड़ने लगी। दूसरी ओर ब्रिटेन की उन्नति भी शिक्षित वर्ग के सामने थी। इन परिस्थितियों ने देशवासियों में इस भावना को बल पहुंचाया कि स्वदेशीयता और स्वावलंबन से ही हम विदेशी शोषण से मुक्त हो सकते हैं। राष्ट्रीय भावना का यह आधार बना।

2) सामाजिक और धार्मिक रूढ़ियों में जकड़े हुए लोगों में इस भावना का संचार नहीं किया जा सकता था कि स्वाधीनता क्यों आवश्यक है। जो लोग स्वयं अपने ही लोगों द्वारा उत्पीड़ित और प्रताड़ित हैं उन्हें विदेशी दासता से मुक्ति की आवश्यकता कैसे समझाई जा सकती है। भाग्यवाद और धार्मिक अंधविश्वासों में जकड़े हुए व्यक्ति में राष्ट्रीय भावना को नहीं भरा जा सकता। इसलिए यह आवश्यक था कि अधिक–से–अधिक लोगों को स्वाधीनता आंदोलन में शामिल करने के लिए उनमें अपने ही भाइयों–बहिनों के प्रति समानता का भाव जाग्रत करें और उन्हें विवकेशील बनाएँ ताकि वे स्वाधीनता में देश की ओर स्वयं अपनी उन्नति को समझ सकें।

3) देखिए उपभाग 6.6.1

4) स्वयं प्रयत्न कीजिए।

5) देखिए भाग 6.10 का भारतेंदु युग से संबंधित अंश।

6) देखिए भाग 6.11

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 7 राष्ट्रीयता के विकास में आधुनिक भारतीय साहित्य का योगदान

इकाई की रूपरेखा

7.0 उद्‌देश्य

7.1 प्रस्तावना

7.2 आधुनिक भारतीय साहित्य और समाज का संबंध

7.3 भारतीय साहित्य की राष्ट्रीय–सांस्कृतिक मनोभूमिका

7.4 भारतीय साहित्य के नवजागरणवादी बोध का स्थायी भाव : राष्ट्रीयता

7.5 राष्ट्रीय मुक्ति चेतना की सर्जनात्मक अभिव्यक्ति

- 7.5.1 भारतीय भाषाओं में पत्रकारिता का उदय
- 7.5.2 नाटक
- 7.5.3 कथा साहित्य
- 7.5.4 कविता
- 7.5.5 गद्य : जीवनी, आत्मकथा, निबंध

7.6 आधुनिक भारतीय साहित्य में व्यक्त राष्ट्रीयता का स्वरूप

- 7.6.1 राष्ट्रीय–सांस्कृतिक अस्मिता के प्रति नया दृष्टिकोण
- 7.6.2 पराधीनता और दमन के प्रति विद्रोही स्वर
- 7.6.3 जनक्रांति का हिंसक–अहिंसक रूप–रंग
- 7.6.4 प्रकृति–प्रेम के माध्यम से राष्ट्रीयता की अभिव्यक्ति
- 7.6.5 भविष्य के प्रति आस्था और उल्लास की अभिव्यक्ति
- 7.6.6 देशभक्ति और जनजागरण का प्रकाश

7.7 सारांश

7.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

7.9 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

7.0 उद्‌देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- आधुनिक भारतीय साहित्य और समाज का संबंध बता सकेंगी/ सकेंगे;
- भारतीय साहित्य की राष्ट्रीय–सांस्कृतिक मनोभूमिका का उल्लेख कर सकेंगी/ सकेंगे;
- भारतीय साहित्य में व्यंजित नवजागरण और भारतीय परिदृश्य का विवरण सकेंगी/ सकेंगे; और
- साहित्य की विभिन्न विधाओं में इस परिदृश्य का स्वरूप विश्लेषित कर सकेंगी/ सकेंगे।

7.1 प्रस्तावना

इस इकाई में हम आपको बताएंगे कि राष्ट्रीयता के विकास और जागरण सुधार में भारतीय साहित्य ने किस रूप में योगदान दिया। इस इकाई में आपको साहित्य की राष्ट्रीय–सामाजिक भूमिका की जानकारी मिलेगी।

7.2 आधुनिक भारतीय साहित्य और समाज का संबंध

साहित्य अपने समाज का दर्पण होता है। किसी समाज की संस्कृति, आचार–विचार, जीवन–व्यवहार की पद्धतियाँ, आशाएं, आकांक्षाएं, पूर्वग्रह, अभिरुचियां, हर्ष, विषाद, उल्लास आदि सभी कुछ उसके साहित्य में अभिव्यक्त होता है। हाँ, इस अभिव्यक्ति का स्वरूप और परिणाम भिन्न होता है। किसी समय विशेष में किसी समाज के साहित्य में किन्हीं विशिष्ट प्रवृत्तियों और अभिरुचियों की प्रधानता होती है तो दूसरे समय विशेष में किन्हीं अन्य प्रवृत्तियों और अभिरूचियों की। इस भिन्नता के लिए भी काफी हद तक सामाजिक परिवेश जिम्मेदार होता है। हिंदी साहित्य के आदिकाल में वीर काव्यों की प्रधानता तथा मध्यकाल में भक्ति काव्य की प्रधानता इसी परिवेशगत अंतर का परिणाम है। साहित्य और समाज के ऐसे संबंध के आधार पर ही आचार्य रामचंद्र शुक्ल साहित्य को किसी भी देश की 'जनता की संचित चित्तवृत्तियों का प्रतिफलन' मानते हैं।

साहित्य और समाज के इस अन्योन्याश्रित संबंध के भीतर भी कुछ दौर ऐसे होते हैं जब साहित्यकार अपने परिवेश के प्रति, अपने आसपास की स्थितियों और लोगों के प्रति न केवल ज्यादा संवेदनशील और जागरूक होता है बल्कि उनके प्रति अपने दायित्व के निर्वाह में ज्यादा सजग और जिम्मेदार होता है। वह साहित्य को समाज के जागरण, सुधार, विकास और संघर्ष के लिए औजार के रूप में इस्तेमाल करना चाहता है। मध्यकाल में कबीर ऐसे ही साहित्यकार हुए थे। आधुनिक भारतीय साहित्यकारों की विशेषता यह रही है कि ये न केवल अपने दायित्व के प्रति बहुत सजग हैं बल्कि साहित्य के माध्यम से सामाजिक परिवर्तन के लिए छटपटा रहे हैं।

नवजागरण ने भारतीय जन–मानस में जिस मुक्ति की आकांक्षा का संचार किया, उसे साहित्यकार न केवल अपनी रचना के माध्यम से अभिव्यक्त करता है बल्कि अपनी रचना के द्वारा वह जनजागरण का परिवेश तैयार करता है, जनता को उसकी गुलामी, बदहाली और बेबसी के कारणों का ध्यान दिलाता है, और उस हालत से निकलने और सुधरने का रास्ता बताता है। उसकी कमजोरियों, कुरीतियों और सीमाओं से बाहर निकलने को प्रेरित करता है।

इस तरह आधुनिक युग का साहित्यकार आश्रयदाताओं का मनोरंजन अथवा भोगविलास मात्र करके संतुष्ट नहीं हो जाता। वह समाज का नेतृत्व ग्रहण करता है। इस देश के करोड़ों निवासियों की गरीबी, भूख, पीड़ा को महसूस करता है और उससे उबरने में उसका सहभागी बनता है। इसके लिए वह देश की सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक परिस्थितियों को समझने का प्रयास करता है। उनके भीतर व्याप्त खामियों पर निगाह डालता है और इन खामियों को दूर करने का रास्ता खोजता है। उन्हें उस रास्ते पर लाने की युक्ति निकालता है।

इस तरह इस काल में साहित्यकार को अपने दायित्व का पूरा बोध है, यह उसका भरपूर निर्वाह करने को तत्पर है। वह समझ गया है कि इस देश के दारिद्रय का सबसे बड़ा कारण

है पराधीनता। पराधीनता से मुक्ति साहित्यकार का लक्ष्य बन जाता है और रचनाकार आजादी की लड़ाई में सक्रिय ऐसे सेनानी के रूप में उभरकर जाता है जो अपने आसपास के, अपनी भाषायी और साहित्यिक पहुँच के सारे जन समाज को अपने साथ लेकर चलता है। इसके लिए वह व्यापक और समग्र राष्ट्रीय चेतना का निर्माण करता है। इस चेतना के विकास में कारगर भूमिका अदा करता है। राष्ट्रीय चेतना का विकास साहित्यकार किस ढंग से करता है, इसकी चर्चा हम आगे करेंगे।

7.3 भारतीय साहित्य की राष्ट्रीय–सांस्कृतिक मनोभूमिका

दरअसल भारतीय साहित्य की प्रबल प्रवृत्तियों में अत्यंत प्रबल प्रवृत्ति है राष्ट्रीयता की अनेकोन्मुखी अभिव्यक्ति। इस दृष्टि से राष्ट्रीयता एक अर्थवान एवं प्रासंगिक अवधारणा के रूप में उभरती है। इस राष्ट्रीयता के अंतर्गत भारत ने नवीन स्वत्व की धारणा भारतेंदु के शब्दों में 'स्वत्व निज भारत गहै' के उद्घोष में मुखर हो जाता है और यह राष्ट्रीयता ब्रिटिश साम्राज्यवाद द्वारा स्थापित पराधीनता से मुक्ति पाने की भावना का पर्याय बन जाती है। इसके अंतर्गत भारत अपनी राष्ट्रीय–सांस्कृतिक परंपराओं के साथ उठ खड़ा होता है और जन–मानस में मातृभूमि, देशभक्ति और राष्ट्रीयता की भावना का उदय होता है। ध्यान देने की बात यह है कि हमारा राष्ट्रवाद पश्चिम के राष्ट्रवाद की अवधारणा से एकदम अलग है पश्चिम का राष्ट्रवाद अपनी अंतिम परिणति में नाजीवादी, फासिस्टवादी, अधिनायकवादी शक्ल अख्तियार कर लेता है किंतु भारतीय राष्ट्रवाद इन पश्चिमी धारणाओं के नजदीक तक नहीं फटकता। भारतीय राष्ट्रवाद का चेहरा मानववाद और मानवतावाद का पर्याय हो जाता है, जिसमें अन्याय, शोषण और उत्पीड़न के विरूद्ध विद्रोह का स्वर है। ध्यातव्य है कि हमारे राष्ट्रवाद की मूल प्रेरणा संत परंपराओं से फूटती है जिसमें सम्प्रदायवादी–क्षेत्रीयतावादी मानसिकता ही राष्ट्रीयता के रूप में सामने आती है। इसलिए इस राष्ट्रीयता का स्वरूप देशभक्ति की व्यापक भावना में निखरता है और यह देशभक्ति उस विश्वदृष्टि को सहेजती है जो मनुष्य मात्र के कल्याण की भावना से अपनी दिशा निर्धारित करती है। संत जागरण की परंपरा आधुनिक काल में उस मानव को केंद्र में लाती है जो संकुचित विचारों का हर कोण से प्रतिवाद करती है। इसीलिए इसमें हमारी राष्ट्रीयता–सांस्कृतिक और जातीय अस्मिता नई अर्थच्छवियों के साथ उभरती है। यही अर्थच्छवियाँ हिंदी साहित्य के प्रवर्तक भारतेंदु, बालकृष्ण भट्ट, बंगला के माइकेल मधुसूदन दत्त, ईश्वरचंद्र विद्यासागर, बकिमचंद्र चटर्जी, द्विजेन्द्रलाल राय, गिरीशचंद्र घोष, रवींद्रनाथ ठाकुर, असमिया में लक्ष्मीनाथ बेजबरूआ, हेमचंद गोस्वामी, सत्यनाथ बरा, उड़िया में फकीर मोहन सेनापति, राधानाथ राय, मधुसूदन, मराठी में केशवसुत नारायण वामन, तिलक, विनायक, गोविंदागज, गुजराती में दुर्गाराय मेहता, दलराम ढाया भाई, नर्मदाशंकर, गोवर्धन राम त्रिपाठी, उमाशंकर जोशी, तमिल साहित्य में सुब्रह्मण्यम भारती, वेद नायकम पिल्ले, नामाक्कल रामलिंगम पिल्लै, भारतीदासन, कल्कि, तेलुगु साहित्य में वीरेश लिंगम, गुरजाड अप्पाराव, वेंद्र वेंकटराम शास्त्री, रामचंद्रालु कन्नड़ में मास्ति वेंकटेश आयंगर, डी.वी.गुंडप्पा, रामचंद्र बेद्रे, मलयालम में नारायण गुरू, केरल वर्मा राजराज वर्मा, कुमारन आशान, उर्दू में हाली, मौलाना शिवली, नजीर, गालिब, बिलगिरामी, सिंधी में मास्टर किशनचंद हिरदिलगीर, पंजाबी में भाई वीर सिंह, मोहन सिंह, कश्मीरी में गुलाम अहमद महजूद, दीनानाथ कादिम, मिर्जा गुलाम हसन आदि उल्लेखनीय नामों में देखी जा सकती है।

भारतीय साहित्य की उन्नीसवीं शताब्दी नवजागरण की विशिष्ट शक्तियाँ लेकर आती है। बंकिम का उपन्यास 'आनंदमठ', रवींद्रनाथ का उपन्यास 'गोरा' नवजागरण युग की संपूर्ण चेतना का प्रतिनिधित्व करता है। फकीर मोहन सेनापति ने 'रामायण' और 'महाभारत' के

अनुवाद से एक नवीन चेतना का निर्माण किया और उस परंपरा पर ध्यान दिलाया जिसमें हमारी संपूर्ण जातीय अस्मिता के प्रेरणा–स्रोत निहित हैं। मराठी में बी.पी किर्लोस्कर, गोविंदवल्लभ देवल, श्रीपाद कोल्हटकर, कृष्णजी प्रभाकर खांडिलकर, कानिटकर नरसिंह चिंतामणि केलकर ने मराठी नाटक और रंगमंच की परंपरा को देशभक्ति के भावों की ओर उन्मुख किया। हरिनारायण आप्टे और वामन मल्हार जोशी, मामा वरेरकर, सीताराम फड़के, विष्णु सखाराम खांडेकर के कथा साहित्य ने सामाजिक सुधार आंदोलनों से प्रेरणा लेकर ऐसी विचारभूमि निर्मित्त की जो पराधीनता के विरूद्ध आवाज उठाती है। नर्मदाशंकर ने गुजराती में दादाभाई नौरोजी से प्रेरणा लेकर देशभक्ति की भावना को आगे बढ़ाया। तिलक, गाँधी और गोखले के विचारसूत्र भारतीय साहित्य में बिंधते गए। कहना न होगा कि भारतीय साहित्य पर तिलक के 'गीता भाष्य' या कर्मयोगशास्त्र ने गहरा प्रभाव डाला। आर्यसमाज आंदोलन प्रार्थना समाज और ब्रह्म समाज की अवधारणाएं उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध और बीसवीं शताब्दी के प्रथम तीन दशकों की साहित्य विधाओं में अनेक रूपों में अभिव्यक्त हुई। आधुनिक भारतीय सांस्कृतिक साहित्य ने जिस क्रांतिधर्मी मुद्रा का विस्फोट किया है उसके मूल में दो प्रबल संस्कृतियों की टकराहट देखी जा सकती है। ब्रिटिश साम्राज्यवाद के प्रवक्ता यह घोषणा करते थे कि भारत के पास एक शानदार अतीत तो है लेकिन उनका वर्तमान निराशाजनक है। भारत के वर्तमान को बनाने का दम्भ विजेता जाति दोहराती थी और इसका अर्थ भारतीय समाज सुधारक नेता और रचनाकार अच्छी तरह समझते थे कि परंपरागत भारतीय समाज के आधुनिकीकरण का अर्थ है भारतीय समाज को उसके परंपरगत स्रोतों से विच्छिन्न करते हुए भारतीय समाज का पश्चिमीकरण। पश्चिमीकरण की इस प्रक्रिया में राजाराम मोहन राय और केशवचंद्र सेन ने तो योगदान दिया किंतु दादाभाई नौरोजी, तिलक, लाजपतराय, गोखले, अरविंद घोष, विवेकानंद और गांधी पश्चिमीकरण के खिलाफ विद्रोही तेवर अपनाते हैं। विजेता जाति किसी भी देश की ऐतिहासिक स्मृति को कैसे भ्रष्ट करती है और करना चाहती है इस बात को भारतेंदु हरिश्चंद्र, भाई वीर सिंह, नर्मदा शंकर और रवींद्रनाथ आदि हमारे नवजागरण के रचनाकार अच्छी तरह समझते हैं। अंग्रेजों ने जो लूट तंत्र देश में स्थापित किया, उसके विरूद्ध भारतेंदु के कथन एक प्रकार से संपूर्ण देश की व्यथा कथा के प्रतीक हैं :

1. अंग्रेज राज सुखसाज सजै अति भारी
   पै स्वधन विदेश चलि जाति इहै अति ख्वारी।

2. अंधाधुंध मची चहुँ देशान मानहु राजा रहत विदेशा

इस काल के सभी रचनाकारों ने पूरे देश को 'अंधेर नगरी' घोषित किया और भारत दुर्दशा के बिंब साहित्य के अनेक रूपों में प्रस्तुत किए। भारतेंदु हरिश्चंद्र का निम्नलिखित कथन विदेशी लूटतंत्र की पूरी स्थिति–परिस्थिति को सामने लाता है –

कहाँ करूणानिधि केशव सोये
जागत नाहिं अनेक जतन करै भारतवासी रोएं

यहाँ पर भारतवासियों का रोना सामान्य कवि कथन न होकर उस विशेष अर्थ की प्रतिध्वनि है जिस त्रासदी से पूरा का पूरा देश तबाही और अपमान भोग रहा है। इस स्थिति से उबरने के लिए भारतीय साहित्य के रचनाकारों ने स्वदेशाभिमान, स्वभाषाभिमान, स्वदेशी गौरव, मातृभूमि वंदना और बड़े–बड़े पौराणिक तथा प्राकृतिक प्रतीकों को अपनी सर्जना के केंद्र में रखा। 'आनंद मठ का गीत 'बंदे मातरम' एक प्रकार से संपूर्ण भारतीय मानसिकता का प्रतीक है। यह इतना बड़ा प्रतीक गीत है कि अरविंद ने इस प्रेरणा को आगे बढ़ाते हुए 'बंदे मातरम' नामक पत्र निकाला।

तूफानों से खेलने की तमन्ना राष्ट्रीयपरक साहित्य की मनोभूमिका में सर्वत्र उमड़ती–घुमड़ती मिलती है। पराधीनता की बेड़ियों को तोड़ने का प्रथम जन संग्राम था 1857 का विद्रोह। इस स्वाधीनता संग्राम में राजा और रंक, हिंदू और मुसलमान, मराठी–हिंदी भाषी, उत्तरी और दक्खिनी कंधे से कंधा मिलाकर लड़े। सुभद्रा कुमारी चौहान का यह कथन भारतीय जनमानस का पर्याय बिंब है –

'महलों ने दी आग झोंपड़ी ने ज्वाला सुलगाई थी
यह स्वतंत्रता की चिनगारी अंतरतम से आई थी।'

भारतीय रजवाड़ों के छोटे–छोटे सामंत एक झंडे के नीचे आकर युद्ध की आग में कूदे। इस युद्ध का पूरा चरित्र साम्राज्यवाद विरोधी, सामंतवाद–विरोधी और देशभक्ति की भावना से परिपूर्ण है। एक ऐसी देशभक्ति जिसमें जाति–धर्म के मतभेदों को भुलाकर जातीय अस्मिता के लिए युद्ध किया गया। इस स्वाधीनता संग्राम का नेतृत्व फौजी वर्दी में किसानों–मजदूरों ने किया और देशी राजाओं तथा नवाबों ने जनता का सहयोग किया। अंग्रेजों ने हर संभव प्रयास किया कि हिंदू–मुस्लिम सम्प्रदायवाद उभरे. पर उन्हें सफलता नहीं मिली। ब्रिटिश साम्राज्यवाद भेदभाव की जिस नीति से इस देश को शासित कर रहा था उसकी यह सबसे बड़ी पराजय थी। सच्चे अर्थों में यह स्वाधीनता संग्राम भारतीय जनता का जातीय संग्राम था। 1857 की क्रांति को लेकर सभी भारतीय भाषाओं में अनगिनत लोकगीतों की रचना हुई और इन सभी का मूल स्वर यही है–

'कठिन सिपाई द्रोह अनल जा जलबल नासी
ता भय सिर न उठाय सकत कहँ भारतवासी'

ब्रिटिश साम्राज्यवादी शासन की बर्बरता के चित्र पूरे भारतीय साहित्य में भरे पड़े हैं। ये चित्र देश को लूटने–उजाड़ने वाली उपनिवेशवादी शक्तियों के सीधे चित्र हैं। अपने परिमार्जित और कलात्मक रूप में यही अभिव्यक्ति केशवसुत, भारतेंदु, नर्मदाशंकर, सुब्रह्मण्यम भारती, भाई वीर सिंह आदि के सृजन में दृष्टिगत होती है।

7.4 भारतीय साहित्य के नवजागरणवादी बोध का स्थायी भाव : राष्ट्रीयता

आधुनिक काल के भारतीय नवजागरण में भारतीय साहित्य में राष्ट्रीय–सांस्कृतिक रूप में अभिव्यक्ति पाई है क्योंकि राष्ट्रीय–सांस्कृतिक अस्मिता को बचाने की चिंता ही हमें खाए जा रही थी। भीतर से हम आंदोलित और उन्मथित थे। एशिया का नवजागरण हमें प्रेरित करता था। बीसवीं शताब्दी में आधुनिक सांस्कृतिकरण, राजनीतिकरण, आर्थिकीकरण, सामाजिकीकरण, के जो अनेक आंदोलन चले हैं वे अकारण नहीं हैं। उनके पीछे कार्य–कारण परंपरा से जुड़ी हुई एक दृष्टि है। जीवन दृष्टि की यही चेतना राष्ट्रीयता या आधुनिक भावबोध का निर्माण करती है। इनमें मध्ययुगीन जीवन मूल्यों और दृष्टियों का पूरी तरह निशेध नहीं है क्योंकि कहीं न कहीं नरसी मेहता, नारायण हरि, तुकाराम, ज्ञानदेव, कबीर, चैतन्य महाप्रभु, बल्लभाचार्य और रामानंद की चिंतन परंपरा धड़कती है। इस संत चेतना के स्वर ने पराधीन भारत में अपनी परंपरा और संस्कृति पर पुनर्विचार, पुनर्व्याख्या और पुनर्मूल्यांकन के लिए हमें प्रेरित किया। फलतः हमने अपनी चिंतन परंपराओं को समझने के लिए अतीत को छानना–बीनना शुरू किया। इस सांस्कृतिक छानबीन में हमने पाया कि हमारी सांस्कृतिक एकता और राष्ट्रीयता के आधार को इतिहास ही नहीं भूगोल में भी तय करना है। कृष्ण–राम–शिव की एकता से कम महत्वपूर्ण तथ्य गंगा–यमुना–कृष्णा–कावेरी

की धुरी नहीं है। कृष्णा–कावेरी घाटी में इस देश के अनेक विचार आंदोलन पनपे और घनीभूत हुए। इस देश के राजाओं में यह विश्वास बराबर मौजूद रहा कि राजलक्ष्मी कायम तभी रह सकती है जब वे कृष्णा–कावेरी धुरी को अपने पौरूश से कायम कर लेने में सक्षम हो। इसलिए हमारी संस्कृति में देशभक्ति का यह आयाम यशोगान के स्वर में निरंतर कायम रहा। बीसवीं शताब्दी के दशकों में पूरे देश में आदर्शमूलक राम, कृष्ण, शिव, गंगा, हिमालय प्रधान कविताएं लिखी गई। मैथिलीशरण गुप्त, अयोध्या सिंह उपाध्याय हरिऔध, माखनलाल चतुर्वेदी, बालकृष्ण शर्मा नवीन, रामधारी सिंह दिनकर आदि ने हिंदी में जिस राष्ट्रीय साहित्य की अवधारणा को भारतीय साहित्य में पुष्ट किया उसमें राष्ट्रीयता से ज्यादा भारतीयता है और भारतीयता से ज्यादा राष्ट्रीयता। ऐसी स्थिति के कारण राष्ट्रीयता से भारतीयता को, भारतीयता से राष्ट्रीयता को अलग कर पाना शिव की जटाओं को सुलझाना है। अलगाने की कोशिश में प्रायः एहसास यही होता है कि भारतीय साहित्य की भारतीयता में राष्ट्रीयता ही वह स्थायी भाव है जो अपने सांस्कृतिक बोध के स्तर पर एक विशेष स्वाद देता है। सुब्रह्मण्यम भारती और मैथिलीशरण गुप्त उमाशंकर जोशी और पुट्टप्पा अलग–अलग भाषाओं में लिख जरूर रहे थे लेकिन उनकी कविता का राष्ट्रीय–सांस्कृतिक बिंब एक है। यह कहना ज्यादा सही होगा कि सोलह–सत्रह भारतीय भाषाएं मिलकर एक ऐसे राष्ट्रीय साहित्य के भीतर से निर्मित राष्ट्रीयता का समग्र बिंब प्रस्तुत करते हैं जिसमें अखंड राष्ट्र का जागृत नाद अपनी विविधताओं को लिए हुए दमक रहा है। ऊपर से देखने पर ऐसा लगता है कि राष्ट्रीयता एक जटिल और चुनौतीपूर्ण प्रबंध है, किंतु भीतर से देखने पर, विशेष कर भारतीय साहित्य के इतिहास से भीतर से मथने पर, हम पाते हैं कि यह भारतीय साहित्य की मूलभूत एकता को पुष्ट करता है। तमिल के भारतीदासन मणिशेखरन वरदराजन, तेलगु के वल्लारी रामप्रोलु सुब्बाराव, श्रीरंगम श्रीनिवास राव, पंतुलु विश्वनाथ सत्यनारायण, कन्नड़ के दत्तात्रेय रामचंद्र बेद्रे, विनायक कृष्ण गोकाक, गोपाल कृष्ण अडिग, शिव रूद्रप्पा, मलयालम में वल्लतोल नारायण मेनन, श्रीशंकर कुरूप्प, तकषी शिवशंकर पिल्लै, उर्दू के चकबस्त, अकबर इलाहाबादी, फैज अहमद फैज, मोहाली, फिराक गोरखपुरी, सिंधी के हैदर बख्श दतोई, परमानंद मेवाराम, पंजाबी के गुरूबख्श सिंह, अमृता प्रीतम, राजेंद्रसिंह वेदी, नानकसिंह आदि के नाम महत्वपूर्ण है। हिंदी में प्रेमचंद, जयशंकर प्रसाद, बालमुकुंद गुप्त, महावीर प्रसाद द्विवेदी आदि ने साहित्य को पुराने रीतिवाद से मुक्त करते हुए हिंदी नवजागरण को एक नया अर्थ दिया। बंगला साहित्य का नवजागरण, मराठी साहित्य का नवजागरण, उर्दू साहित्य का नवजागरण, गुजराती और हिंदी का नवजागरण स्वाधीनता संग्राम से प्रेरित होते हुए भी राष्ट्रीयता के अर्थ प्रतीकों के स्तर पर थोड़ा भिन्न दिखाई देता है। इस भिन्नता का एक कारण यह है कि बंगला के नवजागरण पर पश्चिम का असर अधिक है और हिंदी प्रदेशों के नवजागरण पर संत परंपरा और और स्वदेशी आंदोलनों की गहरी छाप है। रामनरेश त्रिपाठी के 'पथिक' मैथिलीशरण गुप्त के 'भारत भारती', माखनलाल चतुर्वेदी के 'हिमतरंगिणी', नवीन जी के 'हम विशपायी जनम के, तथा दिनकर के 'हुंकार' के स्वर में कबीर और तुलसी की देशी ठसक है। पूरे के पूरे भारतीय साहित्य की राष्ट्रीयता को मैथिलीशरण की 'भारत–भारती' ने वाणी दी। भारतेंदु और फकीर मोहन की तरह गुप्त जी के कविधर्म का स्थायी भाव है 'भारत दुर्दशा' का चित्रण। वह इस यर्थाथ को कभी आंखों से ओझल नहीं करना चाहते। यह अकारण नहीं है कि उनकी कविता में श्रीमद् भगवद्गीता ध्वनित होता है। वे छायावादी, रहस्यवादी प्रवृत्तियों के बीच देश के आर्थिक–राजनीतिक और वैचारिक स्वराज्य के लिए लड़ रहे हैं।

गांधी पश्चिम की सभ्यता को चांडाल सभ्यता कहते थे और भारतीय सभ्यता को आत्मबल पर टिकी हुई उदार चिंतनभूमि। उन्होंने 'हिंद स्वराज्य' में आत्मालोचन के साथ देश को आगे बढ़ाने की बात कही थी।

इस पूरे साहित्य की चेतना व्यक्तिपरक मूल्यों की चेतना से दूर लोकमंगलवादी मूल्यों पर केंद्रित हो जाती है। इसलिए राष्ट्रीयता का पूरा ढांचा देशभक्ति के राग में ढल जाता है।

बोध प्रश्न–1

निम्नलिखित प्रश्नों के लगभग 5–7 पंक्तियों में उत्तर दीजिए –

1. आधुनिक भारतीय साहित्य, मध्यकालीन साहित्य से किस रूप में भिन्न है?

....

....

....

2. आधुनिक भारतीय साहित्य की मनोभूमिका का स्वरूप क्या है ?

....

....

....

3. आधुनिक साहित्य का प्रबल स्वर क्या है ?

....

....

....

7.5 राष्ट्रीय मुक्ति चेतना की सर्जनात्मक अभिव्यक्ति

भारतीय राष्ट्रीयता की चेतना ने रचनाकार की संपूर्ण मानसिकता को प्रभावित किया। इस मानसिकता ने कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक आदि अनेक विधाओं में साम्राज्यवादी दृष्टि और आर्थिक शोषण का विरोध किया। भारतीय भाषाओं के सभी रचनाकारों ने अंग्रेजों द्वारा की जा रही लूट का विरोध, साहित्य की विभिन्न विधाओं के माध्यम से किया। इस काल में जगह–जगह अकाल और महामारियाँ फैली थी। देश के सभी प्रदेश कष्ट से भर गए। भारतेंदु, सुब्रह्मण्यम भारती, ईश्वर चंद्र विद्यासागर, केशवसुत आदि ने गद्य और पद्य के माध्यम से संकीर्ण जातीयता बचाने का स्वर ऊंचा किया। नवजागरण काल के इन रचनाकारों ने जन–सामान्य तक अपनी बात पहुँचाने के लिए साहित्य को धनवान एवं सुविधा सम्पन्न उच्च वर्ग के एकाधिकार से मुक्त करने का प्रयास किया।

7.5.1 भारतीय भाषाओं में पत्रकारिता का उदय

नवजागरण काल में भारत की सभी भाषाओं के साहित्य का मूल स्वर देश प्रेम और राष्ट्रभक्ति का जो स्वर है उसके निर्माण और जागरण सुधार चेतना के प्रसार जन–सामान्य को साहित्य और राष्ट्रीयता से जीवंत और सक्रिय रूप से जोड़ने में पत्र–पत्रिकाओं की बहुत महत्वपूर्ण भूमिका है। उन्नीसवीं शताब्दी में सभी भारतीय भाषाओं में बड़ी संख्या में ऐसी पत्र–पत्रिकाएँ प्रकाशित हुई जिन्होंने भारतीय जनमानस को गहराई से उद्वेलित करने में कोई कसर नहीं छोड़ी।

भारत में छापे की मशीन की शुरूआत यहाँ के जनजीवन के लिए एक क्रांतिकारी घटना सिद्ध हुई। इस घटना से राष्ट्रीय चेतना का जागरण और विकास हुआ तथा सच्चे अर्थों में

राष्ट्रीय पत्रकारिता का सर्जनात्मक रूप सामने आया। भारत में राष्ट्रीय प्रेस के संस्थापक राजाराममोहन राय थे। उनसे पहले कुछ पत्र–पत्रिकाओं की शुरूआत हुई थी किंतु 1821 में बंगला में प्रकाशित 'संवाद कौमुदी', 1822 में फारसी में प्रकाशित 'मिराल–उल–अखबार' ने राष्ट्रीय एवं जनतांत्रिक लोक जागरण की धारा का सबसे पहले प्रकाशन किया। इन पत्रों में समाज सुधार एवं धार्मिक–सांस्कृतिक समस्याओं पर गंभीर विचार होते थे। बंबई में गुजराती प्रेस से 'बॉम्बे समाचार' नामक दैनिक अखबार निकाला जिसमें लोकतांत्रिक प्रगतिशील विचारों की आवाज रहती थी। 1838 में द्वारिकानाथ टैगोर, प्रसन्न कुमार टैगोर तथा राजाराममोहन राय ने 'बंगदूत' की स्थापना की। पी. एम. मोतीवाला ने गुजराती में 'जागे जमशेद' का प्रकाशन किया। इतना ही नहीं, गुजराती के पत्र 'रस्त फतार' और 'अखबार–ए–सौदागर' नए विचारों को लेकर आए। भारतीय राष्ट्रीयता के भीष्म पितामह दादा भाई नौरोजी ने 'रस्त गोफतार' (1891) का संपादन किया। वे इंडियन नेशनल कांग्रेस के संस्थापक भी थे। इसलिए यह पत्र भारतीय राष्ट्रीयता की सामूहिक शक्ति का प्रतिनिधित्व करता था। नवजागरण के वातावरण में 1858 में समाज सुधारक और प्रबल देशभक्त ईश्वरचंद्र विद्यासागर ने बंगला में 'सोमप्रकाश' का प्रकाशन किया। राष्ट्रवादी पत्रकारिता में इस पत्र का स्थान अनेक कारणों से श्रेष्ठ है। उदाहरण के लिए बंगाल के नील पैदा करने वाले इलाकों में जब अंग्रेजी शोषण के कारण अशांति बढ़ी तब इस पत्र ने किसानों के हित के लिए डटकर समर्थन किया। धीरे–धीरे राष्ट्रवादी अखबारों की संख्या और अधिक बढ़ी। 1868 में घोष बंधुओं (हेमेंद्र कुमार, शिशिर कुमार और मोतीलाल) के प्रयासों से 'अमृत बाजार पत्रिका' की स्थापना हुई। इस पत्रिका ने राष्ट्रीय विचारों का शिक्षित वर्ग में जोरदार प्रचार किया और सरकारी नीतियों की कठोर आलोचना की। इस पर दमन चक्र का कहर भी टूटा और इसके संपादकों को जेल की सजा भुगतनी पड़ी। सुरेंद्रनाथ बनर्जी ने 'बंगाली' पत्र निकाला। यह पत्र भारतीय राजनीतिक विचारधारा के उदार दिल के विचारों का प्रचार पत्र था। श्री बनर्जी की राय से दयालसिंह मजीठिया ने 1877 में लाहौर में अंग्रेजी दैनिक 'ट्रिब्यून' की स्थापना की। इस पत्र ने पंजाब की उदारवादी राष्ट्रीय विचारधारा को प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया।

धीरे–धीरे राष्ट्रवादी विचारधारा बल पकड़ने लगी और राष्ट्रीयता के नेता बाल गंगाधर तिलक, विपिन चंद्र पाल, अरविंद, लाला लाजपतराय, वीरेंद्र घोष का उदय हुआ। तिलक ने मराठी में 'केसरी' का प्रकाशन शुरू किया। इसने राष्ट्रीय स्वाधीनता संग्राम की विचारधारा को तेज करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। तिलक ने जब 'मराठा' का प्रकाशन किया तो फिरंगी सरकार के कान खड़े हो गए और अंतः तिलक को दो बार जेल जाना पड़ा। घोष बंधुओ का पत्र 'युगांतर' उग्र राष्ट्रीयता के इतिहास का दस्तावेज है। अरविंद ने 'वन्दे मातरम' पत्र निकाला। इन पत्रों ने बंग विभाजन का विरोध किया तथा देश में विदेशी के बहिष्कार और स्वदेशी के प्रचार–प्रसार की भावना को अभिव्यक्ति दी।

भारतीय राजनीति के अनेक नेता पत्र–पत्रिकाओं के माध्यम से जनता की समस्याओं को खुलकर सामने लाने लगे। रामानंद चटर्जी 'मॉडर्न रिव्यू' में सामाजिक–राजनीतिक–ऐतिहासिक विषयों पर लेख निकालने शुरू किए। इन लेखों ने वैचारिक क्रांति का एक विशेष माहौल निर्मित किया। गरम दल और नरम दल के नेताओं ने चाहे वे फिरोजशाह मेहता हों या गोखले, तिलक हों या विपिन चन्द्र पाल–सभी ने लोक जागरण के लिए अपने विचारों को माध्यम बनाया। फिरोजशाह मेहता ने 'बॉम्बे क्रॉनिकल' निकाला तथा ऐनी बिसेंट का 'न्यू इंडिया' होमरूल आंदोलन का मुखपत्र बना। युद्धोत्तर काल में राजनीतिक–आर्थिक संकट मोतीलाल नेहरू अली बंधु, खिलाफत आंदोलन के नेता, सी.आर.दास आदि सभी ने मिलकर

राष्ट्रीय अपने ढंग से अभिव्यक्ति दी। गांधी जी ने 'यंग इंडिया' और 'हरिजन' को जनता की व्यथा से जोड़कर नया रूप दिया।

इसी समय काशी के शिव प्रसाद गुप्त ने हिंदी 'आज' की स्थापना की। हिंदी पत्रकारिता का एक गौरवपूर्ण इतिहास था। भारतेंदु हरिश्चंद्र 'कविवचन सुधा', 'हरिश्चंद्र मैगजीन', 'हरिश्चंद्र पत्रिका', 'बाला बोधिनी', प्रताप नारायण मिश्र 'ब्राह्मण', बालकृष्ण भट्ट 'हिंदी प्रदीप', उपाध्याय बद्री नारायण चौधरी ने 'प्रेमधन', 'आनंद कादंबिनी', 'नागरी नीरव' जैसे पत्र–पत्रिकाएँ निकाल रहे थे। इसी परंपरा में तोताराम ने 'भारत बंधु' संदानंद मिश्र ने 'सारसुधानिधि', दुर्गा प्रसाद मिश्र ने 'उचित वक्ता', केशवराम भट्ट ने 'बिहार बंधु', कार्तिक प्रसाद खत्री ने 'हिन्दी दीप्ति प्रकाश', राजा राम पाल सिंह ने 'हिंदोस्थान', अंबिकादत्त व्यास जी ने 'पीयूष प्रवाह', राधाचरण गोस्वामी ने 'भारतेंदु' आदि ने अनेक पत्र–पत्रिकाएं निकालीं। ब्रिटिश साम्राज्यवाद की नीतियों के कारण 'हिंदी प्रदीप' को कई बार बंद होना पड़ा, लेकिन संपादक ने हिम्मत न हारी और पत्र को फिर से निकाला। 'हिंदोस्थान' इंग्लैंड से निकला था और हिंदी–अंग्रेजी में छपता था। इसके संपादकों में पंडित मदनमोहन मालवीय, प्रताप नारायण मिश्र और बालमुकुंद गुप्त रहे। मालवीय जी के प्रभाव से 'अभ्युदय' जैसा पत्र निकाला जिसके महान संपादकों ने देशभक्ति और राष्ट्रीयता के विकास में महत्पूर्ण योगदान दिया। कृष्णकांत मालवीय और पं. बनारसी दास चतुर्वेदी इसके संपादक रहे। महावीर प्रसाद द्विवेदी की पत्रिका 'सरस्वती', गणेश शंकर विद्यार्थी का पत्र 'प्रताप', माखनलाल चतुर्वेदी का पत्र 'कर्मवीर' और पत्रिका 'प्रभा' जैसे देशभक्ति के पत्र निकले जिन्होंने ब्रिटिश शासन को कदम–कदम पर चुनौती दी और निरंतर दंड भी भोगा। प्रताप का कार्यालय तो क्रांतिकारियों का केंद्र बन गया। विद्यार्थी जी के आसपास भारतीय भाषाओं के नए लेखकों–पत्रकारों और स्वतंत्रता सेनानियों का एक विशाल वृत्त निर्मित हुआ जो साम्प्रदायिकता और क्षेत्रीयता का विरोध करता हुआ देशभक्ति का प्रचार करता था। प्रताप के संपादक मंडल में क्रांतिकारी भगत सिंह भी रहे। इस पत्र ने क्रांतिकारी रामप्रसाद बिस्मिल की डायरी का प्रकाशन भी किया। राष्ट्रवादी और स्वाधीनता आंदोलन के समर्थक पत्र–पत्रिकाओं की एक ऐसी अटूट श्रृंखला बनी कि श्रीकृष्णदत्त पालीवाल ने 'सैनिक' निकाला जिसमें हिंदी के अनेक रचनाकारों ने सक्रिय भागीदारी की। हिंदी 'केसरी' का प्रकाशन हुआ और माधवराव सप्रे के संपादकत्व में एक नया प्रकाश दिखाई दिया। हिंदी 'केसरी' पर मुकदमा चला और 1909 में इसे बंद हो जाना पड़ा। इसी वर्ष 'अवध केसरी' (फैजाबाद) निकला। 'मथुरा समाचार' (मथुरा) 'ज्ञान शक्ति' (गोरखपुर), 'शक्ति' (अल्मोड़ा), 'सूर्य' (काशी) जैसे अनेक छोटे–छोटे पत्र उभरे जिनकी स्वाधीनता संग्राम के परिप्रेक्ष्य में महत्वपूर्ण भूमिका रही।

प्रथम विश्व युद्ध (1914–18) के साथ ही भारत के राजनीतिक एवं सांस्कृतिक सोच में एक विशेष परिवर्तन आया। भारतीय राष्ट्रीयता के क्षेत्र में इस सोच ने नव चेतना का संचार किया। फलतः साम्राज्यवादी शक्तियों के सामने राष्ट्रवादी क्रांतिकारियों ने सशस्त्र आंदोलन शुरू किए। इसी समय गदर पार्टी का गठन हुआ। युद्धकाल में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के चार अधिवेशन हुए। तिलक के जेल से बाहर आते ही 'देशभक्ति की शक्तियाँ' सिर तानकर खड़ी हो गई। इस दौरान 'प्रताप', 'अभ्युदय', 'भविष्य', 'सरस्वती', 'भारतबंधु' "सत्यवादी', 'निर्बल सेवक', 'स्वदेश, 'ज्ञान शक्ति', 'उत्साह', 'कर्मवीर', मर्यादा जैसे पत्रों ने राजनीतिक चेतना का माहौल निर्मित्त किया। 'भारत जीवन' और हिंदी 'केसरी' राष्ट्रीय विचारधारा के प्रतीक पत्र बन गए। 'आनंद' और 'उत्साह' जैसे पत्रों ने स्वाधीनता संग्राम में जनजागरण का काम किया। महात्मा गांधी के रौलट विधेयक विरोधी आंदोलन को गति प्रदान करने के लिए सत्याग्रह सभा की स्थापना हुई। गांधी ने 17 अप्रैल 1919 को 'सत्याग्रह' नामक पत्र

का प्रकाशन किया। गांधी जी पत्र–पत्रिकाओं को वैचारिक क्रांति का माध्यम मानते थे। उनके विचारों से प्रभावित होकर स्वदेशी आंदोलन को वाणी देने के लिए गोरखपुर से 'स्वदेशी' का प्रकाशन आरंभ हुआ। इस पत्र के मुख पृष्ठ पर लिखा होता था –

'जो भरा नहीं है भावों से बहती जिसमें रसधार नहीं
वह हृदय नहीं है पत्थर है जिसमें स्वदेशी का प्यार नहीं।'

संपादकीय स्तंम्भ में स्वदेश का नीति सिद्धांत था :

'स्वर्गालय के लिए आत्मबलि हम न करेंगे
जिस स्वदेश में जिए उसी पर सदा मरेंगे'

'स्वदेश' अपने इस संकल्प का जीवनपर्यन्त स्वाधीनता आंदोलन में शंखनाद करता रहा। गांधी जी ने राष्ट्रीय चरित्र को बल प्रदान किया। फलतः प्रताप के राष्ट्रीय अंक में बलिदान की प्रेरणा–भरी अनुगूंज सुनाई दी 'चाँद' पत्रिका का फाँसी अंक निकाला, जिसका भारतीय राष्ट्रीयता के इतिहास में अपार नाम है।

ऐसा माहौल बना कि 1919 में लगभग 170 छापाखानों और पत्र–पत्रिकाओं से जमानतें माँगी गई। 'बाम्बे क्रॉनिकल' के प्रसिद्ध संपादक बी.जी. हार्निमेन को पंजाब सरकार की आलोचना करने के कारण देश से निर्वासित कर दिया गया। 'अमृत बाजार पत्रिका', 'ट्रिब्यून', 'पंजाबी', 'हिंदू' और 'स्वदेश मिलन' जैसी विभिन्न भाषाओं के देश प्रसिद्ध पत्रों से भारी जमानतें ली गई और दमनकारी जब्तियाँ हुई। इनका प्रकाशन रोका गया और संपादकों को सजाएं दी गई। पंजाब में प्रेस एक्ट को बड़ी कठोरता से लागू किया गया एक हिंदी साप्ताहिक 'स्वदेश' भी था। 'प्रताप', 'अभ्युदय', 'अवधवासी', 'भारत मित्र', 'भारत बंधु' आदि पत्रों ने प्रेस अधिनियम के विरूद्ध विरोध प्रदर्शित किया और प्रतिबंधों के बावजूद नई पत्र–पत्रिकाएं निकली जैसे – 'संसार' (कानपुर), 'बिजली' (इटावा), 'किसान' (फतेहपुर), 'सेवा' (प्रयाग), 'हिमालय' (रानीखेत, अल्मोड़ा) जैसे पत्रों का प्रकाशन हुआ। 1920 में गणेशशंकर विद्यार्थी ने हिंदी की सचित्र मासिक राजनीतिक पत्रिका 'प्रभा' का प्रकाशन किया। इस पर लिखा होता था :

'आओ कर्मक्षेत्र में आओ उन्नति बाधा चलो हटाओ
बहुत दिनों से रुके पड़े हो मृतक तुल्य ही झुके पड़े हो
अंधकार को तोड़ विश्व में दिव्य प्रभा दिखलाओ
आओ कर्मक्षेत्र में आओ।'

गणेशशंकर विद्यार्थी के जेल जाने पर श्रीकृष्णदत्त पालीवाल, माखनलाल चतुर्वेदी और बालकृष्ण शर्मा नवीन ने 'प्रभा' का संपादकत्व संभाला और निर्भय स्वर से देशभक्ति को वाणी दी। भारतीय राष्ट्रीयता के इस नवजागरण काल में ही हिंदी दैनिक 'आज' का प्रकाशन हुआ। भारतीय पत्रकारिता के इतिहास में इसका प्रकाशन एक युगांतकारी घटना कही जाती है। मातृभूति की सेवा के लिए तो यह पत्र जन्मा ही था। घोषणा में लिखा गया था :

'हमारा उद्देश्य अपने देश के लिए सभी प्रकार से स्वातंत्र्य उपार्जन है। हम हर बात में स्वतंत्र होना चाहते हैं। हमारा लक्ष्य यह है कि हम अपने देश का गौरव बढ़ावें, अपने देशवासियों में स्वाभिमान का संचार करें उन्हें ऐसा बनावें कि भारतीय होने का उन्हें अभिमान हो संकोच नहीं। भाइयों। भूलो मत यह स्वाभिमान स्वतंत्रता देवी की उपासना करने से मिलता है।'

'आज' के आरंभिक संपादक श्री प्रकाश एवं बाबू राव विष्णु पराड़कर थे। श्रीप्रकाश पर गांधीवादी आदर्शों का प्रभाव था और पराड़कर जी पर तिलक के राजनीतिक दर्शन का। लोकमान्य से आर्शीवाद लेने वे पूना भी गए। इसी समय गांधीवादी आदर्श का पत्र कानपुर से दैनिक 'वर्तमान' निकला। इस पत्र पर लिखा होता था –

भारत के हम और हमारा भारत प्यारा
स्वतंत्रता है जन्मसिद्ध अधिकार हमारा

इसी समय 'श्रद्धा' (बिजनौर), 'सुधाकर' (आगरा) जैसे पत्र निकले। देश के किसान आंदोलन को जहाँ अंग्रेजी के पत्र चुप्पी साधकर छिपाते थे, वहाँ भाषाओं की पत्र–पत्रिकाएं जोखिम उठाकर किसानों की आवाज को बुलंद करतीं। अवध के कई जिलों में बाबा रामचंद्र की अगुआई में किसानों ने विद्रोह किया। इसमें रायबरेली के किसानों का विद्रोह भारतीय इतिहास की एक महत्वपूर्ण घटना है। सरकार ने दमनात्मक कार्रवाई की। 'प्रताप' में गणेश शंकर विद्यार्थी ने 'डायरशाही और ओ डायरशाही' शीर्षक लेख से इस आंदोलन को जन–जन में फैलाया।

भारतीय पत्रकारिता का, विशेषकर हिंदी पत्रकारिता का, उत्तरोत्तर विकास हुआ। 'ब्रजवासी', 'विशाल भारत', 'लोकमान्य', 'लोकवार्ता', 'विक्रय', 'निर्भय', और 'परिवर्तन' जैसे पत्र निकले। इन पत्रों पर निरंतर सरकार का कोप जारी रहा। लेकिन स्वाधीनता आंदोलन में भारतीय पत्र–पत्रिकाओं ने रुकना या झुकना कभी न सीखा। राष्ट्रीयता और राष्ट्रीयतापरक साहित्य के विकास में इन पत्र–पत्रिकाओं का अमूल्य योगदान है। इन पत्र–पत्रिकाओं ने मजदूरों–किसानों के आंदोलनों का विस्तार किया तथा राष्ट्रीय स्वाधीनता के लिए कांग्रेस और समाजवादी–साम्यवादी मतावलंबियों द्वारा चलाए जा रहे आंदोलन को अभिव्यक्ति दी।

7.5.2 नाटक

दृश्य माध्यम होने के कारण नाटक का प्रभाव साहित्य की अन्य विधाओं की तुलना में अधिक शीघ्र और गहरा होता है। आधुनिक युग में जन–जागरण करने के लिए ऐसे नाटकों का लेखन और प्रदर्शन होने लगा जिससे जनता अंग्रेजों के असली इरादों को समझ सके और उसके भीतर प्रबल देशभक्ति की भावना पैदा हो। असमिया का नाटक 'जयमती' में राष्ट्रीय चेतना और देश–प्रेम स्पंदित है तो तेलुगु में साम्राज्यवाद के विरोध का स्वर, वेद वेंकट रामशास्त्री के नाटक 'प्रताप रूद्रीयम' में मिलता है। ऐतिहासिक सांस्कृतिक कथानकों को आधार बनाकर अंग्रेजी शासन के विरूद्ध आवाज उठाने वाले अनेक नाटककार और नाटक सामने आए। भारतेंदु के 'नीलदेवी','सत्य हरिश्चंद्र', जयशंकर प्रसाद के 'स्कंदगुप्त', 'चंद्रगुप्त', 'अजातशत्रु', श्रीनिवासराव के 'रामानुज चरित' (तेलुगु), यज्ञनारायण शास्त्री के 'रसपुत्र' विजयक (तेलुगु) मराठी में कीर्तने का माधव राव पेशवा', हिंदी में राधाचरण गोस्वामी के ' अमरसिंह राठौर', तमिल में 'बुद्ध अवतारम', गुजराती में लीलावती मुंशी के 'कुमारदेवी' में इतिहास के माध्यम से राष्ट्रीयता के उदबोधन का स्वर है। बीसवीं शताब्दी के तीसरे और चौथे दशक में नाटकों में साम्राज्यवाद विरोधी चेतना और तेज होती गई।

द्विवेंद्र लाल राय के नाटकों ने विभिन्न भाषा के नाटककारों को प्रभावित किया। ऐतिहासिक, पौराणिक काल्पनिक कथाओं पर आधारित नाटकों के साथ–साथ भारतीय भाषाओं की लोक नाट्य परंपरा में भी एक नई राष्ट्रीय दृष्टि पैदा हुई। रामलीला, रासलीला, जात्रा, अंकिया नाट, यक्षगान, संगीतक, भांड, नौटंकी, कीतर्निया, कुटियाट्टम, भवई आदि लोक नाट्य जीवंत्ता से उभरे लेकिन सर्वाधिक लोकप्रिय बंगला की जात्रा हुई। कन्नड़ की यक्षगान

परंपरा ने संस्कृत के नाटकों का सहारा लेकर धर्म और संस्कृति के माध्यम से राष्ट्रीयता को उद्‌बोधित किया। यक्षगान से प्रेरणा पाकर विष्णुदास भावे ने मराठी में 'सीतास्वयंबर' प्रस्तुत किया। यह स्थानीय लोक शैलियों पर आधारित था। फिर यह परंपरा ऐसी चली कि बलवंत पांडुरंग अण्णा साहब किर्लोस्कर, श्रीपाद कृष्ण कोल्हटकर, गोबिंद वल्लभ देवल, पु.ला. देशपांडे आदि के नाटक सामने आए। तमिल में लोक–नाट्यों के विषय पौराणिक रहे जैसे 'कुपल्लि कुरूबंबी'। दरअसल भारतीय रंगमंच के माध्यम से जनजागरण की चेतना ने पूर्व में कलकत्ता, पश्चिम में सूरत और बंबई तथा दक्षिण में मद्रास को अपना केंद्र बनाया। कलकत्ता में लेवेडेफ ने बंगाली थियेटर की स्थापना की। आरंभ में, थिएटर मनोरंजन के लिए थे, लेकिन कालांतर में उन्होंने राष्ट्रीय जागरण में भूमिका निभाई।

माइकेल मधुसूदन दत्त का नाटक 'पद्‌मावती', 'शर्मिष्ठा', असमिया में 'सीताहरण', 'सीतास्वयंबर', तेलुगु में' पांचाली परिण्यम्', तेलुगु में 'धर्मवरम कृष्णया चारीयुल' तथा शंकरदास स्वाभिक्कल के अधिकांश नाटक, मराठी में विष्णुदास भावे के पौराणिक नाटकों ने यह कार्य बड़ी सफलता से किया। इनके माध्यम से भारतीय जातीय पहचान उभरी। बंगला में गिरीशचंद्र घोष ने ऐतिहासिक नाटक लिखे। इस परंपरा को द्विजेंद्रलाल राय ने राष्ट्रीय उद्‌बोधन के स्वर में बदल दिया। उनका प्रसिद्ध नाटक 'चंद्रगुप्त' है। इस परंपरा को हिंदी में जयशंकर प्रसाद, हरिकृष्ण प्रेमी, गुजराती में उमाशंकर जोशी, के.एम.मुंशी, मलयालम में कृष्ण पिल्लै आदि ने आगे बढ़ाया। इतिहास की आंख से अपने वर्तमान को देखने की प्रवृत्ति प्रेरणादायी सिद्ध हुई। बंगला में अमृतलाल बाऊ का प्रहसन 'कृष्णेरधन', भारतेंदु का प्रहसन 'अंधेर नगरी', राधाचरण गोस्वामी का प्रहसन 'तन–मन–धन गोसाई जी के अर्पण' आदि ऐसे नाटक हैं जो सामाजिक कुरीतियों और भ्रष्टाचार पर कटाक्ष करते हैं। असमिया के नाटकों में राष्ट्रीय चेतना का वही रूप उभरता मिलता है जैसा डी.एल. राय के नाटकों में था। लक्ष्मीनाथ बेजबरुआ कृत 'चक्रध्वज सिंह', विमलानंद बरुआ कृत 'शराई घाट', नकुल भुइयाँ कृत 'विद्रोही मरण' में राष्ट्रीय नवजागरण को सुधारवादी और आदर्शवादी दृष्टि से प्रस्तुत किया गया है। बंगला में रवीन्द्रनाथ ठाकुर के नाटक 'रक्तकरबी', 'डाकघर', 'राजा', हिंदी में हरिकृष्ण प्रेमी के 'रक्षाबंधन', 'स्वप्नभंग', 'प्रतिशोध', सिंधी में खानचंद दरियानी के 'मुखरी', 'भूखा जो शिकार', 'जमींदारी जुल्म' नाटकों ने सामंतवादी शोषण के खिलाफ विद्रोही दृष्टि पैदा करने वाले नाटक लिखे। हास्य और व्यंग्यपरक नाटक और प्रहसन लिखे गए। इन प्रहसनों में बहुत से लोक साहित्य के रूप मिले रहते थे।

7.5.3 कथा साहित्य

राष्ट्रीय धारा के प्रतिनिधि नाटकों के साथ–साथ ऐसे उपन्यास भी हमारे सामने आए जिन्होंने सांस्कृतिक–सामाजिक, नवजागरण जन–जन तक पहुँचाने का कार्य किया। प्रेमचन्द, बंकिम, रवींद्रनाथ टैगोर, पामा वरेरकर (मराठी), वेदनायक पिल्लै (तमिल), रतननाथ सरसार (उर्दू–उपन्यास 'फसान–ए–आजाद'), मिर्जा मोहम्मद हादी ससवा ('उमराव जान अदा') आदि के उपन्यासों में भारतीय उपनिवेशवाद और सामंतवाद से उत्पन्न स्थितियाँ उन विचारों को हमारे सामने केंद्रित करती हैं जिनमें मनुष्य पराधीन भारत में एक घुटन का अनुभव कर रहा था। मिर्जा कलीज वेग का सिंधी उपन्यास 'जीनत' और भाई वीरसिंह देव की कथाकृति 'सुंदरी' उस आदर्शवाद की ओर उठता हुआ कदम है जिसमें देश का मन अपनी आंतरिक शक्ति को खोल देना चाहता है। कन्नड़ लेखक वेंकट राव का उपन्यास 'इन्दिरा बाई', हरिनारायण आप्टे का उपन्यास 'मझली स्थिति' और चतुरसेन शास्त्री का उपन्यास 'वैशाली की नगर वधू' सामाजिक पाखंड का नहीं उस सामाजिक दर्द का विस्फोट है जिसे भारतीय समाज सह रहा था। हिंदी में प्रेमचंद व्यापक स्तर पर सामाजिक पाखंडों का निर्ममता के

साथ भंडाफोड़ करते हैं। 'वरदान', 'प्रतिज्ञा', 'सेवासदन' से लेकर 'प्रेमाश्रम', 'सेवासदन', 'कायाकल्प', 'निर्मला', 'गबन', और 'गोदान' भारतीय समाज में घटित हो रहे अनाचार और अत्याचार के विरुद्ध आवाज उठाते हैं। स्वयं जयशंकर प्रसाद के उपन्यास 'कंकाल' और 'तितली' धर्म और समाज के ठेकेदारों के पाखंडों का खोखलापन सामने लाते हैं। भगवतीचरण वर्मा का 'चित्रलेखा' पाप–पुण्य की कृत्रिमता पर प्रहार कर उस ओर बढ़ता है जहाँ जीवन के आस्थावादी मूल्य संचित हैं। श्री केलकर ने 'पैरांगदा' (भगोड़ा) में उन शिक्षित युवकों की समस्या को लिया जो पश्चिम के रंग में बहना चाहते हैं। रवींद्रनाथ ने 'घरे बाहिरे' में सामाजिक मूल्यों में संघर्ष की योजना के द्वारा भारतीय समाज की मनोदशा को चित्रित किया। खांडेकर ने 'कंचन मृग' और उपेंद्रनाथ अश्क ने 'गिरती दीवारें', जैनेंद्र ने 'त्यागपत्र' और 'सुनीता' में नारी वेदना को एक जटिल समस्या के रूप में प्रस्तुत किया। कहना न होगा कि भारतीय स्वाधीनता आंदोलन के दिनों में जितने सामाजिक–सांस्कृतिक, आर्थिक, धार्मिक सुधार आंदोलन उठे थे–चाहे वे सती प्रथा, बाल विवाह, अशिक्षा, अंधविश्वास, अस्पृश्यता, जाति प्रथा, क्षेत्रीयता, हिंदू–मुस्लिम समस्या आदि किसी भी विषय से संबंधित हो–भारतीय साहित्य ने उन पर गहराई से विचार किया।

भारतीय कहानी ने बंगला में अपना सफलतम रूप रवींद्रनाथ टैगोर में देखा था। हिंदी में प्रेमचंद उस कहानी को सामने लाते हैं जो भारतीय समाज पर गांधीवादी प्रभाव की संपूर्ण स्थिति–परिस्थिति प्रस्तुत करती है। प्रेमचंद के उपन्यास कहानियाँ–'पूस की एक रात' हो अथवा 'पंच परमेश्वर', असमिया के दीनानाथ शर्मा की 'मृत्युहीन मृत्यु', झबेर चंद मेघाणी की कहानियाँ, तमिल में कालकी और राजाजी की कहानियाँ सुधार और देशभक्ति की भावनाओं से भरपूर हैं। तेलगु के अडवी बापिराज ने छुआछूत को दूर करने वाली कहानियों लिखी। राष्ट्रीय चेतना की प्रखर अभिव्यक्ति के रूप में प्रसाद ने 'पुरस्कार', 'आकाशदीप', 'गुंडा' आदि कहानियाँ लिखी। भारतीय भाषाओं में मार्क्सवादी चिंतन और फ्रायड से प्रेरित कहानियाँ भी लिखी गई। यशपाल, राहुल सांकृत्यायन, राजेंद्रसिंह बेदी, कृश्णचंदर और मंटो ने कहानी का जो रूप प्रस्तुत किया वह भारतीय समाज को भीतर से शक्ति देने वाला है। मनुष्य में अखंड आस्था और उसकी संभावनाओं की तलाश हमारी संवेदना की आंतरिक पुकार थी जिसे भारतीय कहानी ने एक व्यापक स्तर पर पूरा किया।

7.5.4 कविता

साम्राज्यवादी लूटतंत्र और देशभक्ति की सबसे प्रबल अभिव्यक्ति कविता में हुई। इस कविता ने व्यक्तिपरक मूल्यों की चेतना से दूर मानवतावादी करूणामूलक लोक मंगलमय और समष्टिपरक चेतना का विस्तार किया। विदेशी आक्रांताओं के सामने भारतीय वीरों ने कभी हिचक नहीं दिखाई। राजपूतों, मराठों, बुदेंलों, कल्चुरियों का इतिहास साक्षी है कि उन वीरों ने अपनी क्षेत्रीय सीमाओं से उठकर देश की रक्षा के लिए संघर्ष किया था। कवियों ने इनकी वीरता को काव्य का विषय बनाया और उनमें देशभक्ति की एक नई शक्ति पैदा की। उदाहरण के रूप में सुभद्रा कुमारी चौहान की कविता 'झाँसी की रानी', श्यामनारायण पांडेय की 'हल्दी घाटी' 'जौहर' को देखा जा सकता है।

इस पूरे भारतीय साहित्य में भारत मातृभूमि के रूप में उदित हुआ। इसी चेतना के भीतर से बंकिम चंद्र चटर्जी का गान फूट पड़ा –

बंदे मातरम्
सुजलाम् सुफलाम् मलयज शीतलाम्
शस्य श्यामलाम् मातरम।

('आनंदमठ' उपन्यास में 1882)

इस गीत ने जैसे पूरे देश की चेतना को वाणी दी और यह भारतीय राष्ट्रवादियों का स्वरगीत बनता गया। श्री अरविंद इस गीत से इतने आंदोलित हुए कि इसका उन्होंने गद्य और पद्य में अंग्रेजी रूपांतर प्रस्तुत कर डाला। यह गीत अरविंद के पत्र 'बंदे मातरम' की प्रेरणा भी बना। इस गीत में भारतीय संस्कृति की विशिष्ट निधि इस अर्थ में है कि इसने भारतीय जन–मानस में जन्मभूमि के लिए एक नया भावबोध उत्पन्न किया। इस गीत का विशिष्ट गौरव यह है कि जन–गण–मन गीत के रचनाकार रवींद्रनाथ टैगोर ने इसे बार–बार राष्ट्रीय मंचों पर गाया। लार्ड कर्जन ने बंगाल विभाजन नीति की घोषणा की तो इसी गीत ने संघर्ष का नया शंखनाद किया। विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार और स्वदेशी आंदोलन की प्रेरणाभूमि में भी यही गीत समाहित रहा।

अनेक देशभक्त बंदे मातरम का मंत्र जपते–जपते फाँसी पर झूल गए। इस प्रकार राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक स्वाधीनता की ओर पूरे देश को इस गीत ने प्रेरित किया। अंग्रेजों ने इस गीत के गायन पर प्रतिबंध लगा दिया। वाराणसी में गोपाल कृशण गोखले सन् 1905 में कांग्रेस की अध्यक्षता कर रहे थे, उस समय टैगोर की भतीजी प्रसिद्ध गायिका सरला देवी ने जनता के आग्रह पर इस गीत को जोखिम उठाकर गाया। इसे सुनकर राष्ट्र–वीरों में नया उत्साह पैदा हुआ। साम्राज्यवाद का क्रूर चेहरा साफ खुल गया। गाँधी ने असहयोग आंदोलन शुरू किया और उस दौर में बंदे मातरम फिर गूंज उठा। कहना न होगा कि इस गीत से प्रेरणा पाकर भारतीय भाषाओं में राष्ट्र प्रेम की अनेक कविताएं लिखी गईं। तमिल के सुब्रह्मण्यम भारती इस गीत से अत्यधिक प्रभावित हुए। इसी गीत की प्रेरणा ने हाली, शिवली, इकबाल, केशवसुत, वामन, तिलक, वल्लतोल, भारतीदासन, मैथिलीशरण गुप्त, रामनरेश त्रिपाठी, माखनलाल चतुर्वेदी, नवीन और दिनकर को राष्ट्रीयता का एक नया राग दिया। जयशंकर प्रसाद देशभक्ति की समय शक्ति को पहचानते हुए 'अरूण यह मधुमय देश हमारा', 'हिमाद्रि तुंग शंग से प्रबुद्ध शुद्ध भारती/स्वयंप्रभा समुज्जवला स्वतंत्रता पुकारती' जैसे प्रेरणादायक गीत लिखे। सूर्यकांत त्रिपाठी निराला ने लोक जागरण के इस स्वर को पहचानते हुए 'जागो फिर एक बार', 'राम की शक्ति पूजा' 'तुलसीदास' 'एक बार बस और नाच तू श्यामा' जैसी रचनाओं की सृष्टि की। पंडित रामनरेश त्रिपाठी ने साम्राज्यवादी लूटतंत्र का भंडाफोड़ करने के लिए 'पथिक' काव्य लिखा –

'शासकगण असहाय प्रजा को घोर कष्ट देता है
रक्षक से भक्षक बनता है सर्वस हर लेता है
लाखों नहीं करोड़ों ऐसे हैं मनुष्य दुख पाते
जीवन भर जो जठरानल में जल जलकर मर जाते।
हाय–हाय कर लोग साँझ को निराहार सो जाते
एक बार भी रात–दिवस में पेट नहीं भर पाते
चिंतित है, आश्चर्यचकित हैं, कृषक विकल है दुख से
कौन छीन लेता है उनका कौर अचानक मुख से।'

(पथिक)

इसी काव्य में कवि साम्राज्यवादी लूटतंत्र से मुक्ति पाने के लिए कहता है–

तुम अपने सुख के स्वराज्य के हो न पूर्ण अधिकारी
यह मनुष्य पर कलंक है हे प्रिय बंधु तुम्हारी

दुखदायी शासन से अपनी सारी शक्ति हटा लो
निज सुख दुख का अपने ऊपर सारा भार संभालो
अपना शासन आप करो तुम यही शांति है सुख है
पराधीनता से बढ़ जग में नहीं दूसरा दुख है।

गांधी के आने से जो नया विचार मंथन पैदा हुआ था उसकी अभिव्यक्ति मैथिलीशरण गुप्त, माखनलाल चतुर्वेदी और नवीन में अत्यंत शक्तिमान सर्जनात्मकता के साथ हुई। गुप्त जी की 'भारत भारती' और 'जयद्रथ वध', माखनलाल चतुर्वेदी की 'कैदी और कोकिल', 'जवानी', 'मैं हूँ एक सिपाही', 'एक पुष्प की अभिलाषा ('हिमतरंगिणी', 'हिमकिरीटिनी' काव्य संग्रहों की कविताएँ) तथा नवीन जी के 'हम विषपायी जन्म के' काव्य संग्रह की कविता 'कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ', दिनकर की 'रेणुका' और 'हुंकार' आदि रचनाओं ने राष्ट्र के तेजोदीप्त स्वाभिमान को वाणी दी। 'भारत भारती' में उद्‌बोधन का स्वर अधिक है और 'जयद्रथ वध' में अधिकार के लिए संघर्ष का। चतुर्वेदी जी के काव्य में युग की पूरी मुक्ति कथा का जन इतिहास है। 'पुष्प की अभिलाषा' कविता में उन्होंने लिखा है–

चाह नहीं मैं सुरबाला के गहनों में गूंथा जाऊं
चाह नहीं प्रेमी माला में बिंध प्यारी को ललचाऊं
चाह नहीं सम्राटों के शव पर हे हरि डाला जाऊं
मुझे तोड़ लेना वनमाली उस पथ पर तुम देना फेंक
मातृभूमि पर शीश चढ़ाने जिस पथ जाएं वीर अनेक।

जैसे हिंदी में गया प्रसाद शुक्ल स्नेही, सियारामशरण गुप्त, रामनरेश त्रिपाठी, माखनलाल चतुर्वेदी, प्रसाद, निराला और दिनकर की एक पूरी पीढ़ी देश–प्रेम, बलिदान और आस्था के गान गाती रही है, वैसे ही एक पूरी पीढ़ी उर्दू कविता में भी दिखाई देती है।

मिर्ज़ा गालिब और बहादुरशाह ज़फर की कविता में एक स्वर पूरी तड़प के साथ फूटता है–

जो बिगड़ गया वो नसीब हूँ
जो उजड़ गया वो दयार हूँ

(ज़फर)

दिल्ली की मरती आत्मा के शोक से जो तड़प के साथ दर्द उठा था उसकी प्रतिक्रिया उर्दू कविता का राष्ट्रीयतावादी नवजागरण प्रकट हुआ। अमीर मीनाई ने 'मिरातुल गैब' और 'सनम खाना–ए–इश्क' जैसे काव्य संग्रहों में राष्ट्रीय स्वर को बुलंद करते हुए लिखा –

तीर खाने की हवस है तो जिगर पैदा कर
सर फरोशी की तमन्ना है तो सर पैदा कर

सर फरोशी की तमन्ना संपूर्ण भारतीय कविता की एक प्रवृत्ति ही बन गई। क्रांतिकारी वीर भगतसिंह का एक नारा ही एक गीत बन गया –

सर फरोशी की तमन्ना अब हमारे दिल में है
देखना है जोर कितना बाजू–ए–कातिल में है।
वक्त आने पर बता देंगे तुझे ओ आसमाँ
हम अभी से क्या बताएं क्या हमारे दिल में है।

नौरोजी और तिलक की गरमदलीय विचारधारा ने भगतसिंह, राजगुरू, असफाक और बिसमिल आदि की कुरबानी में जोश दिया। नई चेतना का जो बीज भारतेंदु, हाली, भाई वीर सिंह और वीरेश लिंगम में पैदा हुआ था उसी आवाज को आगे चलकर नज़ीर और अकबर इलाहाबादी ने उठाया। मौलाना शिवली ने अंग्रेजों को संबोधित करते हुए लिखा–

ये माना तुम्हें तलवारों की तेजी आजमानी है
हमारी गरदनों पर होगा इसका इतिहाँ कब तक
सुनाएं तुम को अपने दर्दे दिल की दासताँ कब तक
मिटाओगे हमारा इस तरह नामों निशां कब तक।

मौलाना मोहम्मद हुसैन आजाद ने देशभक्ति और सुधार आंदोलनों का सर उठाते हुए कहा–

हिम्मत के शह सवार जो घोड़े उठाएंगे
दुश्मन फलक भी होंगे तो सर को झुकाएंगे
तूफान बुलबुलों की तरह बैठ जाएंगे
नेकी के दौर उठ के बदी को दबाएंगे

मुस्लिम लीग और हिंदू महासभा के माध्यम से अंग्रेज 'फूट डालो और राज करो' तथा एक तबाह कर देने वाली साम्प्रदायिकता को फैला रहा था। अंग्रेजों की इस पूरी नीति की पोल खोलते हुए अकबर इलाहाबादी ने लिखा कि इस देश को गांधी ही बचा पाएंगे क्योंकि उनपर जनता का अथाह विश्वास है।

मदस्बा ख्वाहे गवर्मेन्ट अकबर अगर न होता
उसको भी आप पाते गांधी की गोपियों में

उर्दू कविता की यही आवाज दुर्गा सहायक सुरूर, ज्वाला प्रसाद वर्क, चकबस्त के काव्य में पाते हैं। स्वयं इकबाल इस दौर में हिमालय पर कविता लिख रहे थे। इसी दौर में दिनकर की हिमालय को संबोधित कविता बहुत प्रसिद्ध हुई।

राष्ट्रीय कविता के इस दौर में अजीब घटना घटी कि सिंधी की सूफीवादी कविता वेदांत से निकलकर सशक्त राष्ट्रवाद का स्वर अपनाने लगी। किशनचंद तीरथदास खत्री बेबस ने कांग्रेस आंदोलन का अपनी कविताओं से प्रचार शुरू किया। मराठी राष्ट्रीय सांस्कृतिक कविता का इतिहास 'तूतारी' (तुरही), 'नवा सिपाही', 'निशान' (झंडा) 'मूर्ति भंजन', 'स्फूति', 'गोपन' आदि क्रांति गीतों से जन–जन को देशभर में जगाती रही।

वामन, तिलक, रामचंद्र तांबे आदि ने भारत के इतिहास के साथ महाराष्ट्र की वीर वंश परंपरा का काव्यानुवाद प्रस्तुत किया।

7.5.5 गद्य साहित्य : जीवनी, आत्मकथा, निबंध

राष्ट्रीय चेतना के विकास में जीवनी और कथा साहित्य के साथ निबंध चिंतन परंपरा का योगदान अविस्मरणीय है। सभी भारतीय भाषाओं में नौरोजी, तिलक, गांधी और मार्क्स की जीवनियाँ और संस्मरण छपे। स्वयं गांधी की 'आत्मकथा', राजेंद्र प्रसाद की 'आत्मकथा', लाला लाजपतराय की जीवनी ने स्वाधीनता आंदोलन की विचार भूमि से जनता को परिचित कराया। राहुल जी ने मार्क्स और लेनिन की जीवनियाँ लिखीं। नेहरू ने 'भारत की खोज' लिखकर भारतीय जनता को इतिहास के प्रति नई दृष्टि दी। अनेक लोगों ने रानी दुर्गावती,

रानी लक्ष्मी बाई, 'पन्ना दाई' आदि भारतीय वीरांगनाओं के जीवन चरित्र लिखे। 1917 में प्रकाशित एक अनूदित उपन्यास के अंत में एक विज्ञापन दिया गया 'वीर चरितावली' शीर्षक से एक विचारमाला पढ़िए। बंकिम चंद्र चटर्जी ने कृष्ण चरित्र लिखा। राष्ट्रवादी वीरों में इसकी बड़ी ख्याति हुई। हिंदी के प्रसिद्ध लेखक पंडित जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी ने 1913 में इसका अनुवाद प्रकाशित कराया। सखाराम गणेश दंडेरकर के 'बीरेंद्र बाजीराव' का हिंदी अनुवाद हुआ। राजा राममोहन गोकुल ने 1917 में काशी नागरी प्रचारिणी सभा से 'नेपोलियन बोनापार्ट' शीर्षक से जीवनी प्रकाशित की। रामचंद्र वर्मा ने महात्मा गांधी, पंडित संपूर्णानंद ने देशबंधु चित्तरंजनदास, रामलाल वर्मा ने बालगंगाधर तिलक का जीवन चरित्र प्रकाशित किया। लाला लाजपतराय द्वारा उर्दू में लिखित 'गुइसप मैजिनी' का जीवन चरित्र बाबू केशवप्रसाद सिंह ने हिंदी में अनुवाद करके प्रकाशित कराया। इसके अतिरिक्त सुखसंपत्तराय भंडारी ने 'डॉ. सर जगदीश चंद्र बसु और उनके अविष्कार' शीर्षक से संक्षिप्त जीवनी प्रकाशित की, जिसका प्रकाशन मध्य भारत पुस्तक एजेंसी, इंदौर ने 1919 में किया। नवजागरण काल में स्वामी दयानंद, रामकृष्ण परमहंस, स्वामी रामतीर्थ, स्वामी श्रद्धानंद आदि की परिचयात्मक जीवनियाँ प्रकाशित हुई। आर्य समाज से संबंधित धार्मिक नेताओं की जीवनियाँ इन्द्र विद्या वाचस्पति ने लिखीं। बंगाल के क्रांतिकारी यतींद्रनाथ दास की संक्षिप्त जीवनी प्रकाशित हुई। इन्हीं दिनों अलीपुर बम केस में अन्यतम अभियुक्त उपेंद्रनाथ बनर्जी की आत्मकथा बंगला में 'निर्वासितेर आत्म कहानी' नाम से प्रकाशित हुई। इसका हिंदी अनुवाद उमादत्त शर्मा ने राजनीतिक षडयंत्र शीर्षक से प्रस्तुत किया। सीताराम चतुर्वेदी ने महामना पंडित मदनमोहन मालवीय शीर्षक से जीवनी (1937) में प्रकाशित की। पूरे देशभर में इस जीवनी का विशेष प्रभाव पड़ा क्योंकि मालवीय जी का नाम शिक्षा और विश्वविद्यालय के साथ जुड़ा था। कार्ल मार्क्स की रामवृक्ष बेनीपुरी द्वारा लिखित जीवनी तथा लाल बहादुर शास्त्री कृत 'श्रीमती क्यूरी' बहुत प्रसिद्ध हुई। इस प्रकार जीवनी और आत्मकथा साहित्य ने भारतीय जनता को नवीन तथ्यों से परिचित कराया। प्रसिद्ध पत्रकार बनारसीदास चतुर्वेदी ने देशभक्तों के अविस्मरणीय संस्मरण लिखें। यह पुस्तक 'संस्मरण' शीर्षक से प्रकाशित है। भवानीदयाल संन्यासी की पुस्तक 'गांधीजी के संस्मरण' भारतीय संस्मरण साहित्य को विशेष देन है। मन्मथनाथ गुप्त की पुस्तक 'क्रांति युग के संस्मरण' (1937) श्रीराम शर्मा की 'सन बयालीस के संस्मरण', विष्णु प्रभाकर की पुस्तक 'हम जिनके प्रहरी हैं' स्वाधीनता संग्राम के विशेष क्षेत्रों से संबंधित है।

भारतीय निबंध साहित्य ने विचारधारा के धरातल पर भारतीय मनुष्य को मुक्ति चेतना के लिए तैयार किया। ज्यादातर निबंध कुरीतियों और राजनैतिक, धार्मिक और आर्थिक अत्याचारों पर लिखे गए। असमिया में हेमचंद्र बरूआ का 'बहिरे रंगछंग भीतरे कौआभातरी' समाज की कुरीतियों पर तीखा व्यंग्यपरक निबंध है। बंगला में अक्षय कुमार दत्ता और ईश्वरचंद्र विद्यासागर ने झूठे मूल्यों पर प्रहार करते हुए नारी जागरण से संबंधित निबंध लिखे। गुजराती निबंध के प्रवर्तक दलपतराय और नर्मद ने सामाजिक कुरीतियों पर निबंध लिखे। हिंदी में भारतेंदु प्रताप नारायण मिश्र, बालकृष्ण भट्ट, बालमुकुंद गुप्त, महावीर प्रसाद द्विवेदी, माखनलाल चतुर्वेदी और माधव प्रसाद मिश्र के निबंधों ने एक नया विचार जगत पैदा किया। बालमुकुंद गुप्त ने 'शिव शंभु के चिट्ठे' लिखकर अंग्रेजी साम्राज्यवाद पर तीखा प्रहार किया। आगे चलकर इसी तरह का काम माधव राव सप्रे. विष्णु चिपलुणकर तथा महावीर प्रसाद द्विवेदी ने अपने निबंधों में किया। तमिल में वीरासामी चेट्टियार और बी.जी. सूर्यनारायण शास्त्री, अडिगल के नाम उल्लेखनीय हैं। इन निबंधकारों ने सामाजिक बुराइयों के प्रति सावधान करते हुए समाज सुधार और देशभक्ति का भाव जागृत किया। तेलगु में वीरेशलिंगम के निबंध देशभक्ति की प्रेरणा थे। बालमुकुंद गुप्त, बालकृष्ण भट्ट, प्रताप

नारायण मिश्र, अध्यापक पूर्ण सिंह, बाबू गुलाब राय की तरह कन्नड़ में ए.एन. मूर्तिराव तथा वी. सीतारामइया ने निबंध लिखे। मलयालम के निबंधकार राजाराम वर्मा ने साहित्य, विज्ञान और मानविकी के ऐसे विषयों पर निबंध लिखें जिन्होंने जनता के सोचने–समझने के स्तर को ऊपर उठाया। स्वाधीनता संग्राम के दिनों में निकलने वाली सभी पत्र–पत्रिकाएं विचारात्मक निबंधों को प्रकाशित करती थीं और इन निबंधों ने भारतीय व्यक्ति को एक ऐसी विचारभूमि प्रदान की जिसमें स्वदेशाभिमान और देशभक्तिपरक चिंतन प्रबल था। रामचंद्र शुक्ल और हजारीप्रसाद द्विवेदी के निबंधो ने मानवीय मुक्ति चेतना के क्षेत्र में वैचारिक क्रांति उत्पन्न की। साम्राज्यवादी शोषण के विरूद्ध सीधी अर्थ टंकार सुनाई देती है।

बोध प्रश्न–2

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग दस पंक्तियों में दीजिए।

1. भारतीय भाषाओं में पत्रकारिता का उदय किस दृष्टि से महत्वपूर्ण घटना है ?

....

....

....

....

2. नाटय विधा ने जनजागरण में किस प्रकार भूमिका निभाई ?

....

....

....

....

3. आधुनिक भारतीय कथा साहित्य के नवजागरणवादी स्वरूप का परिचय दीजिए।

....

....

....

....

4. आधुनिक भारतीय कविता में राष्ट्रीयता की अभिव्यक्ति किस प्रकार हुई ?

....

....

....

....

7.6 आधुनिक भारतीय साहित्य में व्यक्त राष्ट्रीयता का स्वरूप

7.6.1 राष्ट्रीय – सांस्कृतिक अस्मिता के प्रति नया दृष्टिकोण

भारतीय साहित्य की प्रवृत्तियों में एक प्रबल प्रवृत्ति रही है–राष्ट्रीय–सांस्कृतिक अस्मिता की पहचान, अभिव्यक्ति और नए मनुष्य को रचने का संघर्ष। यह नया मनुष्य स्वाधीनता संग्राम

की शक्ति से निर्मित हुआ है। इस मनुष्य पर गरम दल और नरम दल की विचारधाराओं का प्रभाव भी कम नहीं है। साथ ही यह पुरुष रामकृष्ण और शिव की परंपराओं से निर्मित अपनी सांस्कृतिक अस्मिता को भी पहचान देता है। नवीनचंद्र बनर्जी, रवींद्रनाथ टैगोर, मैथिलीशरण गुप्त, रामधारी सिंह दिनकर, भास्कर रामचंद्र तांबे, अब्दुल अदर आजाद, चिंतामणि महंती, भारतीदासन, पुट्टपा, वल्लतोल और जी. शंकर कुरूप आदि भारतीय कवियों ने रामायण और महाभारत को स्वाधीनता संग्राम के दिनों में कई रूपों में गाया है। पुरानी कथाओं में संदर्भगत अर्थव्यंजना नई है और इस अर्थ व्यंजना के भीतर से भारतमाता का एक संपूर्ण चित्र उभरता है। माखनलाल चतुर्वेदी की कविता जैसे इस भारतीय चित्र को मुकम्मल करती है –

हो मुकुट हिमालय पहनाता
सागर जिसके पद धुलवाता
यह बँधा बेड़ियों से मंदिर
मसजिद, गुरुद्वारा मेरा है।

कवियों ने देश को खंड और प्रदेश के रूप में नहीं देखा। अखंडता, एकता और समग्र के प्रति सम्मान भाव को लेकर ही भारतीय विकसित हुआ है। इस साहित्य में विरूद्धों का सामंजस्य भी इस अर्थ में हुआ कि राम और शिव की परंपराएं दार्शनिक चिंतनधाराओं को आत्मसात करती हुई एकाकार होती गई। अपने अतीत से वर्तमान को प्रेरणा देने की शक्ति ने भारतीय काव्यात्मकता को उदान्त भावभूमि पर स्थित किया।

7.6.2 पराधीनता और दमन के प्रति विद्रोही स्वर

भारतीय स्वाधीनता संग्राम जैसे–जैसे आगे बढ़ता गया वैसे–वैसे भारतीय कविता की शक्ति–चेतना में भी उभार आता गया। भारतीय राजनीति में जो काम स्वाधीनता संग्राम करता है भारतीय कविता में वही काम राष्ट्रीय–सांस्कृतिक नवजागरण की चेतना करती है। नवजागरण की इस चेतना में पराधीनता और दमन के विरुद्ध संघर्ष और विद्रोह का भाव मिलता है। मराठी की कविता हो या हिंदी की कविता, विवशता अथवा निराशा का भाव इसमें नहीं है। चेतना के स्तर पर यह उत्साह और तेजोद्दीप्त ऐतिहासिक परंपराओं के विस्फोट की कविता है। पूरे भारतीय साहित्य में संघर्ष और विद्रोह से यह भाव उदित हुआ है कि जाति, धर्म और प्रदेश से यह देश बड़ा है। यह अखंड भारत हमारा है, यह हमारी पावन मातृभूमि है और इसकी रक्षा हमें हर कीमत पर करनी है। हमारी मातृभमि पर आकर विदेशी शक्तियाँ शासन करें, शोषण करें, दर्शन, भाषा, संस्कृति और इतिहास को भ्रष्ट करें–यह लज्जाजनक स्थिति है। रामनरेश त्रिपाठी का यह कथन महत्वपूर्ण है–

तुम अपने सुख के स्वराज्य के हो न पूर्ण अधिकारी
यह मुनष्यता पर कलंक है, हे प्रिय बंधु तुम्हारी।

पराधीनता की बेड़ियों में जकड़ा हुआ देश भावनात्मक स्तर पर संघर्ष का बीज–वपन करता है और प्राणों की आहुति देकर पराधीनता की लौह श्रृंखला को छिन्न–भिन्न कर देने का उदात्त भाव 'एक भारतीय आत्मा' (माखनलाल चतुर्वेदी), निराला, नवीन, दिनकर, पुट्टपा, रवींद्रनाथ टैगोर, भारतीदासन आदि सभी भारतीय रचनाकारों को बहुत भीतर तक मथता रहता है। माखनलाल चतुर्वेदी 'हिमतरंगिणी' में जो बात कहते हैं वही प्रेमचंद अपने उपन्यासों में जयशंकर प्रसाद अपने नाटकों और कहानियों में, निराला अपने संस्मरण और रेखाचित्रों में और महादेवी वर्मा अपने गद्य में गहन अर्थ–व्यंजकता से उठाती है। कहना न

होगा कि जैसे–जैसे भारतीय सर्जनात्मकता में बलिदान और वीरता का स्वर शक्तिशाली होता गया, वैसे–वैसे भारतीय जन–जीवन में भी विद्रोह की एक प्रचंड ज्वाला भड़कती गई। भारतीय जन–मानस जैसे सब कुछ कहने को तैयार हो गया–

तन में आग आंख में मस्ती
ओठों पर मनचाही
कैसे रुकूँ देश सेवा में
मैं हूँ एक सिपाही।

(माखनलाल चतुर्वेदी)

'मैं हूँ एक सिपाही' की भावना भारतीय मानस का वह बिंब है जो हमारी पूरी मानसिकता को मूर्त और प्रत्यक्ष करता है। उर्दू गद्य में देश को चमन के रूप में उभारा गया है और मराठी उपन्यासों तथा गद्य (जैसे चिपलूणकर का गद्य) में सामाजिक क्रांति का अभिन्न स्वर है। प्रेमचंद के उपन्यास 'रंगभूमि' और 'गोदान', रवींद्रनाथ का उपन्यास 'गोरा', सामाजिक–राजनीतिक चिंतन का वह दर्पण है जिसमें पूरा देश अपनी छवि देख सकता है। इसी समय बापू जी ठोमरे 'अरूण', 'संध्या तारिका', 'धर्मवीर' जैसी अमर कविताएँ लिख रहे हैं जिनमें उपनिवेशवाद के प्रति एक गहरी घृणा का भाव है। जयशंकर प्रसाद के राष्ट्रीय स्वाभिमान से भरे गीतों में प्रकृति सौंदर्य के दृश्य आते हैं वैसे ही दृश्य रवींद्रनाथ और ठोमरे की कविताओं में दिखाई देते हैं। यहाँ प्रकृति भक्ति, देशभक्ति का संपूर्ण पर्याय है। कहना न होगा कि पराधीनता और दमन के प्रति एक विद्रोही स्वर भारतीय कविता में प्रवृत्ति के रूप में निरंतर उभरता रहा है।

7.6.3 जनक्रांति का हिंसक–अहिंसक रूप–रंग

उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध और बीसवीं शताब्दी के पाँच–छह दशकों का सृजन स्वच्छंदतावादी तत्वों की एक विशेष पहचान बनता है। भारतीय साहित्य की यह स्वच्छंद दृष्टि बालमीकि, व्यास और कालिदास से प्रेरणा ग्रहण करती है। ऐसा प्रतीत होता है कि हमारी राष्ट्रीय–सांस्कृतिक सर्जनात्मकता बाल्मीकि और कालिदास की राष्ट्रीय चेतना का नवीन रूपांतरण कर रही है। फ्रांसीसी राजक्रांति और बोल्शेविक क्रांति का प्रभाव दिखाई देता है, किंतु यह प्रभाव भीतर–बाहर जज्ब होकर नहीं बिंधा है, बल्कि चिंतन पर ऊपरी पपड़ी की तरह जमा है जो प्रभाव भीतर से उमड़ रहा है वह बाल्मीकि और कालिदास राष्ट्रीय क्षमता का ही एक रूप है। बहुजातीय देश एक राष्ट्र की हैसियत से इतिहास में उभरता है और इस ढंग का उभार विश्व में और कहीं नहीं दिखाई देता। यहाँ राष्ट्रीयता एक जाति द्वारा दूसरी जातियों पर राजनीतिक प्रमुख कायम करके स्थापित नहीं हुई वह मुख्यतः संस्कृति और इतिहास की देन है। इस दृष्टि से डॉ. रामविलास शर्मा का यह कथन स्मरणीय है –

> 'इस संस्कृति के निर्माण में इस देश के कवियों का सर्वोच्च स्थान है। .... इस देश की संस्कृति से रामायण और महाभारत को अलग कर दें तो भारतीय साहित्य की आंतरिक एकता टूट जाएगी। किसी भी बहुजातीय राष्ट्र के सामाजिक विकास में कवियों की ऐसी निर्णायक भूमिका नहीं रही जैसी इस देश में व्यास और बाल्मीकि की है। ...... इसीलिए किसी भी देश के लिए साहित्य की परंपरा का मूल्यांकन उतना महत्वपूर्ण नहीं है जितना इस देश के लिए है।' (परंपरा का मूल्यांकन, पृ. 15)।

भारतीय जाति के सांस्कृतिक इतिहास की रूपरेखा भारतीयता के एक निश्चित ढाँचे में विकसित हुई है। रवींद्रनाथ टैगोर ने एक मर्म की बात पकड़ी है कि बाल्मीकि उस काव्य

परंपरा को भारतीय साहित्य में जन्म दे रहे थे जो बहुत गहराई से मानवतावादी है। देवत्व को अब बाहर खोजने की नहीं, भीतर खोजने की प्रक्रिया शुरू होती है। आधुनिक सृजन मनुष्य के भीतर जगे हुए देवता को सामाजिक जागरण के लिए उकसाता है। सामाजिक जागरण ने प्रश्नों और चुनौतियों को नया रूप दिया। महाराष्ट्र में गरम दल के कवि नागेश और पांडुरंग रेंदालकर ने क्रांतिकारी गीत लिखे। हिंदी में श्याम नारायण पांडेय, सोहनलाल द्विवेदी, गया प्रसाद सनेही 'त्रिशूल', बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' के गीतों का स्वर मराठी के गीतों से बहुत भिन्न नहीं है। उर्दू में मजाज जोश, फैज, मीराजी, बंगला में मोहित मजूमदार, जीवनानंद दास, काजी नजरूल इस्लाम आदि का क्रांति स्वर उल्लेखनीय है। नजरूल क्रांति चेतना के गायक के रूप में उभरकर देश–भर में गूँज उठे और उनके सृजन का अनुवाद देश की विभिन्न भाषाओं में फटाफट हुआ। उदाहरण के लिए सिंधी में प्रो.डी.के. मशारामाणी ने नजरूल के सृजन का बड़ा रोचक अनुवाद 'बागी' शीर्षक से प्रस्तुत किया। यहाँ यह तथ्य ध्यान देने योग्य है कि रवींद्रनाथ टैगोर और नजरुल इस्लाम ने भारतीय सृजन चेतना को किसी न किसी रूप में अवश्य प्रभावित किया। ऐसे कम ही भारतीय रचनाकार नहीं होंगे जिस पर इन दो कवियों का स्वर रंग न हो।

भारतीय राष्ट्रीय सांस्कृतिक सृजन का अहिंसक रूप अनेक छवियों में निखर कर सामने आया। प्राचीन वीर और भावना और नवीन वीर भावना–प्रधान सृजन में एक बड़ा अंतर यह है कि प्राचीन सृजन में शत्रु के संहार का भाव था किंतु इस नवीन सृजन में शत्रु संहार का भाव नहीं है। आक्रमण का स्थान यहाँ आत्म–बलिदान ने ले लिया है। गांधी विचार दर्शन में डूबे हुए कवि माखनलाल चतुर्वेदी ने लिखा है –

रक्त है ? या नसों में क्षुद्र पानी ?
जाँच कर तू शीश दे देकर जवानी।

(हिमकिरीटिनी)

देश भक्तों ने प्राणों के उत्सर्ग को मातृपूजा का भाव स्वीकार किया। सियाराम शरण गुप्त का 'उन्मुक्त', रामनरेश त्रिपाठी का 'स्वप्न', उमाशंकर जोशी का 'गंगोत्री, कृष्णलाल श्रीधरानी का 'कोडिया', प्रीतम सिंह का 'कत्त ककूजा', शुद्धानंद भारती का 'भारत शक्ति', सुब्बाराव का 'ललिता' आदि काव्य संग्रह गांधी विचार दर्शन की सर्जनात्मक अभिव्यक्ति है। भारतीय अहिंसक वीरता का रूप गांधी में साकार हुआ है। विश्व ने इतने लघु शरीर में इतना प्राणवान व्यक्तित्त्व पहली बार देखा था। इस अद्भुत संत योद्धा ने भारतीय इतिहास की गति बदल दी और हमारी चेतना को एक ऐसी कवरट दी कि हमने अपनी परंपरा को पहचाना। महात्मा फुले, नरसी मेहता, कबीर, जायसी, एकनाथ, प्राणनाथ की पहचान भारतीय चिंतन में नए सिरे से उभरने लगी। भारतीय वैष्णव चिंतन परंपरा का मंत्र जैसे गांधी में नया रूप लेकर आया।

वैष्णव जन तो तेने कहिए पीर पराई जानें रे
पर दुखे उपकार करें ते मन अभिमान न मानें रे।

गांधी अहिंसक जननायक होकर उभरे और बौद्ध–जैन तथा वैष्णव चिंतन परंपराओं ने उनमें अपना अर्थ पाया। भारतीय साहित्य के इस चिंतनात्मक स्वर में रौद्र नहीं, करूण भाव रहा है। फिर निराशा के स्वर को ठेलकर गांधी ने मुक्ति संग्राम में आस्था का जीवन दीप प्रज्वलित किया। इसीलिए पूरा भारतीय साहित्य आस्थावादी जीवन मूल्यों से भर गया।

7.6.4 प्रकृति–प्रेम के माध्यम से राष्ट्रीयता की अभिव्यक्ति

भारतीय रचनाकार की राष्ट्रीयता में सामाजिक स्वाधीनता और वैयक्तिक विकास की भावना यदि एक ओर रूढ़िवाद से विद्रोह के रूप में सामने आयी तो दूसरी ओर प्रकृति प्रेम के रूप में। यह समझना बहुत जरूरी है कि प्रकृति प्रेम से राष्ट्रीयता और सामाजिक स्वाधीनता का सीधा संबंध हैं। प्रायः हम स्वच्छंद प्रवृत्ति के कवि और स्वच्छंतावादी कवियों की प्रेरणा प्रकृति चिंतन में पाते हैं। यह महत्वपूर्ण तथ्य है कि आधुनिक भारत में राष्ट्रीयता और देशभक्ति की भावना को प्रकृति प्रेम ने पुष्ट और प्रेरित किया। राष्ट्रीय जागरण युग की अनेक रचनाओं (उपन्यास, कहानी, कविता, नाटक आदि) में यह बात साफ दिखाई देती है कि राष्ट्रीयता की भावना प्रकृति प्रेम से ही उत्पन्न हुई और प्रकृति प्रेम से ही प्रेरणा पाकर भावुक हृदय देशोद्धार के लिए प्रवृत्त हुए। देश प्रेम का आरंभ प्रकृति प्रेम से किस तरह होता है, इस बात को समझने के लिए आचार्य रामचंद्र शुक्ल के इस कथन पर हमारा ध्यान जाना चाहिए –

'यदि किसी को अपने देश से प्रेम है तो उसे अपने देश के मनुष्य, पशु, पक्षी, लता, गुल्म, पेड़, पत्ते, कण, पर्वत, नदी, निर्झर सबसे प्रेम होगा। सबको वह चाह भरी दृष्टि से देखेगा। सबकी सुधि करके विदेश में भी आंसू बहाएगा। जो यह भी नहीं जानते कि कोयल किस चिड़िया का नाम है, यदि वे दस बने–ठने मित्रों के बीच प्रत्येक भारतवासी की औसत आमदनी बताकर देश प्रेम का दावा करें तो उनसे पूछना चाहिए कि भाइयों बिना परिचय का यह प्रेम कैसा ? (चिंतामणि, भाग 1)

आधुनिक राष्ट्रीयता ने अपनी पहचान प्रकृति प्रेम के रूप में बनाई और आधुनिक युवक प्रकृति में ही समा गया। आधुनिक युवक घुटते हुए समाज को छोड़कर उन्मुक्त प्रकृति की ओर गया। क्यों गया, इसका उत्तर रामनरेश त्रिपाठी का 'पथिक' अपनी प्रिया को देता है –

जहाँ श्रमी से क्रयी–विक्रयी वेश्या सुखी सती से
निर्जन वन है परम सुखद रूस न्यायरहित जगती से।

जहाँ प्रकृति का राज्य है, वहाँ न केवल अबाध स्वच्छंदता है बल्कि अक्षय सौंदर्य भी है।

'जाना नहीं चाहता हूँ मैं क्षण–भर को भी जग में
चलता रहूं यही इच्छा है सदा प्रेम के मग में
यह इच्छा है नदी और नालों का वेश धरूँगा
गाता हुआ गीत मस्ती के पर्वत से उतरूँगा।

'पथिक'

नए युवक को पुरानी सामंतवादी व्यवस्था के घुटते हुए वातावरण की अपेक्षा मुक्त प्रकृति क्षेत्र मिला। पशु–पक्षियों की वह पहचान मिली जिसमें जीवन के जागरण का स्वर है –

प्रथम रश्मि का आना रंगणि तूने कैसे पहचाना
कूक उठी सहसा तरू वासिनि गा तू स्वागत का गाना।

'सुमित्रानंदन पंत'

सामाजिक और वैयक्तिक स्वाधीनता की तलाश में मनुष्य प्रकृति के प्रांगण में आया। पुरानी समाज व्यवस्था में खोई हुई वैयक्तिकता उसके व्यक्तित्त्व को घेरे थी। लेकिन नई समाज चेतना प्रकृति को नए संदर्भो से राष्ट्रीयता की अर्थध्वनि देती थी। जयशंकर प्रसाद ने लिखा–

नव सुरधुन से पंख परवारे शीतल मलय समीर सहारे
उड़ते खग जिस ओर मुँह किए समझ नीड़ निज प्यारा
अरूण यह मधुमय देश हमारा।

'चंद्रगुप्त' नाटक से

प्रकृति प्रेम के माध्यम से नवीन सामूहिकता और सामाजिकता को प्राप्त करने के लिए रचनाकारों ने नवीन मानसिक तैयारी के साथ प्रकृति परिवेश निर्मित किया और इसी परिवेश निर्मित के भीतर उसे जन्मभूमि के प्रति प्रेम और दायित्व का अनुभव हुआ। सच्ची स्वाधीनता से ही स्वस्थ राष्ट्रीयता का विकास संभव है। रीतिवादी, समाजवादी या व्यक्तित्व को कुचलने वाली सामाजिकता से राष्ट्रीय स्वाधीनता का विकास नहीं हो सकता। फलतः भारतीय रचनाकारों ने व्यक्तिगत स्वाधीनता को महत्व देते हुए राष्ट्रीय स्वाधीनता की ओर कदम उठाया।

भारतीय साहित्य के आधुनिक स्वच्छंदतावाद ने प्रकृति को इतना महत्व दिया कि सृजन में प्रकृति को स्वतंत्र सत्ता के रूप में ही प्रतिष्ठित किया गया। आधुनिक विज्ञान की चेतना भी प्रकृति के सौदर्य दर्शन का उद्घाटन करती है विज्ञान ने विवेक से रहस्योद्घाटन किए। बाल्मीकि और कालिदास का प्रकृति काव्य कवियों की प्रेरणा बना। इन कवियों को लगा कि जीवन का प्रकाश प्रकृति से ही फूट रहा है। रवींद्रनाथ की 'निर्झरेर स्वप्नभंग' इसी आलोक के प्रस्फुटन का अहसास कराती है –

'आज ए प्रभाते रविरकर
केमने पशिलो प्राणेरपर
केमने पशिलो गुहार आंधारे प्रभात–परिवरगान
ना जाने कैनो रे ऐत दिन परे जागणिया उठिलो प्रान'

प्रभात की पहली किरण जैसे रवींद्र को चौंकाती है। वैसे ही हिंदी कवि पंत को भी चौंकाती है। 'प्रथम रश्मि' नामक कविता में वे लिखते है –

'खुले पलक फैली सुवर्ण छबि
जगी सुरभि डोले मधुबाल
स्पंदन कंपन औ नवजीवन
सीखा जग ने अपना नाम'

पंत ने भारतीय प्रेरणा शक्ति गंगा को नवीन सौंदर्यबोध से नवजागरण के रंग में उजला करते हुए प्रस्तुत किया –

तापस बाला गंगा निर्मल
मृदु जल से दीपित मृदु करतल
गोरे अंगों पर सिहर–सिहर
लहराता तार तरल सुंदर
चंचल अंचल सा नीलांबर'

भारतीय कवि की यह सर्जनात्मक कल्पना धरती और आकाश को एक कर रही है। यह अभूतपूर्व खुलापन प्रकृति के नए भावबोध से उत्पन्न हुआ है। प्रकृति संपूर्ण भारतमाता की पार्वती छवि का पर्याय बन गई है। निराला ने 'राम की शक्ति पूजा' में लिखा –

'पार्वती कल्पना है इसकी मकरंद बिंदु
गरजता चरण प्रांत पर सिंह वह नहीं सिंधु
दस दिस समस्त हैं हस्त और देखो ऊपर
अंबर में हुए दिगंबर अर्जित शशि–शेखर'

भारतीय कवियों ने भारत माता के संपूर्ण सौंदर्य को प्रकृति में पाया और इस प्रकृति चेतना ने उसकी दृष्टि ही बदल दी। यही बदली हुई प्रकृति दृष्टि 'सृजलाम सुफलाम् मलयज शीतलाम मातरम / बंदे मातरम बंदे मातरम' गीत का प्राण भाव बनी। बंगला के स्वच्छंतावादी और हिंदी के 'छायावादी' रचनाकारों ने प्रकृति की विराटता को राष्ट्रीयता का गरिमामय स्वरूप प्रदान किया। महादेवी वर्मा ने लिखा–

तारकमय नव वेणी बंधन
शीश फूल शशि का कर नूतन
रश्मिवलय सितधन अवगुंठन
मुक्ताहल अभिराम बिछा दे
चितवन से अपनी
पुलकती आ वसंत रजनी

भारतीय कवियों ने प्रकृति पर चेतना का आरोप करके उसे मातृशक्ति मातृभूमि के रूप में देखा और उसमें एक ऐसी दृष्टि पाई जो जीवन को बृहत्तर बनाती है। कोकिल, चातक, मोर, पपीहा, कृष्णा, कावेरी, गोदावरी, गंगा, नर्मदा, वर्षा, टेसू, हिमालय के शत–शत बिंबों से भारतीय सर्जना पट गई। रामनरेश त्रिपाठी ने लिखा–

मनमोहिनी प्रकृति की जो गोद में बसा है
जिसका मुकुट हिमालय वह देश कौन सा है

गंगा, हिमालय जैसे प्राकृतिक प्रतीक पूरी भारतीय अस्मिता को सामने लाने लगे। इनके माध्यम से हमारी सांस्कृतिक संवेदना ने एक नवीन अंतर्दृष्टि पाई और इस नवीन अंतदृष्टि ने राष्ट्रीयता के छवि चित्र को सुलभ और निखरे रूप में प्रस्तुत किया जैसे –

हिमालय के आंगन में जिसे प्रथम किरणों का दे उपहार
उषा ने हँस अभिनंदन किया और पहनाया हीरक हार।

x x x x x x

जिएं सदा उसी के लिए यही अभिमान रहे यह हर्ष
निछावर कर दें हम सर्वस्व, हमारा प्यारा भारतवर्ष ।

'जयशंकर प्रसाद'

मेरे नागपति मेरे विशाल
मेरी जननी के हिमकिरीट
मेरे भारत के भव्य भाल।
तू पूछ अवध से राम कहाँ
वृंदा बोलो, घनश्याम कहाँ

रे मगध कहाँ मेरे अशोक
वह चंद्रगुप्त बलिधाम कहाँ

'दिनकर'

भारतीय कवियों ने प्रकृति के माध्यम से भारतीय इतिहास और संस्कृति की पहचान का सिलसिला शुरू किया। इतिहास की पहचान किसी भी जाति को आत्मालोचन और आत्मविश्वास की शक्ति देती है और यह शक्ति भारत माता के चित्र को जगाती है। निराला ने लिखा –

भारति जय विजय करे
कनक शस्य कमल धरे
लंकापदतल शतदल
गर्जित उर्मि सागर जल
धोता तद चरण धवल
स्तव कर बहु अर्थ भरे।

निराला का क्रांतिकारी बादल 'घन गरजे, जन गरजे' का स्वर लेकर केदारनाथ अग्रवाल की कविता में फूट पड़ा। भारत की कविता स्वाधीनता का युद्ध कर रही है और उसके भीतर एक व्यापक जन क्रांति की चेतना उमड़ रही है–

'आज मंडलाकार मेघ सा उमड़ घुमड़ कर
शासन को थर्राने वाला
कोटि–कोटि कंठों का जनमत
भारत की आजादी के हित
ओजपूर्ण गर्जन करता है।'

'गुलमेंहदी', केदारनाथ अग्रवाल

हिंसा–अहिंसा का सवाल एक तरफ छोड़कर सामंत विरोधी संग्राम में भारतीय किसान कैसे आगे बढ़ा। इस प्रकार के भाव की अभिव्यक्ति 'युग की गंगा' नामक संकलन की कविताओं में मिलती है। भारतीय साहित्य की राष्ट्रीयता की प्रकृति दृष्टि को समझने के लिए यह कृति एक बहुमूल्य दस्तावेज है। भारतीय कवि ने प्रकृति को सामाजिक–राजनीतिक उद्धार की संभावना की शक्ति के रूप में भी देखा है। भारतीय जनता के आत्म–विश्वास से भरे हुए शत–शत बिंब राष्ट्रीय–सांस्कृतिक काव्य के बिंबों में दिखाई देते हैं –

'एक बीते के बराबर
यह हरा ठिंगना चना
बाँधे मुरेठा शीश पर
छोटे गुलाबी फूल का
सज कर खड़ा है।'

'फूल नहीं रंग बोलते हैं' केदारनाथ अग्रवाल

कहा जा सकता है पृथ्वीपुत्र और वनस्पति जगत की संवेदना को एकाकार करते हुए कवियों ने प्राकृतिक परिवेश का चित्रण किया है और इस परिवेश के भीतर कालिदास–वाल्मीकि और रवींद्रनाथ टैगोर एक–साथ बोलते सुनाई देते हैं।

7.6.5 भविष्य के प्रति आस्था और उल्लास की अभिव्यक्ति

दादाभाई नौरोजी तिलक, लाला लाजपत राय, गोखले, गांधी आदि के नेतृत्व में देश ने उत्साह, आस्था और आल्हाद को रचनात्मक शक्ति के रूप में अनुभव किया। भारतीय राष्ट्रीयता ने अतीत गौरव के गान को अपने वर्तमान में नया भविष्य भरने के लिए उमंग से गाया। भारतीय साहित्य ने भारतभूमि की वंदना अनेक छवियों में की और इन छवियों ने भारतीय जन–मानस पर जमे विषाद को धो डाला। भारतीय राष्ट्रीयता का गांधी युग आलोक से भरा हुआ है। विजय देव नारायण साही ने लिखा है –

> 'सत्याग्रह युग विराट नाटकीयता का युग है। उस युग के बारे में पढ़कर ही हम रोमांचित होने लगते हैं। फिर उस समय जिंदा होना और उसकी लय को महसूस करना स्वर्ग में रहने के बराबर ही रहा होगा।'
>
> **(छठवाँ दशक, पृ. 268)**

राष्ट्रीयता की हवाओं ने परिवेश में ही 'झंझा झकोर गर्जन' नहीं की है बल्कि इतिहास की उत्ताल तरंगों के ऊपर भी एक ऐसी गति पैदा की जिससे हमारे इतिहास ने एक जबरदस्त अंगड़ाई ली। राष्ट्रीयता से ऐसा अनुभव हुआ जैसे अग्नि बाणों से आकाश भर गया है। जयशंकर प्रसाद के नाटकों की राष्ट्रीयता एक प्रकार से उस भारतीयता का प्रतीक है जिसमें पूरा स्वाधीनता आंदोलन इतिहास रथ को आगे खींचता हुआ दिखाई देता है। इसमें एक ही ध्वनि निकल रही है –

> 'स्वयंप्रभा समुज्वला स्वतंत्रता पुकारती'
>
> **'चंद्रगुप्त'**
>
> या फिर 'स्कंदगुप्त' नाटक की यह प्राण ध्वनि
>
> 'निछावर कर दें हम सर्वस्व हमारा प्यारा भारतवर्ष'

सर्वस्व त्याग के साथ हमारा प्यारा भारतवर्ष का बीज भाव भारतीय राष्ट्रीयता की मूलभूमि है। इसलिए राष्ट्रीयता में नस्लवाद, सम्प्रदायवाद का कोई स्वर नहीं मिलता। दो–दो विश्व युद्धों के बीच से यह कविता गुजर रही है लेकिन राष्ट्रीयता व्यापक अर्थ में देशभक्ति को ध्वनित करती है क्योंकि गांधी के चिंतन में ही मानव–घृणा का भाव नहीं है। भारतीय सृजन ने नैतिक मानवीय मूल्य और सांस्कृतिक बोध के स्तर पर मनुष्य को यह भरोसा दिलाया कि आगे का मार्ग अंधकारपूर्ण नहीं है। उमाशंकर जोशी (गुजराती), विनायक कृष्ण गोकाक (कन्नड़), चिपलूणकर (मराठी), जीवनानंददास (बंगला), माखनलाल चतुर्वेदी (हिंदी), रामधारी सिंह दिनकर (हिंदी) जैसे रचनाकारों के सृजन में निराशा का स्पर्श तक नहीं है। कारण, राष्ट्रीय आंदोलन की मुख्य भावधारा एक शक्ति तरंग के रूप में प्रकट होती है जिसमें हर कीमत पर साम्राज्यवाद और उपनिवेशवाद को इस देश से बाहर कर देने का अरमान है। कांग्रेस आंदोलन की सभी सहयोगी संस्थाएं और प्रगतिशील आंदोलन की उभरती हुई शक्तियाँ, दोनों मिलकर एक ऐसी चट्टानी आस्था को जन्म देती है कि उसमें निराशा को स्थान नहीं मिल पाता। प्रेमचंद का उपन्यास 'रंगभूमि' इसी मानसिकता की भारतीय अभिव्यक्ति है। परिवर्तन की गति इतनी तेज है कि अंतः सलिला की सतह पर तूफान पछाड़ें खाता है लेकिन गहराई में भारतीय मानस नए आजादी के स्वर्णिम भविष्य की तैयारी करता है। गांधी, सुभाष और जयप्रकाश नारायण का नेतृत्व भारतीय जनता के लिए परिवर्तनकारी ही नहीं क्रांतिकारी भी था। भारतीय सृजन मूलतः इसी मानसिकता का भावानुवाद कहा जा सकता है। इस युग के भी रचनाकारों–चाहे वे काजी नजरूल इस्लाम हो सुब्रह्मण्यम भारती सभी के–सृजन में शक्ति के उठे हुए लहू की धड़कन सुनाई देती है। एक ऐसे मनुष्य का

बिंब यह सृजन निर्मित करता है जिसमें हर मुसीबत को मुस्कराहट से झेल लेने की तमन्ना है। नतीजा यह हुआ है कि इस भारतीय राष्ट्रीयता में मात्र आदर्शवादी स्वर ही नहीं है लघु के साथ महत विचारों की सशक्त अभिव्यक्ति मिलती है। सत्याग्रह युग की चेतना भारतीय भाषाओं के साहित्य में एक ऐतिहासिक अनुभव के साथ हिंदुस्तान के उस व्यक्तित्त्व को गढ़ती है जिसका पूरा मिजाज आगे–बढ़ो, आगे–बढ़ो की आंतरिक ध्वनि लिए हुए है। सत्याग्रह युग की इस चेतना में जो स्वच्छंदतावादी स्वर सुनाई देता है उसके पीछे हमारे इतिहास की वही चेतना काम करती है जिसमें मुक्ति भावना की आंतरिक आकांक्षा है। इसलिए राष्ट्रीयता के भीतर फूटता स्वच्छंदतावाद पश्चिमी ढंग का नहीं है, उसकी मूल मनोभूमि 'रामायण' और 'महाभारत' की परंपरा की चेतना से उठान पाती है।

7.6.6 देशभक्ति और जनजागरण का प्रकाश

भारत में राष्ट्रीयता का विकास एक सुदीर्घ ऐतिहासिक प्रक्रिया का परिणाम है। इस प्रक्रिया में आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक कारण मौजूद है और यह प्रक्रिया अभी तक समाप्त नहीं हुई है। विदेशी इतिहासकार भारतीय राष्ट्रीयता को और उससे जुड़ी राष्ट्रभक्ति की भावना को समझने में असमर्थ रहे हैं। अंग्रेजी में 'नेशन' के समानांतर एक शब्द और है–'नेशनेलिटी'। इन दोनो में स्पष्ट भेद करना कठिन है। डॉ. रामविलास शर्मा ने लिखा है 'हिंदी में कुछ लोग 'नेशन' के पर्यायवाची रूप में 'राष्ट्र के अलावा 'राष्ट्रीयता' का व्यवहार करते हैं जहाँ अंग्रेजी में बहुवचन–'नेशनेलिटीज' होगा वहाँ हिंदी में राष्ट्रीयताएं लिखेंगे। इस दृष्टि से देखने पर भारत में अनेक राष्ट्रीयताएं दिख सकती है। लेकिन अगर हम भारतीय दृष्टि से देखते हैं तो राष्ट्र एक समग्र देश प्रेम की अवधारणा है और साहित्य में 'नेशन' शब्द, जिस अर्थ में प्रयुक्त होता है उसके लिए उचित शब्द होगा 'जाति'। भूलना नहीं चाहिए कि राष्ट्र शब्द से भूमि का भी बोध होता है। जबकि नेशन शब्द से केवल किसी भूमि खंड के निवासियों का बोध होता है। 'राष्ट्र' और 'जाति' को अलग–अलग रखने से हम उस उलझन से बच सकते हैं जो 'नेशन' शब्द के व्यवहार से उत्पन्न होती है। मुख्य बात यह है कि किसी देश में रहने वाली जातियाँ आपस में एक–दूसरे से किस तरह का व्यवहार करती हैं। एक साथ रहने के कारण उनकी कोई सामान्य ऐतिहासिक परंपराएं निर्मित हुई हैं या नहीं। भारत की राष्ट्रीयता की भावना के विवेचन के लिए यूरोप के किसी भी देश का उदाहरण सामने रखना उचित नहीं है। अगर रखना ही है तो स्विटजरलैंड का उदाहरण रखना चाहिए। भारत में भरत, कुरू, पांचाल, आदि अनेक गण समाज थे। बौद्धकाल में जिन्हें महा जनपद कहा जाता था, वे लघु जातियों के प्रदेश थे। आज भी ब्रज, अवध, बुंदेलखंड आदि इन्हीं लघु जातियों वाले प्रदेशों के अवशेष हैं। इन्हीं लघु जातियों से आधुनिक हिंदी जाति का निर्माण हुआ है। आज के भारत में बंगला, मराठी, तमिल, कन्नड़ आदि भाषाएं बोलने वाली अनेक जातियाँ रहती हैं। वैदिक काल में महाभारत काल में और बाद में भी 'राष्ट्र' शब्द का प्रयोग यहाँ होता आया है और इस 'राष्ट्र' शब्द का अर्थ है देश या वह भूमि जिस पर कोई मानव समुदाय रहता आया है। ऐसा भी हुआ है कि जनपदों, महाजनपदों के समूह को राष्ट्र की संज्ञा दी गई है। संस्कृत में 'वर्ष' शब्द इसी ढंग का है और उसी से 'भारतवर्ष' शब्द बना है। भारत एक राष्ट्र है। छोटे–छोटे राज्य आपस में युद्ध और प्रेम के संबंध में बंधे हैं। भारतीय राज्यों के सांस्कृतिक संबंधों की परिधि बहुत दृढ़ और व्यापक है।

अंग्रेजों से मुक्ति पाने के लिए भारत ने जो स्वाधीनता संघर्ष शुरू किया वह एक राष्ट्र का सम्मिलित संघर्ष है जिसमें राष्ट्रीय एकता की पूरी दृष्टि आधुनिक काल में दिखाई देती है। यह अंग्रेजों की कृपा नहीं है कि भारत में राष्ट्रीय एकता से एक व्यापक देशभक्ति की भावना

जन्म लेती है। बल्कि एक सुविचारित सत्य है कि यह हमारी सांस्कृतिक–ऐतिहासिक परंपराओं की आंतरिक पुकार का प्रतिफलन है। इसमें प्राचीन मध्ययुगीन से अलग नहीं है और न मध्ययुगीन आधुनिक से। इसीलिए हमारी देशभक्ति भावना में अतीत गौरवगान को बहुत बड़ा स्थान मिला है। देश के प्रति भक्ति या रागात्मक संबंध का अर्थ है– देश के वन–उपवन, पहाड़–पठार, खेत, नदी, देशवासी–सभी के साथ एक गहरा अटूट आंतरिक लगाव। जब हम अपनी सत्ता को देश से पृथक करते ही नहीं, तब देश–प्रेम या देशभक्ति का जन्म होता है। जैसे भक्त सब कुछ प्रभु को अर्पित कर देता है वैसे ही देश के प्रति प्रेम या भक्ति रखने वाला हृदय देश के चरणों में सब कुछ अर्पित कर देता है। यही अर्पण भावना शीशदान कराती है, यही भावना देश को पराधीनता और शोषण से मुक्ति दिलाना चाहती है, देशभक्ति का यही भाव देश को मुक्त रखने की संकल्पबद्धता पैदा करता है–

तन में आग आंख में मस्ती ओठों पर मनचाही
कैसे रुकूँ देश सेवा में मैं हूँ एक सिपाही।

'माखनलाल चतुर्वेदी'

भारतीय साहित्य में जो देशभक्ति का भाव पैदा हुआ, वह रामायण, महाभारत के उस भाव का विस्तार है जिसमें संजय भारतवर्ष का वर्णन करता है। इस देश में गंगा, सिंधु, सरस्वती, गोदावरी, नर्मदा, वितस्ता, गोमती, कावेरी आदि नदियाँ प्रवाहित हैं इसमें कुरू, पांचाल, कोसल, कुलिंद, पुलिंद, आंध्र आदि अनेक जनपद हैं और इसमें कहा गया है कि मनुष्य अपने गुण और शक्ति के अनुसार इस पृथ्वी की सेवा करे, रक्षा करे।

यह धरती कामधेनु के समान फल दे सकती है, इसलिए इसे प्राणों की तरह प्रिय समझें। यह धरती सेवा के लिए है, भोगने के लिए नहीं इसलिए धरती की रक्षा धर्म है और यह धर्म सभी मनुष्यों से जुड़ा है चाहे वह किसी भी प्रदेश और किसी भी स्थिति का हो।

चिंतन के इसी सांचे से संस्कृत साहित्य की राष्ट्रीयता या देशभक्ति भावना निर्मित हुई है और इसी भावना का विस्तार भारतीय भाषाओं के साहित्य ने किया है। राजनीतिक रूप से यह देश चाहे कभी एक न रहा हो, किंतु इस देश की सांस्कृतिक साहित्यिक एकता अखंड रही है। कवियों ने इस देश की सांस्कृतिक एकता को रखने में जितनी बड़ी सफलता प्राप्त की है वैसी दुनिया के किसी अन्य देश में दुर्लभ है। भारतीय संस्कृति का एक ही स्वर है जिसे कवि अनेक रूपों में गाता है–भारत राष्ट्र की एकता। इस बात को भूल जाना या पश्चिमी दृष्टि से भारत को देखना, भारत की राष्ट्रीय एकता और कवि दृष्टि को अस्वीकार करना होगा। सभी नदियों का भारत हम जल पीते हैं –

आसा पिबंति सलिलं वसंति सहिताः सदा
यह कवि उक्ति है और यही राष्ट्रीय एकता का आधार है।

पराधीन भारत ने साम्राज्यवादी शक्तियों से टक्कर लेने के लिए जिस देशभक्ति भावना को विकसित किया है उस चिंतन का आधार है संपूर्ण भारतवर्ष। फलतः भारतीय कवियों ने ब्रिटिश साम्राज्यवादी शोषण और अन्याय के खिलाफ एक स्वर से आवाज उठाई। आरंभ में तो यह स्वर मानवतावाद के आधार को लिए था जिसका एक रूप करूणा के अर्थ संदर्भ से बंधा था किंतु आगे चलकर यह उस समाजवादी मानवतावाद की ओर मुड़ गया जिसका रूप रवींद्रनाथ ठाकुर, काजी नजरूल इस्लाम, मैथिलीशरण गुप्त आदि के सृजन में दिखाई देता है। भारतीय सृजन का देशभक्तिपरक रागात्मक रूप तब अधिक शक्तिशाली दिखायी देता है जब जयशंकर प्रसाद, दिनकर, त्रिशूल, सोहनलाल द्विवेदी, नवीन, फिराक गोरखपुरी,

सागर निजामी, फ़ैज अहमद फैज़ आदि नए भावों की कविता लिखते हैं। निजामी ने लिखा हम जनजागरण लाकर दम लेंगे–

सोने वालों को इक दिन जगा देंगे हम
रस्मों राहे गुलामी मिटा देंगे हम
अथ वतन अथ वतन अथ वतन
सर से बाँधे हुए हैं तिरंगा कफन
जिस तरफ से पुकारेगा हिंदोस्ताँ
उस तरफ से वफा की सदा देंगे हम

गया प्रसाद शुक्ल सनेही 'त्रिशूल' ने लिखा–

अब लौ यही लगन लगी थी हर जवान को
आजाद करके छोड़ेंगे हिंदोस्तान को
जिस पर कि लोकमान्य ने कुरबान जान की
महिमा महान बापू ने जिसकी बखान की
जिसके लिए सुभाष ने सीधी कृपाण की
अपना के जिसको दूनी जवाहर ने शान की
क्या है गजब कि कब्रों से मुर्दे निकल पड़े
जय हिंद बोल बोल के दिल्ली को चल पड़े।'

देश भक्ति का एक दूसरा रूप भी है जिसमें रचनाकर देश को एक जीवित प्रतीक या सत्ता मानकर नमन करते हैं। देश का पूरा इतिहास वीरों की गाथाएं गा उठता है –

चित्तौड़, ब्रज, अयोध्या, गंगा, हिमालय प्रेरणा स्रोत बन जाते हैं। यहाँ इतिहास अतीत से वर्तमान का संवाद करता है। जन कवि काजी नजरूल इस्लाम ने लिखा कि दुर्गम पर्वत, मैदान, मरूस्थल और सागर फैले हैं, रात के अंधेरे में इन्हें फिर से पार करना होगा, यात्रियों सावधान –

'दुर्गम गिरि कांतार
मरू दुस्तान पारावार
लाँघिवे हवि रात्रि निशीथे
यात्रिरा हुंशियार'

कभी–कभी इस तरह भी लिखा

'चल चल चल
ऊर्ध्व गगने बाजे मादल
निम्ने उत्तला धरण तल
अरुण पांतेर तरुण दल
चल रे चल रे चल

छात्रों के लिए एक प्रयाण गीत लिखा

आमारा शक्ति आमरा बल
आमारा छात्र दल

(हमारी शक्ति हमारा बल हमारा छात्र दल है।)

नजरूल की आत्मा के ये गीत देशभक्ति का ऐसा साक्षात्कार करा देते हैं जिन्हें भारतीय भाषाओं के सभी रचनाकारों ने अनेक रूपों में गाया है। इन भाषाओं के अनेक 'प्रयाण गीतों' में स्वाधीनता आंदोलन के जागरण का बिम्ब मौजूद है। देशभक्तिपरक यह स्वर हिंदू–मुस्लिम सांप्रदायिकता के उभार पर व्यंग्य करता है। मोहिम मजूमदार, उमाशंकर जोशी, जयशंकर प्रसाद आदि ने अनेक विधाओं में ऐसा सृजन किया है जिसमें देशभक्ति की संपूर्ण शक्ति व्यक्त हुई है।

जनजागरण का शंखनाद अनेक अर्थों में देशभक्ति से जुड़ा है। रवींद्रनाथ, केशवसुत, भारतेंदु, दिनकर, हाली, निजामी आदि के पूरे सृजन में भौगोलिक विशालता के साथ–साथ लोक हृदय में अपने हृदय को मिला देने का भाव है। पराधीन भारत में सामाजिक–राजनीतिक आंदोलनों से जो जनजागरण पैदा हुआ था उसका एक विराट चित्र निराला ने अंकित किया है– 'भारति जय विजय करे' कविता में। इस जनजागरण को अशोक, महाराणा प्रताप, लक्ष्मी बाई और दुर्गावती की ऐतिहासिक चेतना से भी जोड़कर व्यक्त किया गया एवं तिलक और गांधी की जनवंदना के रूप में भी। सभी भारतीय रचनाकारों ने संस्कृति का ऐसा चित्र खींचा है जिसमें वैष्णव, जैन, बौद्ध, मुस्लिम, ईसाई, सिक्ख–सभी एक साथ क्रांति के लिए आगे बढ़ रहे हैं। रवींद्रनाथ जिस विश्व दृष्टि की बात करते थे, उसमें जनरक्षा–जनमंगल की भावना प्रबल है। इस जनजागरणवादी सृजन में उन सभी जीवन मूल्यों की प्रतिष्ठा है जिनका आधार लोकमंगल होता है। व्यापक अर्थ में हम कह सकते हैं कि देशभक्ति और जनजागरण भारतीय राष्ट्रीयतापरक कविता का एक ऐसा विशिष्ट क्षेत्र है जिसकी स्मृति हमें आज भी प्रेरणा देती है।

बोध प्रश्न–3

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दें।

1. आधुनिक भारतीय साहित्य में निम्नलिखित की अभिव्यक्ति के दो–दो उदाहरण दीजिए :

   क) पराधीनता और दमन के प्रति विद्रोह

   ....

   ....

   ख) जनक्रांति की भावना

   ....

   ....

   ग) प्रकृति प्रेम के माध्यम से व्यक्त राष्ट्रीयता

   ....

   ....

   घ) देशभक्ति और जनजागरण की भावना

   ....

   ....

7.7 सारांश

- 'राष्ट्रीयता के विकास में आधुनिक भारतीय साहित्य का योगदान' नामक इस इकाई में आपने पढ़ा कि किस तरह आधुनिक काल में आकर साहित्य का उद्देश्य और स्वरूप बदल उठता है। साहित्य अब केवल भगवद्भक्ति अथवा आश्रयदाताओं को रिझाने का कार्य नहीं करता। अब वह सामान्य जन को केंद्र में रखता है। सामान्य जन की मुक्ति की आकांक्षा इस साहित्य में विविध रूपों में प्रकट होती है। विदेशी शासकों के शोषण में मुक्ति की आकांक्षा राष्ट्रीयता का संस्कार निर्मित करती है और साहित्यकार जन–मानस को पराधीनता की बेड़ियों को तोड़ने की प्रेरणा देता है। उसे अपनी गिरी हुई दशा के प्रति जागरूक बनाता है और इस गिरी दशा को उठाने की प्रेरणा देता है।

- इस युग के प्रमुख रचनाकार प्रेमचंद ने कहा था, 'वह (अर्थात् साहित्य/साहित्यकार) देशभक्ति और राजनीति के पीछे चलने वाली सच्चाई भी नहीं उनके आगे मशाल दिखाती हुई चलने वाली सच्चाई है। 'आधुनिक भारतीय साहित्य' वह मशाल बन कर दिखाता है और जनता को राष्ट्रीयता एवं स्वाधीनता के संघर्ष के लिए प्रेरित करता है।

7.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

भारतीय साहित्य का समेकित इतिहास– संपा. डॉ. नगेन्द्र, हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।

भारतीय साहित्य के इतिहास की समस्याएँ– डॉ. रामविलास शर्मा, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।

आधुनिक भारतीय नई कविता–डॉ. कृष्णदत्त पालीवाल, सचिन प्रकाशन, अंसारी रोड, दरिया गंज, नई दिल्ली।

7.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न–1

1) देखिए, भाग 7.2

2) देखिए, भाग 7.3

3) देखिए, भाग 7.4

बोध प्रश्न–2

1) देखिए, उपभाग 7.5.1

2) देखिए, उपभाग 7.5.2

3) देखिए, उपभाग 7.5.3

4) देखिए, उपभाग 7.5.4

बोध प्रश्न–3

क) देखिए, उपभाग 7.6.2

ख) देखिए, उपभाग 7.6.3

ग) देखिए, उपभाग 7.6.4

घ) देखिए, उपभाग 7.6.6

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY